

अथर्ववेद

प्रथम भाग

(अथर्ववेदके प्रथम तीन काण्ड)

[मूल मंत्र, अर्थ, स्पष्टीकरण और सुभाषितोंका वर्गीकरण तथा उनके उपयोग करनेकी विधिके साथ]

लेखक

प. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

साहित्य-वाचस्पति, वेदाचार्य, गीतालङ्कार

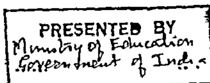
अध्यक्ष- स्वाध्याय मण्डल, पारडी [जि. सूरत]

स्वाध्याय-मण्डल, पारडी

★

मूल्य ८) रु.

प्रकाशक :
वसन्त श्रीपाद सातवळेकर, बी. ए.,
स्वाध्याय मण्डल,
पोस्ट- 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]



सन् १९५८ : संवत् २०१५ : शक १८७९

द्वितीय बार

मुद्रक :
वसन्त श्रीपाद सातवळेकर, बी. ए.,
भारत-मुद्रणालय, स्वाध्याय मण्डल,
पोस्ट- 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

ॐ

अथर्ववेदके पहिले तीन काण्डोंका

परिचय

अथर्ववेदमें २० काण्ड हैं। इनमें प्रथम तीन काण्डोंका यह प्रथम भाग है। इसमें सूक्त और मंत्र संख्या इस तरह है—

प्रथम काण्ड

प्रथम अनुवाक
प्रथम प्रपाठक

सूक्त संख्या	शीर्षक	मंत्र संख्या	
१	बुद्धिसंवर्धन	४	
२	विजय	४	
३	आरोग्य, मूत्रदोष निवारण	९	
४	जल	४	
५	,,	४	
६	,,	४	२९
द्वितीय अनुवाक			
७	धर्मप्रचार	७	
८	,,	४	
९	वर्चःप्राप्ति	४	
१०	पापसे मुक्ति	४	
११	सुखप्रसूति	६	२५
तृतीय अनुवाक			
१२	रोगनिवारण	४	
१३	ईश्वरको नमन	४	
१४	कुलवधू	४	
१५	संगठन-महायज्ञ	४	
१६	चोरनाशन	४	२०
चतुर्थ अनुवाक			
द्वितीय प्रपाठक			
१७	रक्तस्राव बंद करना	४	
१८	सौभाग्यवर्धन	४	
१९	शत्रुनाशन	४	
२०	महानशासक	४	
२१	प्रजापालक	४	२०
पंचम अनुवाक			
२२	हृद्रोगनिवारण	४	
२३	श्वेतकुष्ठनाशन	४	
२४	कुष्ठनाशन	४	
२५	शीतज्वर दूरीकरण	४	
२६	सुखप्राप्ति	४	
२७	विजयी स्त्री	४	
२८	दुष्टनाशन	४	२८
षष्ठ अनुवाक			
२९	राष्ट्रसंवर्धन	६	
३०	आयुष्यवर्धन	४	
३१	आशापालक	४	
३२	जीवन-रस-महासागर	४	
३३	जल	४	
३४	मधुविद्या	५	
३५	बल और दीर्घायुष्य	४	३१
		१५३	

१२ मंत्र हैं। ७ मंत्रोंवाला एक सूक्त है और ९ मंत्रोंवाला एक सूक्त है इस तरह—

४ मंत्रवाले	३०	सूक्त	१२०	मंत्र
५ ,, वाला	१	,,	५	
६ ,, वाले	२	,,	१२	
७ ,, वाला	१	,,	७	
९ ,, वाला	१	,,	९	
			१५३	कुल मंत्र संख्या।

इस प्रथम काण्डकी प्रकृति ४ सूक्तवाले मंत्रोंकी है अब द्वितीय काण्ड देखिये—

अब द्वितीय काण्डकी प्रपाठक, अनुवाक, सूक्त, मंत्र संख्या इस तरह है यह देखिये—

द्वितीय काण्ड

तृतीय प्रपाठक

प्रथम अनुवाक

सूक्त संख्या	शीर्षक	मंत्र संख्या	
१	गुह्य अध्यात्मविद्या	५	
२	पूजनीय ईश्वर	५	
३	आरोग्य	६	
४	जंगिड मणि	६	
५	क्षत्रियधर्म	७	२९
द्वितीय अनुवाक			
६	ब्राह्मणधर्म	५	
७	शापको लौटाना	५	
८	क्षेत्रियरोग दूर करना	५	
९	मज्जिवात दूर करना	५	
१०	दुर्गतिसे बचना	८	२८
तृतीय अनुवाक			
११	आत्माके गुण	५	
१२	मनका बल बढाना	८	
१३	वस्त्रपरिधान	५	
१४	विरोधियोंको हटाना	६	
१५	निर्भयजीवन	६	
१६	विश्वंभरकी भक्ति	५	
१७	आत्मसंरक्षणका बल	७	४२
चतुर्थ अनुवाक			
चतुर्थ प्रपाठक			
१८	आत्मसंरक्षणका बल	५	
१९	शुद्धिकी विधि	५	
२०	,, ,,	५	
२१	,, ,,	५	
२२	,, ,,	५	
२३	,, ,,	५	
२४	डाकुओंकी असफलता	८	
२५	पृश्निपर्णी	५	
२६	गोरस	५	४८
पंचम अनुवाक			
२७	विजयप्राप्ति	७	
२८	दीर्घायुष्य	५	
२९	,,	७	
३०	पतिपत्नीका मेल	५	
३१	रोगोत्पादक कृमि	५	२९
षष्ठ अनुवाक			
३२	कृमिनाशन	६	
३३	यक्ष्मनाशन	७	
३४	मुक्तिका मार्ग	५	
३५	यज्ञमें आत्मसमर्पण	५	
३६	विवाहका मंगल कार्य	८	३१
			२०७

इस काण्डमें ५ मंत्रोंवाले सूक्त २२ हैं और मंत्र ११० हैं।

,,	,,	६	,,	,,	५	,,	,,	३० ,,
,,	,,	७	,,	,,	५	,,	,,	३५ ,,
,,	,,	८	,,	,,	४	,,	,,	३२ ,,
				द्वितीयकाण्डकी मंत्र संख्या				२०७

इस द्वितीय काण्डकी प्रकृति ५ मंत्रोंके सूक्तोंकी है क्योंकि ३६ सूक्तोंमें २२ सूक्त ५ मंत्रोंके हैं।

अब तीसरे काण्डके प्रपाठक, अनुवाक, सूक्त और मंत्र देखिये—

तृतीय काण्ड

सूक्त संख्या	शीर्षक	मंत्र संख्या	
पंचम प्रपाठक			
प्रथम अनुवाक			
१	शत्रुसेना-संमोहन	६	
२	,,	६	
३	राजाकी राज्यपर पुनः स्थापना	६	
४	राजाका चुनाव	७	
५	राजा और राजाके बनानेवाले	८	३३
द्वितीय अनुवाक			
६	वीरपुरुष	८	
७	आनुवंशिक रोगोंका दूर करना	७	
८	राष्ट्रीय एकता	६	
९	क्लेश प्रतिबंधक उपाय	६	
१०	कालका यज्ञ	१३	४०
तृतीय अनुवाक			
११	हवनसे दीर्घायुष्य	८	
१२	गृह-निर्माण	९	
१३	जल	७	
१४	गोशाला	६	
१५	वाणिज्यसे धनप्राप्ति	८	३८
चतुर्थ अनुवाक			
षष्ठ प्रपाठक			
१६	भगवानकी प्रार्थना	७	
१७	कृषिसे सुख	९	
१८	वनस्पति	६	
१९	ज्ञान और शौर्य	८	
२०	तेजस्विताके साथ अभ्युदय	१०	४०
पंचम अनुवाक			
२१	कामाग्निशमन	१०	
२२	वर्च प्राप्ति	६	
२३	वीरपुत्रप्राप्ति	६	
२४	समृद्धिकी प्राप्ति	७	
२५	कामका बाण	६	३५
षष्ठ अनुवाक			
२६	उन्नतिकी दिशा	६	
२७	अभ्युदयकी दिशा	६	
२८	पशुस्वास्थ्यरक्षा	६	
२९	संरक्षक कर	८	
३०	एकता	७	
३१	पापकी निवृत्ती	११	४४
		२३०	

इसमें ६ मंत्रवाले १३ सूक्त हैं मंत्र संख्या ७८ है—

७ ,,	६ ,,	,,	४२
८ ,,	६ ,,	,,	४८
९ ,,	२ ,,	,,	१८
१० ,,	२ ,,	,,	२०
११ ,, वाला	१ ,, इसकी	,,	११
१३ ,,	१ ,,	,,	१३
	३१ सूक्त		२३० मंत्र

इसमें ६ मंत्रवाले १३ सूक्त हैं अतः इस काण्डकी प्रकृति ६ मंत्रवाले सूक्तोंकी है ऐसा कह सकते हैं। तीनों कांडोंकी मंत्र संख्या यह है—

१ काण्ड	सूक्त ३५	मंत्र संख्या १५३
२ ,,	,, ३६	,, २०७
३ ,,	,, ३१	,, २३०
		५९० कुल मंत्र संख्या

इन सूक्तोंके क्रमको देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि, इन सूक्तोंकी स्थापना विषयानुसार नहीं है। इसकी रचना विषयानुसार की जाय, तो पाठकोंको वेदका विषय समझनेमें सुगमता होगी। इन तीनों काण्डोंके सूक्त विषयानुसार इकट्ठे किये तो इस तरह होते हैं—

१ **ईश्वर**— १।१३ ईश्वरको नमन, २।१ अध्यात्मविद्या, २।२ पूजनीय ईश्वर, २।१६ विश्वम्भरकी भक्ति, ३।१६ भगवान्‌की प्रार्थना, २।११ आत्माके गुण।

२ **मुक्ति**— २।३४ मुक्तिका मार्ग।

३ **शासक**— १।२० महान् शासक, १।२१ प्रजापालक, ३।३ राजाकी राज्यपर स्थापना, ३।४ राजाका चुनाव, ३।५ राजा और राजाके बनानेवाले, १।३१ आशापालक, १।२९ राष्ट्रसंवर्धन, ३।२९ संरक्षक कर।

४ **युद्ध**— ३।१-२ शत्रुसेना संमोहन।

५ **विजय**— १।२ विजय, २।२७ विजय प्राप्ति, ३।५

क्षत्रियधर्म, ३।१९ ज्ञान और शौर्य, ३।२० तेजस्वितासे अभ्युदय।

६ बुद्धि— १।१ बुद्धिका संवर्धन, २।१२ मनका बल बढाना।

७ आरोग्य— १।३,२।३ आरोग्य, १।३२ जीवनरस, १।२ रोगनिवारण, १।२२ हृद्रोगनिवारण, १।२३-२४ श्वेतकुष्ठ, कुष्ठनाशन, १।२५ शीतज्वर, २।९ संधिवातनाशन, २।८ क्षेत्रियरोगनाश, २।३१ रोगोत्पादककृमि, २।३२ कृमिनाशन, २।३३ यक्ष्मनाशन, ३।७ आनुवंशिक रोग दूर करना।

८ दीर्घआयु— १।३० आयुष्यवर्धन, १।३५ बल और दीर्घआयुष्य, २।२८-२९ दीर्घआयुष्य, ३।११ हवनसे दीर्घआयुष्य।

९ धन— ३।१५ वाणिज्यसे धनकी प्राप्ति, ३।२४ समृद्धिकी प्राप्ति।

१० पापसे मुक्ति— १।१० पापसे मुक्ति, ३।३१ पापसे निवृत्ति, २।१० दुर्गतिसे बचना, २।१४ विपत्तिको हटाना।

११ तेजस्विता— १।९, ३।२२ वर्चप्राप्ति।

१२ यज्ञ— २।३५ यज्ञमें आत्मसमर्पण।

१३ संगठन— १।१५ संगठन यज्ञ, ३।८,३।३० राष्ट्रीय एकता।

१४ सुखप्राप्ति— १।२६ सुखप्राप्ति।

१५ आत्मरक्षण— २।१७,१८ आत्मरक्षक बल।

१६ निर्भयता— २।१५ निर्भयजीवन।

१७ वीर— ३।६ वीर पुरुष, ३।२३ वीरपुत्र।

१८ अभ्युदय— ३।२० अभ्युदयकी दिशा।

१९ द्वेषनिवारण— ३।९ द्वेष दूर करना।

२० शुद्धता— ३।१९-२१ शुद्धि।

२१ गृहनिर्माण— ३।१२, गृहनिर्माण; ३।१४ गोशाला।

२७ धर्म— १।७-८ धर्मप्रचार।

२८ जल— १।४,५,६,३३,३।१३ जल।

२९ काम— ३।२१ कामाग्निका शमन, ३।२५ कामका बाण।

३० कृषि— ३।१७ कृषिसे सुख।

३१ प्रसूति— १।११ सुख प्रसूति।

३२ मणि-धारण— २।४ जंगिडमणि।

३३ शाप— २।७ शापको लौटाना।

३४ वनस्पति— २।२५ पृश्निपर्णी, ३।१८ वनस्पति।

३५ पशु— ३।२८ पशुस्वास्थ्य रक्षण।

३६ पतिपत्नी— २।३६ विवाह मंगल कार्य, २।३० पतिपत्नीका प्रेम।

३७ काल— ३।१० कालका यज्ञ।

३८ रक्तस्राव— १।१७ रक्तस्राव बंद करना।

३९ चोर डाकू— १।१६ चोरनाशन; १।१९ शत्रुनाशन, १।२८ दुष्टनाशन, २।२४ डाकुओंकी असफलता।

इस तरह सूक्तोंकी विषयानुसार व्यवस्था की जाय तो इस व्यवस्थासे वैदिक सूक्तोंका बोध शीघ्र और सुखसे हो सकता है। आशा है कि पाठकगण इसका विचार करेंगे। हमने इस समय जैसी सूक्तोंकी व्यवस्था है वैसी ही रखी है।

वैदिक सूक्तियां

इस प्रथम विभागमें ३ काण्डोंके सब सूक्त आगये हैं वे ऐसे हैं—

प्रथम	काण्ड	सूक्त	३५	मंत्रसंख्या	१५३	पृष्ठसंख्या	१२०
द्वितीय	,,	,,	३६	,,	२०७	,,	१४८
तृतीय	,,	,,	३१	,,	२३०	,,	२४८
			१०२		५९०		५१६

गर्भरूप रहते हैं। जैसा बीजमें मगज होता है, वैसे मंत्रमें सुभाषित होते हैं। पाठक इनका विचार करें और प्रयोगमें भी ला सकते हैं। व्याख्यानोंमें लेखोंमें तथा अन्यप्रकार इनका बहुत उपयोग होसकता है और जितना इनका उपयोग होगा उतना वेद व्यवहारमें लाया गया यह सिद्ध हो सकता है।

इसके नीचे हम इन तीनों काण्डोंके सुभाषित देते हैं—

परमेश्वर

इन तीन काण्डोंमें परमेश्वर विषयक सुभाषित ये हैं—

यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा। अ. २।१।३

वह ईश्वर सब अन्य देवोंके नामोंको धारण करता है, वह एक ही सबका प्रभु है। उस प्रश्न पूछने योग्य परमेश्वरके पास सब भुवन आश्रयार्थ जाते हैं।

वेनस्तत् पश्यत् परमं गुहा यत् यत्र विश्वं भवत्येकरूपम्। अ. २।१।१

जहां सब विश्व एकरूप होता है और जो हृदयकी गुहामें रहता है उसको ज्ञानी भक्त जानता है।

स नः पिता जनिता स उत बंधुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा। अ. २।१।३

' वह परमेश्वर हमारा पिता और जनक है, वही बंधु भी है। वह सब भुवनों और स्थानोंको जानता है।

परि विश्वा भुवनान्यायमृतस्य तन्तुं विततं दृशे कम्। अ. २।१।५

सत्यके अमृतके सुखमय तन्तुको देखनेके लिये सब भुवनोंमें मैं घूम आया हूं। सर्वत्र इस सुखस्वरूप अमर आत्मरूप इस तन्तुको मैंने देखा है।

दिव्यो गंधर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः। अ. २।२।१

भुवनका एक ही दिव्य गंधर्व स्वामी है जो नमस्कारके योग्य है और प्रजाजनोंको स्तुति करने योग्य है।

मृडाद्गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यः सुशेवः। अ. २।२।२

भुवनोंका एक ही स्वामी जो नमस्कारके योग्य है, जो सुसेव्य है वही सबका आधार सबको सुखी करे।

यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने योनावध्यैरयन्त। अ. २।१।५

जहां अमृत पीनेवाले देव उस एक आश्रय स्थानमें रहते हैं। (वह अमर परमेश्वरका आधार स्थान है।)

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना। प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हवामहे॥ अ. ३।१६।१

प्रातः समय अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, अश्विनौ, भग, पूषा, ब्रह्मणस्पति, सोम और रुद्रको बुलाते हैं, इनकी प्रार्थना करते हैं। (एक देवके ये अनेक गुणबोधक नाम हैं।)

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्। उतोदितौ मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम॥ ४॥ अ. ३।१६।४

हम अब भाग्यवान् हों, सायंकाल अथवा दिनके मध्यमें, सूर्यके उदयके समय भाग्यवान् हों। हम देवोंकी सुमतिमें रहें।

तं त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव। अ. ३।२।१

हे दिव्य देव! तेरे साथ ज्ञानसे मैं संयुक्त होता हूं।

अच्छ त्वा यन्तु हविनः सजाताः। अ. ३।४।३

सजातीय लोग हविष्य अन्नके साथ तेरे समीप आजावें।

उपसद्यो नमस्यो भवेह। अ. ३।४।१

यहां पास जाने योग्य तथा नमस्कार करने योग्य हो।

नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम्। अ. २।२।१

तेरा स्थान द्युलोकमें है, तुझे मैं नमस्कार करता हूं।

त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुष्पितासत्।

इसके तीन पाद हृदयकी गुहामें हैं, जो उनको जानता है वह पिताका भी पिता अर्थात् बडा होता है।

परि द्यावापृथिवी सद्य आयमुपातिष्ठे प्रथमजामृतस्य। अ. २।१।४

द्यावापृथिवीमें मैं सर्वत्र घूम आया हूं और सत्यके प्रथम प्रवर्तक- परमेश्वरकी मैं उपासना सर्वत्र देखता हूं।

प्र तद्वोचेदमृतस्य विद्वान् गंधर्वो धाम परमं गुहा यत्। अ. २।१।२

जो हृदयकी गुहामें है वह अमृतका श्रेष्ठ स्थान विद्वान् वक्ता ही जानकर उसका वर्णन कर सकता है।

स देवान् यक्षत्स उ कल्पयताद्विशः । अ ३।४।६

वह देवोंका यजन करता है, वह निश्चयसे प्रजाओंको समर्थ करता है ।

यज्ञस्य चक्षुः, प्रभृतिर्मुखं च वाचा श्रोत्रेण मनसा जुहोमि । अ २।३५।५

वह प्रभु यज्ञका आंख है, सबका भरण कर्ता, और यज्ञका मुख है । वाणी कान और मनसे मैं उसका यजन करता हू ।

दिवि स्पृष्टो यजतः सूर्यत्वक् अवयाता हरसो दैव्यस्य । अ २।२।२

ईश्वर द्युलोकमें रहता है, वह पूज्य है, सूर्यके समान तेजस्वी है और दैवी आपत्तियोंको दूर करनेवाला वही प्रभु है ।

ये सूक्तियां वारवार पढनेसे, कण्ठ करनेसे, वारंवार मनन करनेसे परमेश्वर विषयक वैदिक सिद्धान्त तत्काल ध्यानमें आसकता है । देखिये—

यो देवानां नामधा— वह देवोंके नाम धारण करनेवाला है ।

तं सं प्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा— सब भुवन उस पूछने योग्य प्रभुके पास जाते हैं ।

वेनस्तत्पश्यत्— ज्ञानी उसको देखता है ।

परमं गुहा यत्— जो हृदयके गुप्त स्थानमें रहता है ।

स नः पिता जनिता— वह रक्षक और उत्पन्न करनेवाला है ।

धामानि वेद भुवनानि विश्वा— सब भुवनों और स्थानोंको वह जानता है ।

सुतस्य सत्तुं विततं दृशे कं— सुखदायक फैला हुआ सबका तन्तु- परमात्मा है उसको मैं देखता हू ।

भुवनस्य यस्पतिः— वह भुवनोंका एक पति है ।

एक एव नमस्यः— वह एकही नमस्कार करने योग्य है ।

प्रातर्भगं— प्रातःकाल भाग्यवान् प्रभुकी भक्ति करते हैं ।

उपसद्यो भवेह— यहां पास जाने योग्य हो ।

दिवि ते सधस्थं— आकाशमें तेरा स्थान है ।

त्रीणि पदा निहिता गुहास्य— इसके तीन पाद बुद्धिमें हैं ।

अमृतस्य विद्वान्— अमृतका जाननेवाला धन्य है ।

धाम परमं गुहा यत्— परम धाम हृदयमें है ।

स उ कल्पयताद्विशः— वह प्रभु प्रजाओंको समर्थ बनाता है ।

अवयाता हरसो दैव्यस्य— दैवी दुःखोंको वह प्रभु दूर करता है ।

यहां जो सूक्तियां दी हैं । उनके ये टुकडे हैं । ये भी सूक्तियां ही हैं और ये वारंवार भजन करने योग्य हैं । 'एक एव नमस्यः' प्रभु अकेला एकही नमस्कार करने योग्य है । ' दिवि ते सधस्थं ' आकाशमें तेरा स्थान है । ' अवयाता हरसो दैव्यस्य ' दैवी दुःखोंको दूर करनेवाला वह प्रभु है । ऐसे वेदमंत्रोंके टुकडे भजन करनेके होते हैं । अकेला अपने मनमें इनका भजन करे, अथवा समाजमें सैकडों और हजारों मनुष्य अर्थके साथ इन वचनोंका भजन करें । इस तरहका भजन करनेके लिये ही ये टुकडे हैं । जिनकी वेदोंपर श्रद्धा है वे अर्थपर ध्यान रखते हुए इन वचनोंका भजन करें । यह भजन मनमें भी होता है और उच्चस्वरमें सामूहिक भी हो जाता है । ऐसे अर्थसहित भजन होने लगे तो ये मंत्रभाग सबके मनमें स्थिर होते हैं, और इनका उपयोग बोलने चालनेके समय होनेकी सुविधा होती है ।

पाठक मनमें ऐसे भजन करके देखें, भजन करनेके समय अर्थको अपने मनमें पूर्ण रीतिसे भरपूर भरकर रखें, उस मंत्रके भावसे अपना मन भरपूर भरा ऐसा, ओतप्रोत भरा है ऐसा भाव मनमें सुस्थिर रखें । ऐसा भजन मनमें करनेसे जैसा लाभ व्यक्तिको होता है वैसा ही लाभ वे ही

ईश्वर विश्वका शासक है, जो शासक होता है वह राजा ही होता है, ईश्वर शासक है और निर्दोष शासक है। अतः वह हमारे शासकोंके लिये आदर्श है। इस दृष्टिसे ईश्वरके गुण हमारे शासकमें देखने योग्य हैं। वे इस तरह देखे जा सकते हैं—

शासकका वर्णन

वेदमें जो वर्णन है उन मंत्रोंमें शासक, राजा, अधिकारीका वर्णन करनेवाले सुभाषित ये हैं—

सर्वास्त्वा राजन् प्रदिशो ह्वयन्तु। अ. ३।४।१

हे राजन्! सब दिशा उपदिशा (ओंमें रहनेवाले प्रजाजन) तुम्हें (अपने रक्षणके लिये) बुलावें।

तास्त्वा संविदाना ह्वयन्तु। अ. ३।४।७

वे सब प्रजाएं मिलकर एकमतसे तुझे बुलावें।

त्वां विशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः। अ. ३।४।२

तुझे ये प्रजायें, तुझे ये पांच दिशाओंमें रहनेवाली दिव्य प्रजाएँ राज्यरक्षणके लिये स्वीकार करें।

आ त्वा गन्राष्ट्रं। अ. ३।४।१

हे राजन्! तेरे पास राष्ट्र आगया है।

सजातानां श्रेष्ठ्य आ धेह्येनम्। अ. १।९।३

अपनी जातियोंमें उच्च स्थानपर इसको रखो।

वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व, ततो न उग्रो विभजा वसूनि। अ. ३।४।२; ४

राष्ट्रके उच्च स्थानमें रहकर, और वहांसे सबके लिये धनोंका विभाग कर दो।

प्राङ् विशांपतिरेकराट् त्वं विराज। अ. ३।४।१

प्रजाओंका मुख्य स्वामी एक राजा होकर, तूं विराजमान् हो।

स्वस्तिदा विशांपतिर्वृत्रहा विमृधो वशी। अ. १।२१।१

प्रजापालक कल्याण करनेवाला, शत्रुनाशक और घातकोंको वश करनेवाला हो।

ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय। अ. १।२९।१

हे ज्ञानी पुरुष! राष्ट्रके हित करनेके लिये बढाओ।

ये राजानो राजकृतः सूता ग्रामण्यश्च ये।
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान्। अ. ३।५।७

जो राजा और राजाओंको करनेवाले, सूत तथा ग्रामनेता हैं हे पर्णमणे! उन सबको मेरे समीप उपस्थित कर (उनकी सहायता मुझे प्राप्त हो ऐसा कर।)

अहं शत्रुहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा। अ. १।२९।५

मैं शत्रुका नाश करनेवाला, शत्रुओंका वध करनेवाला तथा शत्रुरहित होऊं।

अहं राष्ट्रस्याभीवर्गे निजो भूयासमुत्तमः। अ. ३।५।२

मैं राष्ट्रके आस पुरुषोंमें उत्तम निज बनकर रहूं।

अधा मनो वसुदेयाय कृणुष्व। अ. ३।४।४

अपना मन धनदानके लिये अनुकूल बनाओ।

क्षत्रेणाग्ने स्वेन संरभस्व। अ. २।६।४

हे अग्ने! अपने क्षात्रतेजसे उत्साहित हो।

अति निहो, अति सृधो, अत्यचित्तीः, अतिद्विषः। अ. २।६।५

मारपीट करनेकी वृत्तिसे दूर रह, हिंसकोंसे दूर रह, पापीवृत्तीसे दूर हो, द्वेष करनेवालोंसे दूर रहो।

तेन सहस्रकाण्डेन परि णः पाहि विश्वतः। अ. २।७।३

उस सहस्र काण्डवालेसे सब ओरसे हमारा रक्षण कर।

शप्तारमेतु शपथः। अ. २।७।५

शाप देनेवालेके पास ही उसका शाप चला जावे।

संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं बलम्।
संशितं क्षत्रमजरमस्तु जिष्णुर्येषामस्मि पुरोहितः। अ. ३।१९।१

मेरा यह ज्ञान तेजस्वी है, मेरा वीर्य और बल तेजस्वी है। जिनका मैं विजयी पुरोहित हूं उनका तेजस्वी और क्षीण न होनेवाला क्षात्रतेज बढता रहे।

क्षिणामि ब्रह्मणाऽमित्रानुन्नयामि स्वानहम्। अ. ३।१९।३

मैं ज्ञानसे शत्रुओंका नाश करता हूं और अपने लोगोंको मैं उन्नत करता हूं।

एषां क्षत्रमजरमस्तु जिष्ण्वेषां चित्तं विश्वेऽवन्तु देवाः। अ. ३।१९।५

इनका क्षात्रतेज अक्षय हो। इनका विजयी चित्त सब देव सुरक्षित रखें।

जाया॰ पुत्रा॰ सुमनसो भवन्तु बहुं बलिं प्रति पश्यास उग्रः। अ. ३।४।३

स्त्रियाँ और पुत्र उत्तम मनवाले हों। और उग्रवीर बनकर बहुत करभारको देखें।

पथ्या रेवतीर्बहुधा विरूपाः सर्वाः सगत्य वरीयस्ते अक्रन्। अ ३।४।७

सन्मार्गसे चलनेवाली अनेक प्रकारकी रंगरूपवाली प्रजायें मिलकर तुम्हें श्रेष्ठ स्थानपर स्थापित करती हैं।

बली बलेन प्रमृणन् त्सपत्नान्। अ. ३।५।१

यह बलवान् वीर अपने बलसे शत्रुओंका नाश करता है।

ये धीवानो रथकाराः कर्मारा ये मनीषिण॰।
उपस्तीन् पर्ण मह्यं त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान्॥ अ ३।५।६

जो बुद्धिमान् है, जो रथकार है, जो कर्म करनेवाले लुहार हैं, और विद्वान् हैं। हे पर्णमणे! तू इन सब जनोंको मेरे समीप उपस्थित कर (बुद्धिमानोंकी सहायता मुझे प्राप्त हो ऐसा कर।)

सजातानां मध्यमेष्ठा राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह। अ २।६।४

सजातीयोंमें मध्यम स्थानमें बैठनेवाला हो, और राजाओं, राजपुरुषोंके द्वारा बुलाने योग्य होकर, यहां प्रकाशित होता रह।

शास इत्था महाँ अस्यमित्रसाहो अस्तृतः।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदाचन॥ अ १।२०।४

शत्रुओंका नाश करनेवाला, अपराभूत ऐसा यह महान् शासक है, जिसका मित्र मारा नहीं जाता और जिसका मित्र कभी पराभूत नहीं होता।

उपोहश्च समूहश्च क्षत्तारौ ते प्रजापते।
ताविहा वहतां स्फातिं बहु भूमानमक्षितम्॥ अ ३।२४।७

हे प्रजापालक! पास लाना और समृद्ध करना ये दोनों कार्य तू कर, वे कार्य यहां वृद्धिको लावें और बहुत अक्षय भरपूरताको प्राप्त हों।

यत्ते तप ०, हर.०, अर्चि०, शोचि०, तेजः।
तेन तं प्रतितप योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः। अ. २।१९-२३।१-५

जो तेरी तापशक्ति, हरणशक्ति, तेज.शक्ति, प्रकाशशक्ति और तेजनशक्ति है, उससे उनको कष्ट दे जो हमसबको कष्ट देता है और जिसका हमसब द्वेष करते हैं।

अभूर्गृध्रीनामभिशस्तिपावा उ। अ. २।१३।३

विनाशसे मनुष्योंका रक्षण करनेवाला हो।

विश्वंभर विश्वेन मा भरसा पाहि। अ २।१६।५

हे विश्वके भरण कर्ता! सपूर्णपोषण शक्तिसे मेरा रक्षण कर।

यद् राजानो विभजन्त इष्टापूर्तस्य षोडशं यमस्यामी सभासद्। अ ३।२९।१

जिस तरह नियमसे चलनेवाले राजाके सभाके ये सभासद इष्ट और पूर्तका सोलहवा भाग पृथक् कर रूपसे रखते हैं।

यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम्। अ. १।३३।२

जिनका राजा वरुण लोगोंके सत्य वा असत्य आचरण देखता हुआ जाता है।

ये ऐसे मंत्रभाग इस विषयमें विचार करने योग्य हैं। इनमें और छोटे ध्यानमें सदा रखने योग्य सुभाषित ये हैं।

त्वां विशो वृणतां राज्याय— सब प्रजा राज्यके लिये तुझे शासक करके स्वीकार करें।

वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व— राष्ट्रके श्रेष्ठ स्थान पर रह।

विशां पतिरेकराट् त्वं विराज— प्रजापालक एक राजा होकर तू सुशोभित हो।

स्वस्तिदा विशांपति— यह प्रजापालक कल्याण करनेवाला हो।

अभि राष्ट्राय वर्धय— राष्ट्रके हित करनेके लिये यत्न कर।

त्वं सर्वान् कृण्वभितो जनान्— तू सब जनोंको अपने चारों ओर इकट्ठा कर।

अहं शत्रुहोऽसानि— मैं शत्रुका नाश करनेवाला होऊंगा।

अहं राष्ट्रस्याभीवर्गे निजो भूयासं— मैं राष्ट्रके उत्तम पुरुषोंमें निज होकर रहूंगा।

अनि द्विष — द्वेष करनेवालोंको दूर करता हूं।

अति स्रिधः— हिंसकोंको दूर करता हूं।

परि णः पाहि विश्वतः— चारों ओरसे हमारी रक्षा कर।

संशितं वीर्यं वलम्— हमारा वीर्य और बल तीक्ष्ण हो।

संशितं क्षत्रमजरमस्तु— क्षात्रबल तीक्ष्ण होकर क्षीण न हो।

क्षिणामि ब्रह्मणाऽमित्रान्— शत्रुओंको ज्ञानसे क्षीण करता हूं।

उन्नयामि स्वानहम्— स्वकीयोंकी उन्नति करता हूं।

क्षत्रमजरमस्तु— क्षात्रतेज क्षीण न हो।

जिष्णवेषां चित्तम्— इनका चित्त विजयी हो।

जायाः पुत्राः सुमनसो भवन्तु— स्त्री, पुत्र उत्तम मनवाले हों।

वली बलेन प्रमृणन् सपत्नान्— बलवान् बलसे शत्रुओंको मारे।

सजातानां मध्यमेष्ठाः— स्वजातीयोंके मध्यमें बैठने वाला हो।

शास इत्था महाँ असि— तू शासक ऐसा महान् है।

अमित्रसाहो अस्तृतः— शत्रुको पराभूत करनेवाला और स्वयं अपराजित हो।

न यस्य हन्यते सखा— जिसका मित्र मारा नहीं जाता।

उपोहश्च समूहश्च— पास लाना और समूह करना (ये दो कार्य करने योग्य हैं।)

इस प्रकार इन सुभाषितोंमें मननीय वचन हैं। ये वारंवार उच्चारित करनेसे बडा आनंद प्राप्त हो सकता है। 'स्वस्तिदा विशांपतिः' यह वचन वारंवार उच्चारनेसे राजाके कर्तव्य ध्यानमें आ सकते हैं और परमेश्वरके गुण भी मनमें स्थिर होते हैं। परमेश्वर 'स्वस्ति-दा' है अर्थात् कल्याण करनेवाला है। सबका कल्याण वह करता है। जो परमेश्वरका गुण है वही गुण राजामें तथा साधारण प्रजाजनमें भी देखना चाहिये। अर्थात् हरएक मनुष्य 'स्वस्ति-दा' कल्याण करनेवाला हो, राज्यका अधिकारी कल्याण करनेवाला हो, राजा भी प्रजाका कल्याण करनेवाला हो। परमेश्वर तो सबका कल्याण करनेवाला है ही।

'राष्ट्राय वर्धय' राष्ट्रका वर्धन कर। राष्ट्रकी उन्नति कर। राष्ट्रका अभ्युदय हो ऐसा कर। 'अहं शत्रुहो असानि' मैं शत्रुको मारूंगा। शत्रुको दूर करना हरएकका कर्तव्य है। शत्रु तो व्यक्तिके, समाजके, धर्मके तथा राष्ट्रके अनेक प्रकारके होते हैं। इन सब शत्रुओंको दूर करना योग्य है।

'जिष्णवेषां चित्तं' सब मनुष्योंका चित्त जयशाली हो, विजयी हो। कभी चित्त निरुत्साही न हो। 'न यस्य हन्यते सखा' जिसका मित्र मारा नहीं जाता ऐसा परमेश्वर है। राजा भी ऐसा हो, और मनुष्य भी ऐसा हो।

इस प्रकार इन सुभाषितोंका भजन, मनन तथा अपने जीवनमें ढालनेका यत्न करना चाहिये। ईश्वर, विश्वशासक है और राजाके गुणधर्म इनमें प्रकट हुए हैं। शासन हुआ तो वहां बुराइयोंसे, शत्रुओंसे युद्ध करना ही पडता है। इस कारण अब युद्धके विषयके सुभाषित देखिये—

युद्ध

दुष्टोंका शमन करनेके लिये जागृत रहकर युद्ध करना चाहिये, इस विषयके ये सुभाषित हैं—

स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन्। अ. २।६।३

अपने घरमें प्रमाद न करता हुआ जाग्रत रह।

प्रेता, जयता, नर उग्रा वः सन्तु बाहवः। अ. ३।१९।६

हे वीरो! आगे बढो, विजय कमाओ, आपके बाहु शौर्य करनेवाले हों।

तेऽधराञ्चः प्र प्लवतां छिन्ना नौरिव बन्धनात्। अ. ३।६।७

जैसी नौका बंधनसे छूटनेपर बह जाती है, उस तरह वे शत्रु अधोमार्गसे नीचेकी ओर चले जांय।

अमी ये विव्रता स्थन तान्वः सं नमयामसि। अ ३।८।५

जो ये विरुद्ध कर्म करनेवाले हैं उनको मैं एक विचारवाले करता हूं।

नश्येतेतः सदान्वः। अ. २।१४।१

यहांसे दानववृत्तियां विनष्ट हों।

वि त्वमग्ने आरातयः। अ. ३।३१।१

हे अग्ने! तू शत्रुसे दूर रहता है। शत्रु तुमारे पास नहीं आसकता।

योऽस्मान्द्वेष्टि यं वय द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः। अ ३।२७।१-६

जो एक हम सबका द्वेष करता है और जिस अकेलेका हम सब द्वेष करते हैं उसको हे प्रभो ! तुम्हारे जबडेमें देते हैं।

समहमेषां राष्ट्रं स्यामि समोजो वीर्यं बलम्।
वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाऽहम्॥ अ ३।१९।२

इनका राष्ट्र बल, वीर्य और सामर्थ्यसे मैं तेजस्वी बनाता हू। इस हवनसे मैं शत्रुओंके बाहुओंको काटता हू।

तीक्ष्णीयांसः परशोरग्नेस्तीक्ष्णतरा उत।
इन्द्रस्य वज्रात्तीक्ष्णीयांसो येषामस्मि पुरोहितः॥ अ. ३।१९।४

जिनका मैं पुरोहित हूँ उनके शस्त्र अस्त्र परशोसे तीक्ष्ण, अग्निसे तीक्ष्ण और इन्द्रके वज्रसे भी तीखे बनाता हू।

उद्धर्षन्तां मघवन् वाजिनान्युद्वीराणां जयतामेतु घोषः। अ ३।१९।६

हे इन्द्र ! उनके बल उत्तेजित हों। विजयी वीरोंका घोष ऊपर उठे।

तीक्ष्णेषवोऽबलधन्वनो हतोग्रायुधा अबलानुग्रबाहव.। अ ३।१९।७

हे तीक्ष्ण बाणवालो ! उग्र आयुधोंवालो ! उग्र बाहुवाले वीरों। निर्बल धनुष्यवाले निर्बल वीरोंको मारो।

एवा तान् सर्वान् निर्भंग्धि यानहं द्वेष्मि ये च माम्। अ. ३।६।३

इस तरह सब शत्रुओंका नाश कर, जिनका मैं द्वेष करता हू और जो मेरा द्वेष करते हैं।

प्र ते वज्र. प्रमृणन्नेतु शत्रून्। अ ३।१।४
तेरा वज्र शत्रुओंको काटता हुआ आगे बढे।

इन्द्र सेना मोहयामित्राणाम्। अ ३।१।५
हे इन्द्र ! शत्रुओंकी सेनाको मोहित कर।

इन्द्र चित्तानि मोहयन्नर्वाङाकूत्या चर।
अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो विनाशय॥ अ ३।२।३

हे इन्द्र ! शत्रुके चित्तोंको मोहित करके शुभ सकल्पके साथ हमारे पास आ। और अग्नि और वायुके वेगसे शत्रुको चारों ओरसे विनष्ट कर।

स चित्तानि मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः। अ ३।२।१

वह हमारा वीर शत्रुके चित्तको मोहित करे और उनको हस्तहीन जैसे करे। मोहित होने कारण कर्तव्य अकर्तव्यका विचार करनेकी शक्ति शत्रुमें न रहे ऐसा करे।

अमीषां चित्तानि प्रतिमोहयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि। अ ३।२।५

हे व्याधी ! तू इनके चित्तोंको मोहित करके, इनके अवयवोंको जकड कर दूरतक चली जा।

स सेनां मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः। अ ३।१।१

वह वीर शत्रुओंकी सेनाको मोहित करे और उनको हस्तरहित करे।

अयमग्निरमूमुहद्यानि चित्तानि वो हृदि।
वि वो धमत्वोकसः प्र वो धमतु सर्वतः। अ. ३।२।२

शत्रुके हृदयके विचारोंको यह अग्रणी मोहित करे। शत्रुको घरसे बाहर निकाल देवे और शत्रुको सब ओरसे हटा देवे।

अग्निर्नो दूत. प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम्। अ ३।२।१

हमारा तेजस्वी तथा विद्वान् दूत घातपात करनेवाली शत्रुसेनाको जलाता हुआ चले।

अभि प्रेहि, निर्दह हृत्सु शोकैर्ग्राह्यामित्रांस्तमसा विध्य शत्रून्। अ ३।२।५

आगे बढ, हृदयोंको शोकसे जला दो, जकडनेवाले रोगसे, तथा मूर्छासे शत्रुओंको बींध लो।

यूयमुग्रा मरुत ईदृशे स्थाभि प्रेत मृणत सहध्वं। अ ३।१।२

हे मरनेतक लडनेवाले वीरो ! तुम ऐसे उग्र वीर हो, इसलिये आगे बढो, काटो और जीत लो।

भ्रातृव्यक्षयणमसि भ्रातृव्यक्षयणं मे दाः।
सपत्नक्षयणमसि सपत्नक्षयणं मे दाः।
अरायक्षयणमसि अरायक्षयणं मे दाः।
पिशाचक्षयणमसि पिशाचक्षयणं मे दाः।
सदान्वक्षयणमसि सदान्वक्षयणं मे दाः। अ २।१८।१-५

वैरियों, सपत्नों, निर्धनताओं, मांस भक्षकों तथा आसुरी वृत्तियोंको नाशका सामर्थ्य तुझमें है, यह सामर्थ्य मुझे दो।

भूतपतिर्निरजतु, इन्द्रश्चेतः सदान्वाः।
गृहस्य बुध्न आसीनास्ता इन्द्रो वज्रेणाधि तिष्ठतु।
अ २।१४।४

भूतपति राजा राक्षसी वृत्तियोंको यहांसे दूर करे। घरकी जड़में जो बुराइयां हों उनको इन्द्र वज्रसे दूर हटा देवे।

विपूच्येतु कृन्तती पिनाकमिव बिभ्रती।
विष्वक् पुनर्भुवा मनः। अ १।२७।२

धनुष्य धारण करती हुई, काटती हुई वीरसेना चले और शत्रुसेनाका मन विचलित करे।

आरे असा यमस्यथ। अ १।२६।१

किसीने मारा पत्थर हमसे दूर हो।

अधमं गमया तमो यो अस्माँ अभिदासति।
अ १।२१।२

जो हमें दास करना चाहता है उसको हीन अंधकारमें पहुंचा दो।

अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम्।
अ १।२१।४

हे प्रभो ! हे वीर ! द्वेषीका मन बदल दे और हमारे नाश करनेवालेके शस्त्रको दूर कर।

इदं विष्कंधं सहते इदं बाधते अत्रिणः।
अनेन विश्वा ससहे या जातानि पिशाच्याः॥
अ. १।१६।३

यह सीसा दुष्टका पराभव करता है, यह शत्रुको बाधा करता है, पिशाचोंकी सब जातियां इससे पराभूत होतीं हैं। (सीसा-सीसेकी गोली शत्रुका नाश करती है।

आराच्छरव्याऽस्मद्विषूचीरिन्द्र पातय।
अ १।१९।१

हे इन्द्र ! चारों ओर फैलनेवाले बाण हमसे दूर जाकर गिरें।

यो नः स्वो यो अरणः सजात उत निष्ट्यो यो अस्मानभिदासति।
रुद्रः शरव्ययैतान् ममामित्रान् विविध्यतु।
अ १।१९।३

जो अपना, जो परकीय, जो सजातीय, अथवा जो हीन जातीका हमको दास करना चाहता है, हमें दुःख देता है, ऐसे मेरे शत्रुओंको रुद्र अपने बाणोंसे वींधे।

मा नो विदद्भिभा, मो अशस्तिः। अ १।२०।१

पराभव हमारे पास न आवे, अप्रशस्तता हमारे समीप न आवे।

इतश्च यदमुतश्च यद्वधं वरुण यावय।
अ १।२०।३

हे वरुण ! यहांसे और वहांसे जो शस्त्र हैं उनको दूर कर।

सीसं म इन्द्रः प्रायच्छत्तदंग यातु-चातनम्।
अ १।१६।२

'सीसेकी गोली मुझे इन्द्रने दी, वह यातना देनेवाले दुष्टोंको दूर करती है।

विलपन्तु यातुधाना अत्रिणो ये किमीदिनः।
अ १।७।३

जो यातना देनेवाले, सर्व भक्षक, घातक हैं वे विलाप करें। (दूसरोंको यातना देना, सब कुछ खा जाना, और सदा क्या खाऊं ऐसा बोलना विलाप करानेवाला है।

त्वमग्ने यातुधानानुपबद्धा इहावह। अ. १।७।७

हे अग्ने ! तू यातना देनेवालोंको बांधकर यहां ला।

यातुधानस्य प्रजां जहि नयस्व च। अ १।८।३

यातना देनेवाले शत्रुकी प्रजाका पराभव कर और उसको ले चल।

एवा मे शत्रोर्मूर्धानं विष्वग्भिन्धि सहस्व च।
अ. ३।६।६

इस तरह मेरे शत्रुके सिर तोड़ दो और उसको जीत लो।

स हन्तु शत्रून् मामकान् यानहं द्वेष्मि ये च माम्।
अ ३।६।१, ३।५

वह मेरे शत्रुओंका नाश करे, जिनका मैं द्वेष करता हूं और जो मेरा द्वेष करते हैं।

अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ्छत्रूयतीमभि।
युवं तानिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति॥
अ ३।१।३

हे इन्द्र ! शत्रुवत् आचरण करनेवाली शत्रुसेनाको इन्द्र और अग्नि तुम दोनों मिलकर जला दो।

योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः । अ ३।२७।१-६

जो एक हम सबका द्वेष करता है और जिस अकेलेका हम सब द्वेष करते हैं उसको हे प्रभो ! तुम्हारे जबडेमें देते हैं ।

समहमेषां राष्ट्रं स्यामि समोजो वीर्यं बलम् ।
वृश्चामि शत्रूणां बाहूननेन हविषाऽहम् ॥ अ. ३।१९।२

इनका राष्ट्र बल, वीर्य और सामर्थ्यसे मैं तेजस्वी बनाता हूं। इस हवनसे मैं शत्रुओंके बाहुओंको काटता हूं ।

तीक्ष्णीयांसः परशोरग्नेस्तीक्ष्णतरा उत ।
इन्द्रस्य वज्रात्तीक्ष्णीयांसो येषामस्मि पुरोहितः॥ अ. ३।१९।४

जिनका मैं पुरोहित हूँ, उनके शस्त्र अस्त्र फरशीसे तीक्ष्ण, अग्निसे तीक्ष्ण और इन्द्रके वज्रसे भी तीखे बनाता हूं ।

उद्धर्षन्तां मघवन् वाजिनान्युद्वीराणां जयतामेतु घोषः । अ. ३।१९।६

हे इन्द्र ! उनके बल उत्तेजित हों। विजयी वीरोंका घोष ऊपर उठे ।

तीक्ष्णेषवोऽबलधन्वनो हतोग्रायुधा अबलानुग्रबाहवः । अ. ३।१९।७

हे तीक्ष्ण बाणवालो ! उग्र आयुधोंवालो ! उग्र बाहुवाले वीरों । निर्बल धनुष्यवाले निर्बल वीरोंको मारो ।

एवा तान् सर्वान् निर्भंग्धि यानहं द्वेष्मि ये च माम् । अ. ३।६।३

इस तरह सब शत्रुओंका नाश कर, जिनका मैं द्वेष करता हूं और जो मेरा द्वेष करते हैं ।

प्र त वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून् । अ. ३।१।७
तेरा वज्र शत्रुओंको काटता हुआ आगे बढे ।

इन्द्र सेनां मोहयामित्राणाम् । अ ३।१।५
हे इन्द्र ! शत्रुओंकी सेनाको मोहित कर ।

इन्द्र चित्तानि मोहयन्नर्वाङाकूत्या चर ।
अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो विनाशय ॥ अ ३।२।३

हे इन्द्र ! शत्रुके चित्तोंको मोहित करके तुम संकल्पके साथ हमारे पास आ। और अग्नि और वायुके वेगसे शत्रुको चारों ओरसे विनष्ट कर ।

स चित्तानि मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः । अ ३।२।१

वह हमारा वीर शत्रुके चित्तको मोहित करे और इनको हस्तहीन जैसे करे । मोहित होने कारण कर्तव्य अकर्तव्यका विचार करनेकी शक्ति शत्रुमें न रहे ऐसा करे ।

अमीषां चित्तानि प्रतिमोहयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि । अ. ३।२।५

हे व्याधी ! तू इनके चित्तोंको मोहित करके, इनके अवयवोंको जकड कर दूरतक चली जा ।

स सेनां मोहयतु परेषां निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः । अ ३।१।१

वह वीर शत्रुओंकी सेनाको मोहित करे और उनको हस्तरहित करे ।

अयमग्निरमूमुहद्यानि चित्तानि वो हृदि ।
वि वो धमत्वोकसः प्र वो धमतु सर्वतः । अ. ३।२।२

शत्रुके हृदयके विचारोंको यह अग्रणी मोहित करे। शत्रुको घरसे बाहर निकाल देवे और शत्रुको सब ओरसे हटा देवे ।

अग्निर्नो दूतः प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम् । अ. ३।२।१

हमारा तेजस्वी तथा विद्वान् दूत घातपात करनेवाली शत्रुसेनाको जलाता हुआ चले ।

अभि प्रेहि, निर्दह हृत्सु शोकैर्ग्राह्यामित्रांस्तमसा विध्य शत्रून् । अ. ३।२।५

आगे बढ, हृदयोंको शोकसे जला दो, जकडनेवाले रोगसे, तथा मूर्छासे शत्रुओंको बींध लो ।

यूयमुग्रा मरुत ईदृशे स्थाभि प्रेत मृणत सहध्वं । अ. ३।१।२

हे मरनेतक लडनेवाले वीरो ! तुम ऐसे उग्र वीर हो, इसलिये आगे बढो, काटो और जीत लो ।

भ्रातृव्यक्षयणमसि भ्रातृव्यक्षयणं मे दाः ।
सपत्नक्षयणमसि सपत्नक्षयणं मे दाः ।
अरायक्षयणमसि अरायक्षयणं मे दाः ।
पिशाचक्षयणमसि पिशाचक्षयणं मे दाः ।
सदान्वक्षयणमसि सदान्वक्षयणं मे दाः । अ. २।१८।१-५

वैरियों, सपत्नों, निर्धनताओं, मांसभक्षकों तथा आसुरी वृत्तियोंको नाशका सामर्थ्य तुझमें है, यह सामर्थ्य मुझे दो।

भूतपतिर्निरजतु, इन्द्रश्चेतः सदान्वाः।
गृहस्य बुध्न आसीनास्ता इन्द्रो वज्रेणाधि तिष्ठतु। अ. २।१४।४

भूतपति राजा राक्षसी वृत्तियोंको यहांसे दूर करे। घरकी जडमें जो बुराइयां हों उनको इन्द्र वज्रसे दूर हटा देवे।

विपूच्येतु कृन्तती पिनाकमिव बिभ्रती।
विष्वक् पुनर्भुवा मनः। अ १।२७।२

धनुष्य धारण करती हुई, काटती हुई वीरसेना चले जो शत्रुसेनाका मनः विचलित करे।

आरे असा यमस्यथ। अ. १।२६।१
किसीने मारा पत्थर हमसे दूर हो।

अधमं गमया तमो यो अस्माँ अभिदासति। अ. १।२१।२

जो हमें दास करना चाहता है उसको हीन अंधकारमें पहुंचा दो।

अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम्। अ. १।२१।४

हे प्रभो! हे वीर! द्वेषीका मन बदल दे और हमारे नाश करनेवालेके शस्त्रको दूर कर।

इदं विष्कंधं सहते इदं बाधते अत्रिणः।
अनेन विश्वा ससहे या जातानि पिशाच्याः॥ अ. १।१६।३

यह सीसा दुष्टका पराभव करता है, यह शत्रुको बाधा करता है, पिशाचोंकी सब जातियां इससे पराभूत होती हैं। (सीसा-सीसेकी गोली शत्रुका नाश करती है।

आराच्छरव्याऽस्मद्विषूचीरिन्द्र पातय। अ. १।१९।१

हे इन्द्र! चारों ओर फैलनेवाले बाण हमसे दूर जाकर गिरे।

यो नः स्वो यो अरणः सजात उत निष्ट्यो यो अस्माँ अभिदासति।
रुद्रः शरव्ययैतान् ममामित्रान् विविध्यतु। अ. १।१९।३

जो अपना, जो परकीय, जो सजातीय, अथवा जो हीन जातीका हमको दास करना चाहता है, हमें दुःख देता है, ऐसे मेरे शत्रुओंको रुद्र अपने बाणोंसे वींधे।

मा नो विददभिभा, मो अशस्तिः। अ. १।२०।१
पराभव हमारे पास न आवे, अप्रशस्तता हमारे समीप न आवे।

इतश्च यदमुतश्च यद्वधं वरुण यावय। अ. १।२०।३

हे वरुण! यहांसे और वहांसे जो शस्त्र हैं उनको दूर कर।

सीसं म इन्द्रः प्रायच्छत्तदंग यातु-चातनम्। अ. १।१६।२

'सीसेकी गोली मुझे इन्द्रने दी, वह यातना देनेवाले दुष्टोंको दूर करती है।

विलपन्तु यातुधाना अत्त्रिणो ये किमीदिनः। अ. १।७।३

जो यातना देनेवाले, सर्व भक्षक, घातक हैं वे विलाप करें। (दूसरोंको यातना देना, सब कुछ खा जाना, और सदा क्या खाऊं ऐसा बोलना विलाप करानेवाला है।

त्वमग्ने यातुधानानुपबद्धां इहावह। अ. १।७।७
हे अग्ने! तू यातना देनेवालोंको बांधकर यहां ला।

यातुधानस्य प्रजां जहि नयस्व च। अ १।८।३
यातना देनेवाले शत्रुकी प्रजाका पराभव कर और उसको ले चल।

एवा मे शत्रोर्मूर्धानं विष्वग्भिन्धि सहस्व च। अ. २।६।६

इस तरह मेरे शत्रुके सिर तोड दो और उसको जीत लो।

स हन्तु शत्रून् मामकान् यानहं द्वेष्मि ये च माम्। अ ३।६।१; ३।५

वह मेरे शत्रुओंका नाश करे, जिनका मैं द्वेष करता हूं और जो मेरा द्वेष करते हैं।

अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ्छत्रूयतीमभि।
युवं तानिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति॥ अ. ३।१।३

हे इन्द्र! शत्रुवत् आचरण करनेवाली शत्रुसेनाको इन्द्र और अग्नि तुम दोनों मिलकर जला दो।

इन्द्रः सेनां मोहयतु, मरुतो घ्नन्त्वोजसा ।
चक्षूंष्यग्निरा दत्तां पुनरेतु पराजिता । अ ३।१।६

इन्द्र (सेनापति) शत्रुसेनाको मोहित करे । मरुत् (सैनिक) वेगसे हमला करें । अग्नि उनकी आंखें लेवें । इस तरह पराभूत होकर शत्रुसेना पीछे हटे ।

विष्वक् सत्यं कृणुहि चित्तमेषाम् । अ. ३।१।४

सत्य रीतिसे इन शत्रुओंका चित्त चारों ओरसे व्यग्र करो।

अजैषं सर्वानाजीन् वः । अ २।१४।६

सब युद्धोंमें मैंने विजय प्राप्त किया है ।

अहा अरातिं, अविदः स्योनं, अप्यभूः भद्रे सुकृतस्य लोके ॥ अ २।१०।७

कृपणताको तुमने छोडा है। सुखको प्राप्त किया है, कल्याणकारी पुण्यलोकमें तू आया है ।

अरातीनां मा तारीन्मा नस्तारिषुरभिमातयः ।
अ २।७।४

अनुदार शत्रु हमारे आगे न बढें । जो दुष्ट हैं वे आगे न बढें ।

चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्द पृष्टीरपि शृणीमसि ।
अ २।७।५

दुष्ट मनुष्यके आंख और पीठ हम तोड देते हैं ।

मा ते रिषन्नुपस त्तारः । अ २।६।२

तेरे अनुयायी विनष्ट न हों ।

देवैर्दत्तेन मणिना जङ्गिडेन मयोभुवा ।
विष्कंधं सर्वा रक्षांसि व्यायामे सहामहे ।
अ २।४।४

देवोंने दिये, सुखदायक जंगिड मणिसे, शोषक रोगको तथा सब रोगकृमियोंको हम दबा सकते हैं ।

प्र इहि, याहि दूर हरिभ्याम् । अ २।५।१

आगे बढ, दो घोडोंको जोतकर चलो।

इन्द्रस्तुराषाण्मित्रो वृत्रं यो जघान यतीर्न ।
अ २।५।३

यत्न करनेवालोंके समान, त्वरासे हमला करनेवाला इन्द्र घेरनेवाले शत्रुको मारता रहा।

प्रतिदह यातुधानान् प्रति देव किमीदिनः ।
.... दह यातुधान्य । अ १।२८।२

यातना देनेवालोंको जला दो। सदा भूखोंको जला दो । यातना देनेवाली स्त्रियोंको भी जला दो।

अभीवर्तो अभिभवः सपत्नक्षयणो मणिः ।
राष्ट्रायमह्य बंध्यतां सपत्नेभ्यः पराभुवे ॥
अ. १।२९।४

अभीवर्तमणि शत्रुका पराभव करनेवाला और दुष्टोंको दूर करनेवाला है, राष्ट्रहितके लिये तथा शत्रुओंको पराभूत करनेके लिये वह मणि मेरे शरीरपर बांधो।

मेमं प्रापत्पौरुषेयो वधो यः । अ १।३०।१

जो मनुष्यनाशक शस्त्र है वह इसके पास न आवे । (अर्थात् यह न मरे)

असमृद्धा अघायव । अ १।२७।२

पापी लोग समृद्ध न हों।

आरे३ऽसावस्मदस्तु हेतिः । अ. १।२६।१

शस्त्र हमसे दूर रहे ।

मा नो विदन् विव्याधिनो मो अभिव्याधिनो विदन् । अ १।१९।१

विशेष वेधनेवाले शत्रु हमें न प्राप्त करें । चारों ओरसे वेधनेवाले शत्रु हमारे पास न आवे ।

यो अद्य सेन्यो वधोऽघायूनामुदीरते ।
युवं तं मित्रावरुणा अस्मद्यावयतं परि ॥
अ १।२०।२

जो आज सेनाके शूर पुरुषोंका वध पापी शत्रुओंसे हो रहा है, हे मित्र वरुण ! तुम उसको हमसे दूर कर।

वि न इन्द्र मृधो जहि, नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
अ १।२१।२

हे शत्रुनाशक वीर ! हमारे शत्रुओंको मार, सैन्य हमपर भेजनेवालोंको हीन स्थितिमें पहुंचाओ।

वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन् अमित्रस्याभिदासत ।
अ. १।२१।३

हे शत्रुनाशक वीर ! हमारे घात करनेवाले शत्रुके उत्साहका नाश कर।

वरीयो यावया वधम् । अ १।२१।४

शत्रुके शस्त्रको हमारेसे दूर कर।

दैवीर्मनुष्येषवो ममामित्रान् वि विध्यत ।
अ. १।१९।२

मनुष्योंसे फेंके गये दिव्य बाण, मेरे शत्रुओंको बींधे।

यातुधानान् वि लापय । अ १।७।६
यातना देनेवालोंको रुलाओ ।

नीचैः पद्यन्तामधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यान् । अ ३।१९।३
जो शत्रु हमारे धनवान् और विद्वान् पर सैन्य भेजते हैं वे नीचे गिरें और अवनत हों

एषामहमायुधा संस्याम्येषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि। अ ३।१९।५
इनके आयुध मैं तीक्ष्ण करता हूं तथा इनका राष्ट्र उत्तम वीरोंसे युक्त करके उन्नत करता हूं ।

पृथग्घोषा उलुलयः केतुमन्त उदीरताम् । अ ३।१९।६
झंडे लेकर हमला करनेवाले वीरोंके घोष पृथक् पृथक् ऊपर उठें ।

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
जयामित्रान् प्र पद्यस्व, जह्येषां वरं वरं,
मामीषां मोचि कश्चन । अ ३।१९।८
हे ज्ञानसे तेजस्वी बने शस्त्र ! तू छोडा जानेपर दूर जा, शत्रुओंको जीत लो, आगे बढ, शत्रुके वीरोंमेंसे श्रेष्ठ-श्रेष्ठ वीरोंको मार डाल, इनमेंसे किसीको न छोड ।

असौ या सेना मरुतः परेषामस्मानैत्यभ्योजसा स्पर्धमाना । तां विध्यत तमसापव्रतेन यथैषामन्यो अन्यं न जानात् । अ. ३।२।६
हे मरुतो ! वह जो शत्रुकी सेना वेगसे स्पर्धा करती हुई हमारे ऊपर आरही है, उसको अपव्रत तमसास्त्रसे वींधो जिससे उनमेंसे एक दूसरेको न जान सके ।

उग्रस्य मन्योरुदिमं नयामि । अ १।१०।१
उग्र क्रोधसे इसको ऊपर मैं ले जाता हूं ।

सपत्ना अस्मदधरे भवन्तु । अ १।१९।२,४
शत्रु हमसे नीचे रहें । शत्रुका अधःपात हो ।

जहि एषां शततर्हम् । अ. १।८।४
इन दुष्टोंका सैंकडों कष्ट देनेका साधन दूर कर, शत्रुसे पराजित कर ।

एषामिन्द्रो वज्रेणापि शीर्षाणि वृश्चतु । अ १।७।७
इन्द्र वज्रसे इन दुष्टोंके सिर काट दे ।

अथेदु सर्वो यातुधानयमस्मीत्येत्य । अ १।७।४
'सब यातना देनेवाले आकर बोलेंकी हम यहां हैं ।'

दस्योः हन्ता यमृचिथ । अ १।७।१
तू दस्युका विनाशक है । (दस्युका विनाश करना योग्य है)

वि रक्षो विमृधो जहि विवृत्रस्य हनू रुज । अ १।२१।३
राक्षसो, शत्रुओंको पराभूत कर । घेरनेवाले शत्रुके जबडे तोड ।

यः सपत्नो योऽसपत्नो यश्च द्विषन् छपाति नः ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्मवर्म ममान्तरम् । अ १।१९।४
जो सपत्न और जो असपत्न हैं, पर जो शाप देकर हमें द्वेष करके कष्ट पहुंचाता है, सब देव उसका नाश करें । मेरा आन्तरिक कवच ब्रह्मज्ञान है ।
ज्ञानरूप कवच जो पहनता है, उसका उत्तम रक्षण होता है ।

मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या । अ १।२०।१
जो द्वेष करनेवाले कुटिल हैं वे हमारे पास न आवें ।

निष्पद्गो असत् छरव पतन्तु ये अस्ता ये चास्याः । अथ १।१९।२
जो फेंके गये हैं, और जो फेंके जानेवाले हैं वे बाण चारों ओर हमसे दूर जाकर गिरें ।

यस्त आत्मनि तन्वां घोरमस्ति ।
यद्वा केशेषु प्रतिचक्षणे वा ।
तत्सर्वं वाचाप हन्मो वयं । अ. १।१८।३
जो इसके शरीरमें, बुद्धिमें, केशोंमें, देखनेमें बुरा है, इस सबको हम वाणीकी प्रेरणासे दूर करते हैं । (वाणीसे सूचना देकर उस दोषको दूर करते हैं ।)

दहन्नप द्वयाविनः यातुधानान् किमीदिनः । अ. १।२८।१
दुमुखों, यातना देनेवालों और अब क्या खाऊं ऐसे बोलनेवाले दुष्टोंको अग्नि जला देता है ।

प्रेतं — आगे बढो ।
प्रस्फुरतं — पुरती करो ।
पूणतः गृहान् यहतं — सतोष देनेवालोंके घर जाओ । अ. १।२७।४

अभिभूत्य सपत्नान् अभि यो नो अरातयः।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो नो दुरस्यति ॥
अ. १।२९।२

शत्रुओंको पराभूत करके, हमारे अंदर जो कंजूस हैं उनको दूर करके, सेनासे जो चढाई करता है और जो हमसे दुष्टताका व्यवहार करता है, उन सबको पराभूत करो।

विश्वा ह्यग्ने दुरिता तर। अ. २।६।५
सब पापवृत्तियोंको, पापियोंको दूर कर।

स्वयुग्भिर्मत्स्वेह महे रणाय। अ. २।५।४
अपनी योजनाओंसे तू यहां आनन्दित होकर रह और बडे युद्धके लिये तैयार रह।

ससहे शत्रून्। अ. २।५।३
शत्रुका पराभव करता हूं।

प्रति तमभि चर योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः।
अ. २।११।३
उसपर चढाई कर जो अकेला हम सबका द्वेष करता है। और जिसका हम सब द्वेष करते हैं।

वृश्चामि तं कुलिशेन वृक्षं यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति। अ. २।१२।३
जो हमारे इस मनको बिगाडता है, उसको कुठारसे वृक्ष काटनेके समान काटता हूं।

सपत्नहाग्ने अभिमातिजिद् भव। अ. २।६।३
हे अग्ने! सापत्नोंका विनाशक हो तथा वैरियोंको जीतने वाला हो।

अग्नेर्वातस्य ध्राज्या तान् विषूचो वि नाशय।
अ. ३।१।५
अग्नि और वायुके वेगसे जैसा नाश होता है वैसा नाश शत्रुओंका चारों ओरसे करो।

जहि प्रतीचो अनूचः पराचः। अ. ३।१।४
सन्मुख रहे, पीछेसे आनेवाले और भागनेवाले शत्रुको विनष्ट करो।

अमीमृणन् वसवो नाथिता इमे, अग्निर्ह्येषां दूतः प्रत्येतु विद्वान्। अ. ३।१।२
ये बलवान् बसानेवाले और काटते रहे हैं, इनका विद्वान् अग्नि समान तेजस्वी दूत चढाई करता हुआ आगे बढे।

अग्निर्नः शत्रून् प्रत्येतु विद्वान् प्रतिदहन्नभिशस्तिमरातिम्। अ. ३।१।१
विद्वान् तेजस्वी वीर घातपात करनेवाले शत्रुको जलाता हुआ हमारे शत्रुओंपर हमला करे।

इन सूक्तियोंमें विशेष महत्व रखनेवाली ये हैं—

स्वे गये जागृहि— अपने घरमें जाग्रत रह। अपने राष्ट्रमें जाग्रत रह।

उग्रा वः सन्तु बाहवः— आपके बाहु उग्र हों।

प्रेत— शत्रुपर हमला कर।

जयत— विजयी हो।

नश्यतेः सदान्वः— दानवोंका यहां नाश हो।

समहमेषां राष्ट्रं स्यामि— इनका राष्ट्र मैं तेजस्वी बनाता हूं।

वृश्चामि शत्रूणां बाहून्— शत्रुओंके बाहुओंको काटता हूं।

उद्धर्षन्तां वाजिनानि— इनके बल उत्तेजित हों।

तीक्ष्णेषवोऽबलधन्वनो हत— तुम्हारे तीखे बाणोंसे निर्बल शस्त्रवाले शत्रुको मारो।

एवा तान् सर्वान् निर्भङ्ग्धि— इस तरह उन सब शत्रुओंका नाश कर।

सेनां मोहयामित्राणां— शत्रुकी सेनाको मोहित कर।

तान् विषूचो विनाशय— शत्रुको चारों ओरसे विनष्ट कर।

स चित्तानि मोहयतु परेषां— वह शत्रुओंके चित्त मोहित करे।

स सेनां मोहयतु परेषां— वह शत्रुकी सेनाको मोहित करे।

अभि प्रेहि, निर्दह— आगे बढ, शत्रुको जला दो।

अभि प्रेत, मृणत, सहध्वं — हमला करो, काटो और जीतलो।

भूतपतिर्निरजतु— भूतोंका पति दुर्वृत्तियोंको दूर करे।

विवृच्यतु कृन्तती— काटती हुई सेना आगे बढे।

आरे अश्मा— पत्थर हमसे दूर रहे।

अपेन्द्र द्विषतो मन— हे इन्द्र! शत्रुका मन बदल दे।

मा नो विददभिभा— पराभव हमारे पास न आवे।

विलपन्तु यातुधाना — यातना देनेवाले शत्रु रोते रहें।

यातुधानस्य प्रजां जहि— यातना देनेवालोंकी प्रजाका पराभव कर।

स हन्तु शत्रून् मामकान्— वह मेरे शत्रुओंका वध करे।
अजैषं सर्वानाजीन्— सब युद्धोंमें मैं विजय प्राप्त करता हूं।
अद्दा अरातिं— कृपणताको छोडो।
अविदः स्योनं— सुखमार्गको जानो।
अभूः भद्रे सुकृतस्य लोके— कल्याणकारी पुण्य लोकमें रहो।
अरातीर्नो मा तारीत्— कंजूस हमारे पास न बढें।
मा नस्तारिपुरभिमातयः— शत्रु हमारे आगे न बढें।
प्र वह्— आगे बढ।
याहि शूर— हे वीर! आगे बढ।
प्रतिदह यातुधानान्— यातना देनेवालोंको जला दो।
मेमं प्रापत्पौरुषेयो वधो यः— मनुष्यनाशक शस्त्र मेरे ऊपर न पडे।
असमृद्धा अघायवः— पापी समृद्ध न हों।
मा नो विदन् विव्याधिनः— वेध करनेवाले शत्रु हमें न जानें।
मो अभिव्याधिनो विदन्— चारों ओरसे आक्रमण करनेवाले शत्रु हमें न जाने।
वि न इन्द्र मृधो जहि— हे इन्द्र! हमारे शत्रुओंको मार।
नीचा यच्छ पृतन्यतः— सैन्यसे हमला करनेवालोंको हीन अवस्थामें पहुंचा दो।
वरीयो यावया वधम्— शस्त्र हमसे दूर रख।
इषवो ममामित्रान् वि विध्यत— बाण मेरे शत्रुओंको वींधे।
यातुधानान् विलापय— यातना देनेवालोंको रुलाओ।
एषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि— इनके राष्ट्रको वीर बनाकर बढाता हूँ।
जयामित्रान्— शत्रुपर विजय प्राप्त कर।
जह्येषां वरं वरं— शत्रुवीरोंके प्रमुखोंको मार।
मामीषां मोचि कश्चन— शत्रुओंमेंसे किसीको न छोड।
विध्यत तमसापव्रतेन— शत्रुको अपव्रत तमसास्त्रसे वींधो।
सपत्ना अस्मदधरे भवन्तु— शत्रु हमसे नीचे रहें।
दस्योर्हन्ता बभूविथ— शत्रुका विनाशक बन।
वि रक्षो वि मृधो जहि— राक्षसों और हिंसकोंका पराभव कर।
मा नो विदद् वृजिना द्वेष्या या— कुटील और पापी मुझे न जाने।
दहाम्यप द्वयाविनः— दुमुखोंको मैं जलाता हूं।
प्रेतं— हमला करो।
प्रस्फुरतं— फुरती बढाओ।
पृणतः गृहान् वहतं— संतोष देनेवालोंके घरोंके पास जाओ।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठ— सेनासे हमला करनेवाले शत्रुका पराभव कर।
विश्वा दुरिता तर— सब पापोंको तैर जा।
मत्स्वेह महे रणाय— बडे युद्धके लिये आनन्दसे तैयार रह।
ससहे शत्रून्— शत्रुका पराभव करता हूं।
अभिमातिजिद्भव— शत्रुका पराभव करनेवाला हो।
शत्रून् प्रत्येतु विद्वान्— विद्वान् शत्रुपर चढाई करे।

इस तरह इन सूक्तियोंमें अनेक वाक्य भजनमें बोलने योग्य हैं। इस तरहके वचन तब बोलने होते हैं जब शत्रुके विरुद्ध अपने लोगोंको, अपने वीरोंको उठाना या तैयार करना होता है। ईश्वर भक्तिके वेदवचन उपासनाके समय बोलने होते हैं और ये वीरता बढानेवाले वचन वीरता बढानेके समय उच्चार करने होते हैं।। विवेकी पाठक इसको अच्छी तरह समझ सकेंगे।

शत्रुपराजय करनेके लिये अपने राष्ट्रको तैयार रखनेके समय ये वचन बडे उपयोगी हैं। राष्ट्रको संजीवित करनेके लिये राष्ट्रमें एकता प्रस्थापित करनेकी आवश्यकता होती है। वह एकताका विषय अब देखिये—

एकता

एकता बढानेका उपदेश वेद इस तरह करता है—

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।

अ. ३।३०।१

सहृदयता और उत्तम मनवाला होना और विद्वेष न करना ये तुम्हारे अन्दर हों ऐसा मैं करता हूं।

अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ।

अ. ३।३०।१

एक दूसरे पर ऐसा प्रेम करो जैसा नवजात बच्चेपर गौ प्रेम करती है ।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।

अ. ३।३०।२

पिताके अनुकूलव्रत धारण करनेवाला पुत्र हो और वह मातासे समान मनवाला हो ।

जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ।

अ. ३।३०।२

स्त्री पतिके साथ मधुर और शान्त भाषण करे ।

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।

अ ३।३०।३

भाई भाईसे द्वेष न करे, बहन बहनसे द्वेष न करे ।

सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया

अ ३।३०।३

मिलजुलकर एक व्रतपालन करनेवाले होकर कल्याण करनेवाला भाषण करो ।

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः । अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि ॥

अ ३।३०।५

वृद्धोंका सम्मान करनेवाले, और उत्तम विचार करनेवाले बनो, सिद्धितक यत्न करनेवाले, एक धुराके नीचे चलनेवाले होकर आपसमें विरोध न करो, परस्पर प्रेम पूर्वक भाषण करनेवाले और उत्तम विचार करनेवाला होकर रहो ।

समानी प्रपा सह वो अन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि । अ. ३।३०।६

पानी पीनेका आपका स्थान एक हो, आपका अन्नभाग एक हो, एक जोतेके अन्दर साथ-साथ आपको जोतता हूं ।

सम्यञ्चो ऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ।

अ ३।३०।६

सब मिलकर अग्निकी पूजा करो और चक्रकी नाभिके चारों ओर जैसे आरे होते हैं वैसे तुम परस्पर जुडकर रहो ।

सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान् । अ ३।३०।७

परस्पर प्रेम भावका बर्ताव करनेवाले, साथ साथ पुरुषार्थ करनेवाले, उत्तम मनवाले और एक नेताकी आज्ञामें कार्य करनेवाले मैं तुमको बनाता हूं ।

देवा इवामृतं रक्षमाणा सायं प्रातः सौमनसो वो अस्तु । अ. ३।३०।७

अमृतका रक्षण करनेवाले देव जैसे प्रेमसे रहते है वैसा परस्पर प्रेम आपके व्यवहारमें सबेरे और शामको होवे ।

सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतीर्नमामसि ।

अ. ३।८।५

तुम्हारे मनोंको एक करो, तुम्हारे मत एक हों, तुम्हारे संकल्पोंको एक भावसे युक्त करता हूं ।

मम व्रतेषु हृदयानि वः कृणोमि
मम यातमनुवर्त्मान एत । अ. ३।८।६

मेरे व्रतोंमें तुम्हारे हृदय संलग्न हों ऐसा मैं करता हूं ।
मेरे चाल-चलनके अनुकूल तुम होकर चलो ।

अ-दार-सृद् भवतु । अ. १।२०।१

आपसमें फूट उत्पन्न करनेवाला कोई न हो ।

अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि
मम चित्तमनु चित्तेभिरेत । अ. ३।८।६

मैं अपने मनसे तुम्हारे मनोंको लेता हूं । मेरे चित्तके साथ अपने चित्तोंको चलाओ ।

यथा नः सर्व इज्जन- संगत्यां सुमना असत्
दानकामश्च नो भुवत् ॥ अ. ३।२०।६

हमारे सपूर्ण लोग संगतिमें उत्तम मनवाले हों और दान देनेकी भी इच्छा करें ।

सं चेन्नयाथो अश्विना, कामिना सं च वक्षथः ।
सं वां भगासो अग्मत, सं चित्तानि, समु व्रता ॥

अ. २।३०।२

हे परस्पर कामना करनेवाले अश्विदेवो ! मिलकर चलो, मिलकर बढो, ऐश्वर्यको मिलकर प्राप्त करो, तुम्हारे चित्त एक हो, तुम्हारे मत एक हों ।

शिवाभिष्टे हृदयं तर्पयाम्यनमीवो मोदिषीष्ठाः सुवर्चाः । सवासिनौ पिबतां मन्थमेतं अश्विनौ रूपं परिधाय मायाम् ॥ अ २।२९।६

कल्याणकारिणी विद्याओं द्वारा तेरे हृदयको तृप्त करता हूं। नीरोग और तेजस्वी होकर आनन्दमें रहो। साथ रहकर अश्विनोंके रूपको कर्मकी कुशलताको प्राप्त होकर इस रसको पीओ।

इस रीतिसे सबकी एकता करनेका उपदेश वेद करता है। घरकी तथा परिवारकी एकता करनेके लिये प्रथम कहा है—

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्— भाई-भाईसे द्वेष न करे। यह आदेश यदि भाई-भाई मनमें रखते, तो कौरव पांडवोंकी एकता होती और आपसका कलह न होता और १८ अक्षौहिणी सेनाका नाश न होता। और भारत देश क्षात्र तेजसे हीन न होता।

सम्यञ्चो अग्निं सपर्यत

आरा नाभिमिवाभितः। अ. ३।३०।६

जैसे चक्रके आरे नाभिके चारों ओर रहते हैं, उस तरह बीचमें अग्नि रहे और चारों ओर बैठकर हवन करो यह सामुदायिक उपासना कही है जो एकता बढानेवाली थी। सामुदायिक संध्या, सामुदायिक हवन होनेसे समुदायकी एकता होती थी। इस स्थानपर आज वैयक्तिक संध्या हो गयी है जो एक दूसरेको पृथक् करती है।

अपनेमें 'अदारसृत् भवतु' आपसकी फूट बढानेवाला कोई न रहे। परंतु आपसकी एकता सब बढावें और सब सुसंगठित हों। इस कारण कहा है—

अहं गृभ्णामि मनसा मनांसि। अ. ३।८।६

मैं अपने मनसे तुम्हारे मनोंको एकत्रित करके लेता हूं अर्थात् मैं अपना मन ऐसा बनाता हूं कि जो सबके मनोंको आकर्षित करे और सबके विचार एक प्रकारके बनावे और सबको संगठित करे। इस रीतिसे राष्ट्रके सब लोगोंको संगठित किया जाय और राष्ट्रका बल बढाया जाय।

इस तरह संघटनाके सूचक ये मंत्र हैं। पाठक इनका विचार करें और आपसमें सुसंघटीत होकर अपने राष्ट्रका बल बढावें इससे राष्ट्रका अभ्युदय होगा।

अभ्युदय

इमा याः पञ्च प्रदिशो मानवीः पञ्च कृष्टयः।
वृष्टे शापं नदीरिवेह स्फातिं समावहान् ॥
अ. ३।२४।३

जो ये पांच दिशाओंमें रहनेवाली मानवोंकी पांच जातियां हैं, वे समृद्धिको प्राप्त हों, जिस तरह वृष्टिसे नदी बढती है।

जैसी वृष्टि होनेसे नदी बढती है उस तरह सब प्रजाजनोंका अभ्युदय हो। मनुष्योंकी सब प्रकारकी ऐहिक तथा पारमार्थिक उन्नति हो, सब राष्ट्र एकतासे अपना अभ्युदय करने लगेगा तो ही राष्ट्रकी उन्नति हो सकती है। एकता मूलक सब उन्नति है।

राष्ट्रकी एकता होनेके लिये राष्ट्रमें यज्ञ भावना होनी चाहिये। सज्जनोंका सत्कार, राष्ट्रकी एकता अर्थात् संघटना करना और दानका भाव ये गुण यज्ञमें हैं। इन गुणोंसे राष्ट्रका उत्कर्ष होता है।

यज्ञ

प्रत्नं यज्ञं च वर्धय। अ. ३।२०।५

श्रेष्ठ और प्रशस्ततम कर्मको बढाओ।

इमं यज्ञं विततं विश्वकर्मणा देवा यन्तु सुमनस्यमानाः॥ अ. २।३५।५

विश्वके रचयिताने यह यज्ञ फैलाया है। उत्तम मनसे सब देव इस यज्ञमें आवें।

उतादित्सन्तं दापयतु प्रजानन्। अ. ३।२०।८

दान न देनेवालेको जानबूझकर दान देनेकी प्रेरणा कर।

य ईशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पदामुत यो द्विपदाम्। निष्क्रीतः स यज्ञियं भागमेतु, रायस्पोषा यजमानं सचन्ताम्॥ अ. २।३४।१

जो चतुष्पाद पशुओंका तथा द्विपादों-मनुष्योंका स्वामी है, वह यज्ञके भागको प्राप्त हो, उसकी उपासना हो, धन और पोषण यजमानको मिले।

विद्वानोंका सत्कार करना चाहिये, आपसकी उत्तम संघटना होनी चाहिये और जो दीन हों उनकी दीनता दूर करनेके लिये दान देना चाहिये। दानमें विद्यादान, बलका संवर्धन, धनका दान और कर्मसहिता आदि यह चतुर्विध सहाय्य होना चाहिये। यह जहां होगा वहां यज्ञ होगा। और इससे राष्ट्रका परम उत्कर्ष होगा।

मधुरता

मधुरतासे एकता होती है। इस विषयमें वेदमंत्रोंका स्पष्ट आदेश यह है-

मधोरसि मधुतरो मधुघान्मधुमत्तरः ।
अ. १।३४।४

मैं मधसे भी अधिक मीठा हूं, मधुर पदार्थसे भी अधिक मधुर हूं ।

वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः ।
अ. १।३४।३

मैं वाणीसे मीठा भाषण करूंगा और मैं मधुरताकी मूर्ति बनूंगा ।

मधुमन्मे निष्क्रमणं मधुमन्मे परायणम् ।
अ. १।३४।३

मेरा जाना और आना मीठा हो ।

जिह्वाया अग्रे मधु मे जिह्वामूले मधूलकम् ।
अ. १।३४।२

मेरी जिह्वाके मूलमें मधुरता रहे और जिह्वाके अग्रभागमें मीठास रहे ।

ऐसी मीठास होनेसे राष्ट्रमें प्रेम बढ़ता है और प्रेमसे संगठना होती है । मित्रता बढ़ती है । परस्पर सहायता करनेकी इच्छा बढ़ती है । इससे सबका मिलकर कल्याण होता है ।

मित्रता

यः सुहार्द तेन नः सह । अ. २।७।५
जो उत्तम हृदयवाला है उसके साथ हमारी मित्रता हो ।

सखासावस्मभ्यमस्तु रातिः । अ. १।२६।२
दानरूपी मित्र हमारे साथ रहे ।

मित्रेणाग्ने मित्रधा यतस्व । अ. २।६।४
मित्रके साथ मित्रके समान व्यवहार कर ।

शिवे ते द्यावापृथिवी उभे स्ताम् । अ. २।१०।२
तेरे लिये ये दोनों द्यु और पृथिवी लोक कल्याण करनेवाले हों ।

आदमस्मद् यावय दिद्युं । अथर्व १।२।३
दिद्युं आदं अस्मत् यावय- शत्रुके तेजस्वी बाणको हमसे दूर कर (शत्रुका बाण हमपर न आवे ।)

वसोष्पते । नि रमय । अथर्व १।१।३
हे वसुओंके स्वामिन् ! मुझे आधार पुष्ट कर ।

यथाहमुत्तरोऽसानि स्वनामन्यपावोः परिस्पर्धिनः ।
अ १।३०।१

पापी और दुष्टोंके आंख हम ढक देते हैं ।

पापी और दुष्ट दूर हों और उत्तम हृदयसे सबकी एकता बढ़े और एकतासे बल बढ़े ।

बल

अश्मानं तन्वं कृधि । अथर्व १।२।२
शरीरको पत्थर जैसा सुदृढ कर ।

एह्यश्मानमा तिष्ठ, अश्मा भवतु ते तनूः ।
अ. २।१३।४

आ, इस शिलापर चढ, तेरा शरीर पत्थर जैसा सुदृढ बने ।

वाचस्पतिः तेषां तन्वः बला मे अद्य दधातु ॥
अथर्व १।१।१

वाचस्पति इनके शरीरके बलोंको मुझमें आज धारण करे । (विश्वमें जो पदार्थ हैं इनके बल मुझे प्राप्त हों और मैं इनसे बलवान् बनकर इस विश्वमें विश्वसेवाका कार्य करता रहूं ।)

वीडुर्वरीयोऽरातीरप द्वेषांस्या कृधि ॥
अथर्व १।२।२

वीडुः वरीयः अरातीः द्वेषांसि अपाकृधि— हमारे शरीर बलवान् और श्रेष्ठ बनें । शत्रुओं और द्वेष करनेवालोंको दूर कर ।

ओजोऽस्योजो मे दाः । सहोऽसि सहो मे दाः ।
बलमसि बलं मे दाः । आयुरसि आयुर्मे
दाः । श्रोत्रमसि श्रोत्रं मे दाः । चक्षुरसि
चक्षु मे दाः । परिपाणमसि परिपाणं मे दाः ।
अ. २।१७।१-७

सामर्थ्य, शत्रुका पराभव करनेकी शक्ति, बल, आयु, कान, आंख, संरक्षण यह तुम्हारा रूप है अतः तू मुझे ये गुण दे ।

स्रक्त्योऽसि, प्रतिसरोऽसि, प्रत्यभिचरणोऽसि ।
अ. २।११।२

तू (आत्मा) गतिशील है, तू आगे बढनेवाला है, तू दुष्टोंको दूर करनेवाला है ।

शुक्रोऽसि, भ्राजोऽसि, स्वरसि, ज्योतिरसि ।
अ. २।११।५

तू शुद्ध तथा वीर्यवान् है । तू तेजस्वी है, तू आत्म-शक्ति है, तू ज्योति है ।

प्र च वर्धयेमम् । अ. २।६।२
इसको विशेष ऊंचा कर ।
सबका बल, तेज, ज्योति, वीर्य, बढे और सब लोग तेजस्वी बनें और सबका सामर्थ्य बढे ।

वीरता

प्रजां त्वष्टरधि निधेह्यस्मै । अ. २।२९।२
हे त्वष्टा ! इसको सुप्रजा दे ।

आ वीरोऽत्र जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः ।
अ. ३।२३।२
तेरे लिये दशवें मासमें जन्मनेवाला वीर पुत्र होवे ।

अथास्माकं सह वीरं रयिं दा । अ. २।६।५
हमें वीरोंके साथ रहनेवाला धन दे ।

सुप्रजसः सुवीरा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ।
अ. ३।१०।५
हम उत्तम प्रजावाले तथा उत्तम वीरोंसे युक्त होकर धनोंके स्वामी बनें ।

तनूपानः सयोनिर्वीरो वीरेण मया । अ. ३।५।८
तू सजातीय वीर मुझ वीरके साथ रहकर शरीर रक्षक है ।

वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयंकरः ।
अ. १।२१।१
बलवान्, शान्ति करनेवाला, सोमरस पीनेवाला शत्रुनाशक वीर हमारा अगुवा बने ।

ज्ञान

घोरा ऋषयो, नमो अस्त्वेभ्यश्चक्षुर्यदेषां मनसश्च सत्यम् । अ. २।३५।४
ऋषि बडे तेजस्वी हैं, उनको हमारा प्रणाम प्राप्त हो, इनकी आंख और मन सत्यस्वरूप रहते हैं ।

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः ।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥
अ. ३।३०।४
जिससे ज्ञानी आपसमें झगडते नहीं और आपसमें द्वेष भी नहीं करते, वह श्रेष्ठ ज्ञान आपके घरके पुरुषोंके लिये मैं करता हूं ।

ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु, मान्ये । अ. २।६।२
ज्ञानी ही तेरे यशके भागी बनें, न दूसरे ।

मयि एव अस्तु मयि श्रुतम् । अथर्व० १।१।२;३
पढा हुआ, सुना हुआ ज्ञान मेरे अन्दर स्थिर रहे । (प्राप्त किया ज्ञान भूला न जाय ।)

सं श्रुतेन गमेमहि । मा श्रुतेन विराधिषि ॥
अथर्व० १।१।४
हम सब ज्ञानसे युक्त हों । हम कभी ज्ञानसे वियुक्त न हों ।

इमं वर्धयता गिरः । अ. १।१५।२
वाणियां इसका गुणवर्धन करें । गुणगान करें ।

अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि । अ. २।१०।१
ज्ञानसे मैं तुझे निष्पाप करता हूं ।

उपास्मान् वाचस्पतिर्ह्वयताम् । अथर्व० १।१।४
ज्ञानी हमें बुलावें (और उपदेश करें, हमें मार्ग बतावें ।)

सूर्य चक्षुषा मा पाहि । अ. २।१६।३
हे सूर्य ! आंखसे मेरी सुरक्षा कर ।

विद्धि, शक्र धिया इहि आ नः । अ. २।५।४
उत्तम राज्यशासन कर, हे इन्द्र ! हमारे पास बुद्धिकी योजनासे आओ ।

एहि देवेन मनसा सह । अथर्व १।१।२
दिव्य मनके साथ इधर (मेरे समीप) आ । (मनमें दिव्य शक्ति है, उस दिव्य शक्तिसे प्रभावित हुए मनसे यहां आओ । मनमें दिव्य शक्ति धारण करके, जहां जाना हो, जाना चाहिये ।)

व्यापस्तृष्णयासरन् । अ. ३।३१।३
जल तृषासे दूर रहता है ।

इमामग्ने शरणिं मीमृषो नः । अ. ३।१५।४
हे अग्ने ! मेरी इस भूलको क्षमा करो ।

तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषं द्यौरभिसंतपाति । अ. २।१२।६
ज्ञानका द्वेष करनेवाले इस दुष्टको सब कार्य तापदायक हों । उस ज्ञानके द्वेष्टाको आकाश संतप्त करे ।

सूर्यमृतं तमसो ग्राहा अधि देवा मुञ्चन्तो असृजन्निरेनसः । अ. २।१०।८
देवोंने अंधकारकी पकडसे तथा पापसे छुडाकर सत्य स्वरूपी सूर्यको प्रकट किया है ।

प्रापेयं सर्वा आकूतीर्मनसा हृदयेन च ।

अ ३।२०।९

मनसे और हृदयसे सब संकल्पोंको प्राप्त कर सकूं ।

ब्रह्म वा यो निन्दिषत् क्रियमाणम् ।

अ २।१२।६

जो हमारे ज्ञानकी निंदा करता है । (वह सन्तापको प्राप्त हो)

तेजस्विता

सह वर्चसोदिहि । अ ३।३।१

तेजके साथ उदयको प्राप्त हो ।

तेन मामद्य वर्चसाग्ने वर्चस्विनं कृणु ॥

अ ३।२२।३

हे अग्ने ! उस तेजसे मुझे आज तेजस्वी कर ।

देवासो विश्वधायसस्ते माञ्जन्तु वर्चसा ।

अ ३।२२।२

सबका धारण करनेवाले देव मुझे तेजसे तेजस्वी करें ।

देवा इमं उत्तरस्मिन् ज्योतिषि धारयन्तु ।

अ १।९।१

प्राणवायु सब ओरसे मुझे घेरे और त्वष्टा मुझे पुष्टि देवे ।

इष्टापूर्तमवतु नः । अ २।१२।४

इष्ट कर्म तथा पूर्त कर्म हमारी रक्षा करें । (इच्छापूर्वक किया कर्म इष्ट और अपूर्णको पूर्ण करनेका कर्म पूर्त है ।)

धन

त्वं नो देव दातवे रयिं दानाय चोदय ।

अ ३।२०।५

हे देव ! तू दान देनेवालेके लिये दानके अर्थ धनको प्रेरित करो ।

ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावा पृथिवी संचरन्ति । ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धनमाहराणि ॥ अ ३।१५।२

जो सज्जनोंके जाने आनेके बहुतसे मार्ग द्यावा पृथिवीके बीचमें चल रहे हैं, वे मुझे घी और दूधसे तृप्त करें । जिनसे चलकर क्रयविक्रय करके मैं धनको प्राप्त करूं ।

यमध्वानमगाम दूरम् ।

शुनं नो अस्तु प्रपणो विक्रयश्च प्रतिपण फलिनं मा कृणोतु । अ ३।१५।४

मैं दूर मार्गपर आया हूं । क्रयविक्रय हमें हितकारी

इन्द्र इवेन्द्रियाण्यधि धारयामो अस्मिन्तद्दक्ष-
माणो विभरद्धिरण्यम् । अ. १।३५।२

इन्द्रके समान हम इंद्रियोंको धारण करते हैं जो दक्षतासे सुवर्ण धारण करता है (उसमें उत्तम इंद्रिय शक्ति रहती है ।)

नैनं रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते देवानामोजः
प्रथमजं ह्येतत् । अ. १।३५।२

इस सुवर्णको राक्षस और पिशाच (सूक्ष्मरोग कृमि) नहीं सह सकते । क्योंकि यह देवोंका पहिला सामर्थ्य है ।

तं जानन्नग्न आरोहाधा नो वर्धया रयिम् ।
अ. ३।२०।१

हे अग्ने ! उस मार्गको जानकर ऊपर चढ और हमारे धन बढा दो ।

तुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा
अस्तु मह्यम् । अ. ३।१५।१

मार्गपर लूटनेवाले, ढूंढते रहनेवाले शत्रुको दूर करके, वह ईश्वर मुझे धन देनेवाला होवे ।

भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः
स्याम । अ. ३।१६।३

हे भग ! गौओं और अश्वोंके साथ हमारी संतान वृद्धि कर । हम अच्छे मानवोंके साथ रहकर मानवोंसे युक्त हों ।

तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीमि स नो भग पुर-
एता भवेह । अ. ३।१६।५

हे भगवान् प्रभो ! तुझको मैं सब प्रकारसे भजता हूं । वह तू हमारा अगुवा हो ।

मयि पुष्यत यद्वसु । अ. ३।१४।२

हे गौओं ! जो धन है उससे मेरे साथ तुम हृष्ट-पुष्ट बनो ।

अपासमस्य सहवीरं रयिं दाः । अ. ३।१२।५

हमें वीर पुत्रोंके साथ धन दो ।

रयिं देवी दधातु मे । अ. ३।२०।३

देवी मुझे धन देवे ।

और वह हमारा अगुवा बने । (इन्द्र-शत्रुका विदारण करनेवाला)

यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमां धियं शतसे-
याय देवीम् । अ. ३।१५।३

जिससे इस दिव्य बुद्धिका ज्ञान द्वारा सन्मान करता हुआ मैं सैंकडों सिद्धियोंको प्राप्त करने योग्य होऊं ।

शुनं नो अस्तु चरितमुत्थितं च । अ. ३।१५।४

हमारा चालचलन और उत्थान हमें लाभदायी होवे ।

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा-
ददन्नः । अ. ३।१६।३

हे भग, हे बडे नेता, सत्य सिद्धि देनेवाले प्रभो ! इस बुद्धिको देकर हमारा रक्षण कर ।

भग एव भगवाँ अस्तु देवस्तेन वयं भगवन्तः
स्याम । अ. ३।१६।५

भाग्यवान् भगदेव मेरे साथ रहे, उसके साथ रहनेसे हम भाग्यवान् हों ।

भगस्य नावमारोह, पूर्णामनुपदस्वतीम् ।
तयोपप्रतारय, यो वरः प्रतिकाम्यः ॥ अ. २।३६।५

पूर्ण तथा अटूट ऐश्वर्यकी नौकापर चढ, उस नौकासे उसके पास आ जो वर तेरी कामनाके योग्य हो ।

परि मां, परि मे प्रजां परि णः पाहि यद्धनम् ।
अ. २।७।५

मेरी रक्षा कर, मेरी प्रजाकी रक्षा कर, हमारे धनकी रक्षा कर ।

उच्छ्रयस्व महते सौभगाय । अ. ३।१२।२

बडे सौभाग्यके लिये ऊंचा होकर रह ।

अस्मिन् तिष्ठतु या रयिः । अ. १।१५।२

इसमें पर्याप्त धन रहे ।

तासु त्वान्तर्जरस्या दधामि, प्र यक्ष्म एतु निर्ऋतिः पराचैः । अ. २।१०।५

तुझको वृद्धावस्थामें मैं धारण करता हूं । क्षय रोग तथा अन्य सब कष्ट तुझसे दूर चले जांय ।

अग्नी रक्षोहामीवचातनः । अ. १।२८।१

अग्नि राक्षसोंका नाश करके रोगोंको दूर करनेवाला है । (रक्षः- रोगकृमि)

अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते ।
गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि ॥
अ. १।२२।१

तुम्हारा हृदयविकार तथा कामिला या पीलापन सूर्योदयके साथ जानेवाले लाल किरणोंके लाल वर्णसे तुझे चारों ओर घेर कर मैं दूर करता हूं ।

किलासं च पलितं च निरितो नाशया पृषत् ।
अ. १।२३।२

इस शरीरसे कुष्ठ व सफेद धब्बे दूर कर ।

अस्थिजस्य किलासस्य तनूजस्य च यत्त्वचि ।
दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्म श्वेतमनीनशम् ।
अ. १।२३।४

दोषके कारण त्वचापर उत्पन्न हुए, अस्थिसे तथा शरीरसे उत्पन्न हुए, कुष्ठका जो त्वचापर चिन्ह है उसको हम ज्ञानसे विनष्ट करते हैं ।

शेरभक शेरभ पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः । यस्य स्थ तमत्त, यो वः प्राहैत्तमत्त, स्वा मांसान्यत्त ॥ अ. २।२४।१

हे वध करनेवाले शत्रु ! तुम्हारे यातना देनेवाले शस्त्र, तथा हे खाऊ लोगो ! तुम जिनके हो उसको खाओ, जिन्होंने तुम्हें भेजा है उनको खाओ, अपने ही मांस खाओ । (हम सुरक्षित रहें ।)

गिरिमेनां आवेशय कण्वान् जीवितयोपनान् ।

दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरूरुमतृहम् । अल्गण्डून् त्सर्वाञ्छलुनान्क्रिमीन्वचसा जम्भयामसि ॥
अ. २।३१।२

दीखनेवाले, न दीखनेवाले कृमियोंको मैं मारता हूं । रेंगनेवाले कृमियोंको मैं विनष्ट करता हूं । बिछौने पर रहनेवाले सब कृमियोंको *मन्त्रसे मैं नष्ट करता हूं ।*

निःसालां धृष्णुं धिषणमेकवाद्यां जिघत्स्वम् ।
सर्वाश्चण्डस्य नप्त्यो नाशयामः सदान्वाः ॥
अ. २।१४।१

बारबार न होना, भयभीत होना, एकवचनी निश्चयात्मक बुद्धिका नाश करना, क्रोधको सब सतावें, दानववृत्तियां आदिका हम नाश करते हैं ।

ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् । अ. ३।११।१

यदि जकडनेवाले रोगने इसको पकड रखा हो, तो उस पीडासे इन्द्र और अग्नि इसको छुडावें ।

आ त्वा रुहो विशतां वर्णः परा शुक्लानि पातय ।
अ. १।२३।२

तुम्हारे शरीरका निजवर्ण तुम्हें प्राप्त हो और श्वेत धब्बे दूर हों ।

अमुञ्चा यक्ष्मात् दुरितादवद्यात् द्रुहः पाशाद् ग्राह्याश्चोदमुञ्चथाः । अ. २।१०।६

क्षयरोग, पाप, निंद्यकर्म, द्रोहियोंके पाश और जकडनेवाले रोग आदिसे मैं तुम्हें छुडाता हूं ।

कृत्या कृतिरसि, हेत्या हेतिरसि, मेन्या मेनिरसि ।
अ. २।११।१

दोषको दूर करनेवाला, हथियारका हथियार, वज्रका वज्र तू (आत्मा) है ।

नो वर्धया रयिं— हमारा धन बढाओ ।

ईशानो धनदा अस्तु मह्यं— परमेश्वर मुझे धन देनेवाला हो ।

मयि पुष्यतु यद्वसु— जो धन है वह मेरे पास बढता रहे ।

अस्मभ्यं सहवीरं रयिं दाः— हमें वीर पुत्रोंसहित धन दो ।

रयिं देवी दधातु मे— देवी मुझे धन देवे ।

रयिं च नः सर्ववीरं नियच्छ— धन और वीर पुत्र हमें दो ।

वयं भगवन्तः स्याम— हम धनवान् हों ।

भगस्य नावमारोह— ऐश्वर्यकी नौका पर चढ ।

परि णः पाहि यद्धनम्— हमारे धनका संरक्षण कर ।

उत्तिष्ठ महते सौभगाय— बडे सौभाग्यके लिये उठकर खडा रह ।

अस्मिन् तिष्ठतु या रयिः— इसके पास धन रहे ।

ऐसे वचन हैं जो मनमें रखने योग्य होते हैं । इनमेंसे कोई एक वचन मनमें १०।२० बार विचारपूर्वक रखिये । ऐसा करनेसे धनका महत्व ध्यानमें आ जायगा और धन पास रहनेसे कैसा सुख होगा, इसका भी पता लग जायगा ।

आरोग्य

सेना ते तन्वे शं करं, पृथिव्यां ते निषेचनं
बहिष्टे अस्तु बालिति । अथर्व ११३।१-५

इससे तेरे शरीरका कल्याण करता हूं, पृथिवीपर तेरा सुखसे रहना हो । तेरे शरीरसे सब दोष दूर हों ।

अन्वान्त्र्यं शीर्षण्यमथो पार्ष्टेयं क्रिमीन् ।
अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन् वचसा जम्भयामसि ॥

उद्यन्नादित्यः क्रिमीन्हन्तु, निम्रोचन्हन्तु रश्मिभिः ।
ये अन्तः क्रिमयो गवि ॥ अ. २।३२।१

उदय होनेवाला सूर्य रोगकृमियोंका नाश करे, अस्त होनेवाला सूर्य किरणोंसे कृमियोंका नाश करे जो कृमि भूमि पर हैं ।

विश्वरूपं चतुरक्षं क्रिमिं सारंगमर्जुनम् ।
शृणाम्यस्य पृष्टीरपि वृश्चामि यच्छिरः ॥
अ. २।३२।२

अनेक रूपोंवाले, चार आंखवाले, रेंगनेवाले, श्वेतांगवाले ऐसे अनेक प्रकारके कृमि होते हैं, उनके पीठ और सिर मैं तोडता हूं ।

अत्रिवद्वः क्रिमयो हन्मि कण्ववज्जमदग्निवत् ।
अगस्त्यस्य ब्रह्मणा सं पिनष्म्यहं क्रिमीन् ॥
अ. २।३२।३

अत्रि, कण्व, जमदग्निके समान मैं कृमियोंका नाश करता हूं । अगस्त्यकी विद्यासे मैं कृमियोंको कुचलता हूं ।

हतो राजा क्रिमीणां उतैषां स्थपतिर्हतः ।
हतो हतमाता क्रिमिर्हतभ्राता हतस्वसा ॥
अ. २।३२।४

कृमियोंका राजा मारा गया, उनका स्थानपति मारा गया है । कृमिकी माता, बहिन और भाई मारा गया है ।

हतासो अस्य वेशसो हतासः परिवेशसः ।
अथो ये क्षुल्लका इव सर्वे ते क्रिमयो हताः ॥
अ. २।३२।५

इस कृमिके परिचारक मारे गये, इसके सेवक पीसे गये, जो क्षुल्लक कृमि हैं वे सब मारे गये हैं ।

प्र ते शृणामि शृङ्गे याभ्यां वितुदायसे ।

तासु त्वान्तर्जरस्या दधामि, प्र यक्ष्म एतु निर्ऋतिः पराचैः । अ. २।१०।५

तुमको वृद्धावस्थामें मैं धारण करता हूं । क्षय रोग तथा अन्य सब कष्ट तुमसे दूर चले जाय ।

अग्नी रक्षोहामीवचातनः । अ. १।२८।१

अग्नि राक्षसोंका नाश करके रोगोंको दूर करनेवाला है । (रक्षः- रोगकृमि)

अनुसूर्यमुदयतां हृद्योतो हरिमा च ते ।
गोरोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परिदध्मसि ॥ अ. १।२२।१

तुम्हारा हृदयविकार तथा कामिला या पीलापन सूर्योदयके साथ आनेवाले लाल किरणोंके लाल वर्णसे तुझे चारों ओर घेर कर मैं दूर करता हूं ।

किलासं च पलितं च निरितो नाशया पृषत् । अ. १।२३।२

इस शरीरसे कुष्ठ व सफेद धब्बे दूर कर ।

अस्थिजस्य किलासस्य तनूजस्य च यत्त्वचि ।
दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्म श्वेतमनीनशम् । अ. १।२३।४

दोषके कारण त्वचापर उत्पन्न हुए, अस्थिसे तथा शरीरसे उत्पन्न हुए, कुष्ठका जो त्वचापर चिन्ह है उसको हम ज्ञानसे विनष्ट करते हैं ।

शेरभक शेरभ पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेतिः किमीदिनः । यस्य स्थ तमत्त, यो वः प्राहैत्तमत्त, स्वा मांसान्यत्त ॥ अ. २।२४।१

हे वध करनेवाले शत्रु ! तुम्हारे यातना देनेवाले शस्त्र, तथा हे खाऊ लोगों ! तुम जिनके हो उसको खाओ, जिन्होंने तुम्हें भेजा है उनको खाओ, अपने ही मांस खाओ । (हम सुरक्षित रहें ।)

गिरिमेनाँ आवेशय कण्वान् जीवितयोपनान् । अ. २।२५।४

इन जीवितका नाश करनेवाले, पीडा देनेवाले कृमियोंको पहाडपर पहुंचाओ (ये रोगकृमि हमें कष्ट न दें ।)

क्षेत्रियात्त्वा निर्ऋत्या जामिशंसाद् द्रुहो मुञ्चामि वरुणस्य पाशात् । अ. २।१०।१

आनुवंशिक रोग, कष्ट, संबंधियोंसे कष्ट, द्रोह तथा वरुणके पाशसे तुझे मैं छुडवाता हूं ।

दृष्टमदृष्टमतृहमथो कुरूरुमतृहम् । अल्गण्डून्त्सर्वाञ्छलुनान्क्रिमीन्वचसा जम्भयामसि ॥ अ. २।३१।२

दीखनेवाले, न दीखनेवाले कृमियोंको मैं मारता हूं । रेंगनेवाले कृमियोंको मैं विनष्ट करता हूं । बिस्तरे पर रहनेवाले सब कृमियोंको वचासे मैं नष्ट करता हूं ।

निःसालां धृष्णुं धिषणमेकवाद्यां जिघत्स्वम् ।
सर्वाश्चण्डस्य नप्त्यो नाशयामः सदान्वाः ॥ अ. २।१४।१

घरदार न होना, भयभीत होना, एकवचनी निश्चयात्मक बुद्धिका नाश करना, क्रोधकी सब सतानें, दानववृत्तियां आदिका हम नाश करते हैं ।

ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्रमुमुक्तमेनम् । अ. ३।११।१

यदि जकडनेवाले रोगने इसको पकड रखा हो, तो उस पीडासे इन्द्र और अग्नि इसको छुडावे ।

आ त्वा स्वो विशतां वर्णः परा शुक्लानि पातय । अ. १।२३।२

तुम्हारे शरीरका निजवर्ण तुम्हें प्राप्त हो और श्वेत धब्बे दूर हों ।

अमुक्था यक्ष्माद् दुरितादवद्याद् द्रुहः पाशाद् ग्राह्याश्चोदमुक्थाः । अ. २।१०।६

क्षयरोग, पाप, निंद्यकर्म, द्रोहियोंके पाश और जकडनेवाले रोग आदिसे मैं तुम्हें छुडाता हूं ।

दूष्या दूषिरसि, हेत्या हेतिरसि, मेन्या मेनिरसि । अ. २।११।१

दोषको दूर करनेवाला, हथियारका हथियार, वज्रका वज्र तू (आत्मा) है ।

दशवृक्ष मुञ्चेमं रक्षसो ग्राह्या अधि यैनं जग्राह पर्वसु । अथो एनं वनस्पते जीवानां लोकमुन्नय । अ. २।९।१

हे दशवृक्ष ! इस रोगीको गठियारोगसे इस रोगीको दूर कर । जो रोग इसको संधियोंमें पकड रखता है । हे वनस्पति ! इसको जीवित लोगोंमें ऊपर उठा ।

नमः शीताय तक्मने नमो रूराय शोचिषे

व्यात्यां पवमानः । अ. ३।३१।२
शुद्ध मनुष्य पीडासे दूर रहता है ।
मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मा-
दुत राजयक्ष्मात् । अ. ३।११।१
सुखपूर्वक जीवनके लिये तुझको हम अज्ञात रोगसे तथा राजयक्ष्मासे हवन द्वारा छुडाते हैं ।
मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ।
अ. १।१३।२
हमारे शरीरोंको सुख हो, हमारे बालबच्चोंको सुख दो।
वि महच्छर्म यच्छ, वरीयो यावया वधम् ।
अ. १।२०।३
बडा शान्तिसुख हमें दो, शत्रुका शस्त्र हमसे दूर कर दो।
कामो दाता, कामः प्रतिग्रहीता । अ. ३।२९।७
काम दाता और काम ही लेनेवाला है ।
कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह ।
अ. ३।२४।५
किये हुए कार्यकी यहां वृद्धि कर ।
यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं
तन्वः स्वायाः । तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव
सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पशून् ॥ अ. ३।२८।५
जहां सुहृद तथा सत्कर्मकर्ता, अपने शरीरके रोगको त्याग कर आनंदसे रहते हैं, हे जुडवे बच्चे देनेवाली गौ ! उस स्थानपर जाकर रह, हमारे मनुष्यों और पशुओंकी हिंसा न हो ।
सर्वान् कामान्पूरयत्याभवन् प्रभवन्भवन् ।
आकूतिप्रोऽविर्दत्तः शितिपान्नोप दस्यति ॥
अ. ३।२९।२
यह दिया हुआ करभार सब प्रजाके संकल्पोंको पूर्ण करता है । हिंसकोंको दबाता है । प्रजाका रक्षण करता है । प्रभावी बनकर, अस्तित्वका रक्षण करता है और विनाशसे बचाता है ।
विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु । अ. ३।३।१७
हम सबके लिये यह विश्व उत्तम सहायक तथा ज्ञान देनेवाला हो ।
अग्ने अच्छा वदेह नः प्रत्यङ् नः सुमना भव ।
अ. ३।२०।२
यहां हमारे साथ अच्छी तरह बोल । हमारे सन्मुख उत्तम मनवाला हो ।
वि पन्थानो दिशं दिशम् । अ. ३।३१।४
मार्ग भिन्न दिशाओंमें भिन्न-भिन्न होकर जाते हैं ।
ये वध्यमानमनु दीध्याना अन्वैक्षन्त मनसा
चक्षुषा च । अग्निष्टानग्रे प्रमुमोक्तु देवो
विश्वकर्मा प्रजया संरराणः ॥ अ. २।३४।३
यज्ञको जो मनसे और आंखसे प्रेमपूर्वक देखते हैं, उनको विश्वका बनानेवाला और प्रजाके साथ रहनेवाला अग्नि देव प्रथम मुक्त करे ।
बृहस्पतये महिष द्युमन्नमो, विश्वकर्मन्, नमस्ते, पाह्यस्मान् ॥ अ. २।३५।४
महाशक्तिमान् ! ज्ञानी तेजस्वी विश्वके रचयिता, आपको हमारा नमस्कार हो, आपको नमस्कार है, हमारी सुरक्षा कर ।
स्वर्णीप त्वां मदाः सुवाचो अगुः । अ. २।५।२
स्वर्गीय आनंदके समान उत्तम भाषणसे होनेवाले आनंद तुम्हारे पास पहुंचे हैं ।
सुमृडत, मृडत, मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि । अ. १।२६।४
आश्रय दो, सुखी करो, हमारे शरीरोंको सुखी रखो । हमारे बालबच्चोंके लिये आनंद प्राप्त हो ऐसा करो ।
इमां देवा असाधिषुः सौभगाय । अ. १।१८।२
इस कन्याको देवोंने सौभाग्यके लिये उत्पन्न की है ।
शं मे चतुर्भ्यो अंगेभ्यः शमस्तु तन्वे मम ।
अ. १।१२।४
'मेरे चारों अंगोंके लिये आरोग्य हो, मेरे शरीरके लिये नीरोगिता हो ।
अग्निं च विश्वशंभुवम् । अ. १।६।२
अग्नि सब प्रकारका सुख देनेवाला है ।
यो ददाति शितिपादमविं लोकेन संमितम् ।
स नाकमभ्यारोहति यत्र शुल्को न क्रियते
अबलेन बलीयसे ॥ अ. ३।२९।३
जो लोगोंसे संमानित, हिंसकोंका नाश करनेवाले संरक्षक करभारको देता है, वह दुःख रहित स्थानको प्राप्त करता है, जहां निर्बलको बलवानके लिये कर नहीं देना होता है ।

घृणोमि। यो अन्येद्युरुभयद्युरभ्येति तृतीय-
काय नमोऽस्तु तक्मने ॥ अ. १।२५।४

शीतज्वरके लिये नमस्कार, रूक्ष ज्वरके लिये नमस्कार जो एक दिन छोडकर आता है, जो दो दिन आता है, जो तीसरे दिन आता है उस ज्वरके लिये नमस्कार हो।

अर्थात् यह ज्वर हमसे दूर हो।

यदिस्थ क्षेत्रियाणां यदि पुरुषेषिताः।
यदि दस्युभ्यो जाता नश्यतेतः सदान्वाः ॥
अ. २।१४।५

यदि आनुवंशिक दोष हैं, यदि मनुष्यकी प्रेरणासे हुए हैं, *यदि दस्युओंसे हुए हैं वे सब दोष यहांसे हटें।*

आसुरी चक्रे प्रथमेदं किलासभेषजमिदं
किलासनाशनम्। अनीनशत् किलासं सरू-
पामकरत्त्वचम् ॥ अ. १।२४।२

आसुरीने पहिले यह कुष्टनाशक औषध बनाया। इससे कुष्ठ विनष्ट हुआ और त्वचा समान रंगवाली बनी।

आरोग्यके विषयमें रोगकृमिका नाश करना मुख्य है। स्वच्छता की जाय, शुद्ध वायु आता रहे, सूर्यप्रकाश आजाय, हवन गौके घीका होता रहे ये सब बातें आरोग्य-संवर्धनके लिये अत्यावश्यक हैं।

सूर्य रोगकृमियोंका नाशक मुख्यतया है। सूर्यप्रकाश नाशकार्य करनेवाला है इसलिये रहनेके घरमें सूर्यप्रकाश विपुल आना चाहिये।

अग्नी रक्षोहाऽमीवचातनः।

अग्नि रोगकृमियोंका नाशक और रोग दूर करनेवाला है। इस दृष्टिसे इन मंत्रोंका विचार करना चाहिये।

विजय

सपत्न-क्षयणो वृषाभिराष्ट्रो विषासहिः।
यथाहमेषां वीराणां विराजानि जनस्य च ॥

पितेव पुत्रानभि रक्षतादिमम्। अ. २।१३।१
पिता पुत्रोंकी रक्षा करता है उस तरह इसकी रक्षा करो।

आशीर्ण, ऊर्जमुत सौप्रजास्त्वं, दक्षं धत्तं
द्रविणं सचेतसौ। जयं क्षेत्राणि सहसाय-
मिन्द्र कृण्वानो अन्यानधरान्त्सपत्नान् ॥
अ. २।२९।३

हमें आशीर्वाद दो, हे संतुष्ट मनवालो! बल, सुप्रजा, दक्षता तथा धन हमें दो। यह अपने बलसे विविध क्षेत्रोंमें जय प्राप्त करे और दूसरे शत्रुओंको नीचे करे।

त्रिष्वा रूपाणि बिभ्रतः त्रिषप्ताः परियन्ति।
अथर्व १।१।१

सब रूपोंको धारण करके, तीन गुणा सात (*अर्थात* इक्कीस) पदार्थ सर्वत्र चलते हैं। (ये इक्कीस पदार्थ विश्वमें दीखनेवाले पदार्थोंके रूप धारण करते हैं।)

यः सहमानश्चरति सासहान इव ऋषभः।
तेनाश्वत्थ त्वया वयं सपत्नान्त्सहिषीमहि।
अ. ३।६।४

जो बलवान् शत्रुको दबानेवाला, सामर्थ्यवान् होकर चलता है, उस वीरसे हम शत्रुओंको पराजित करेंगे।

मनुष्यके जीवनमें शत्रुका पराभव करना और विजय प्राप्त करना मुख्य बातें हैं। इसीसे मनुष्य सुखी हो सकता है।

सुखप्राप्ति

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो
जगते पुरुषेभ्यः। अ. १।३१।४

माता, पिता, गौवें, पुरुष तथा चलनेवाले प्राणियोंको सुख प्राप्त हो।

ते पिशि क्षेममदीधरन्। अ. ३।३।५
प्रजाजनोंमें तेरा क्षेम धारण करें।

मातेवास्मा अदिते शर्म यच्छ। अ. २।२८।५
हे अदिते! माताके समान इसे सुख दे।

एतु प्रथमाजाताममुविता पुरः। अ. ३।२७।४

व्यात्यां पवमानः । अ. ३।३१।२
शुद्ध मनुष्य पीडासे दूर रहता है ।

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मा-
दुत राजयक्ष्मात् । अ. ३।११।१
सुखपूर्वक जीवनके लिये तुझको हम अज्ञात रोगसे तथा राजयक्ष्मासे हवन द्वारा छुडाते हैं ।

मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ।
अ. १।१३।२
हमारे शरीरोंको सुख दो, हमारे बालबच्चोंको सुख दो।

वि महच्छर्म यच्छ, वरीयो यावया वधम् ।
अ. १।२० ३
बडा शान्तिसुख हमें दो, शत्रुका शस्त्र हमसे दूर कर दो।

कामो दाता, कामः प्रतिग्रहीता । अ. ३।२९।७
काम दाता और काम ही लेनेवाला है।

कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह ।
अ. ३।२४।५
किये हुए कार्यकी यहां वृद्धि कर ।

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं
तन्वः स्वायाः । तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव
सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पशून् ॥ अ. ३।२८।५
जहां सुहृद तथा सत्कर्मकर्ता, अपने शरीरके रोगको त्याग कर आनंदसे रहते हैं, हे जुडवे बच्चे देनेवाली गौ ! उस स्थानपर जाकर रह, हमारे मनुष्यों और पशुओंकी हिंसा न हो।

सर्वान् कामान्पूरयत्याभवन् प्रभवन्भवन् ।
आकूतिप्रोऽविर्दत्तः शितिपान्नोप दस्यति ॥
अ. ३।२९।२
यह दिया हुआ करभार सब प्रजाके संकल्पोंको पूर्ण करता है । हिंसकोंको दबाता है । प्रजाका रक्षण करता है । प्रभावी बनकर, अस्तित्वका रक्षण करता है और विनाशसे बचाता है ।

विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु । अ. १।३१।४
हम सबके लिये यह विश्व उत्तम सहायक तथा ज्ञान देनेवाला हो ।

भद्रं भद्रया वदन्त नः प्रत्यङ् ना सुमना भव।
अ. ३।३०।२
यहां हमारे साथ अच्छी तरह बोल। हमारे सन्मुख उत्तम मनवाला हो ।

वि पन्थानो दिशं दिशम् । अ. ३।३१।४
मार्ग भिन्न दिशाओंमें भिन्न-भिन्न होकर जाते हैं ।

ये भक्ष्यमाणमनु दीध्याना अन्वैक्षन्त मनसा
चक्षुषा च । अग्निष्टानग्रे प्रमुमोक्तु देवो
विश्वकर्मा प्रजया संरराणः ॥ अ. २।३४।३
पशुको जो मनसे और आंखसे प्रेमपूर्वक देखते हैं, उनको विश्वका बनानेवाला और प्रजाके साथ रहनेवाला अग्नि देव प्रथम मुक्त करे ।

बृहस्पतये महिष द्युमन्नमो, विश्वकर्मन्, नम-
स्ते, पाह्यस्मान् ॥ अ. २।३५।४
महाशक्तिमान् ! ज्ञानी तेजस्वी विश्वके रचयिता, आपको हमारा नमस्कार हो, आपको नमस्कार है, हमारी सुरक्षा कर ।

स्वर्णीय त्वां मदाः सुवाचो अगुः । अ. २।५।२
स्वर्गीय आनंदके समान उत्तम भाषणसे होनेवाले आनंद तुम्हारे पास पहुंचे हैं ।

सुमृडत, मृडत, मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोके-
भ्यस्कृधि । अ. १।२६।४
आश्रय दो, सुखी करो, हमारे शरीरोंको सुखी रखो । हमारे बालबच्चोंके लिये आनंद प्राप्त हो ऐसा करो ।

इमां देवा असाधिषुः सौभगाय । अ. १।१८।२
इस कन्याको देवोंने सौभाग्यके लिये शपथ की है ।

शं मे चतुर्भ्यो अंगेभ्यः शमस्तु तन्वे मम ।
अ. १।१२।४
'मेरे चारों अंगोंके लिये आरोग्य हो, मेरे शरीरके लिये नीरोगिता हो ।

अग्नि च विश्वशंभुवम् । अ. १।६।२
अग्नि सब प्रकारका सुख देनेवाला है ।

यो ददाति शितिपादमविं लोकेन संमितम् ।
स नाकमभ्यारोहति यत्र शुल्को न क्रियते
अबलेन बलीयसे ॥ अ. ३।२९।३
जो लोगोंसे संमानित, हिंसकोंका नाश करनेवाले भेंटरूप करभारको देता है, वह दुःख रहित स्थानको प्राप्त करता है, जहां निर्बलको बलवानके लिये धन नहीं देना होता है ।

इस तरह सुख प्राप्त हुआ तो मनुष्यकी आयु दीर्घ होती है। रोग दूर हो, स्वास्थ्य प्राप्त हो, मन आनन्द प्रसन्न रहे तो मनुष्य दीर्घायु होता है।

दीर्घ आयु

इस प्रकरणमें आये मन्त्रोंका विशेष उपयोग है। इन मंत्रभागोंका जप करनेसे लाभ होता है—

शरीरमस्याङ्गानि जरसे वहतं पुनः। अ. ३।११।६

इसका शरीर और इसके अवयव वृद्धावस्थातक पहुंचाओ।

ये देवा दिवि ष्ठ, ये पृथिव्यां, ये अन्तरिक्ष ओषधीषु पशुष्वन्तः। ते कृणुत जरसमायुरस्मै शतमन्यान् परि वृणक्तु मृत्यून् ॥ अ. १।३०।३

जो देव द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथ्वीपर हैं। जो औषधियों और पशुओंमें हैं। वे देव इसके लिये वृद्धावस्थातककी आयु करें। सैकडों अन्य प्रकारके मृत्यु दूर हों।

कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम्। अ. २।१३।४

सब देव तेरी आयु सौ वर्षको करें।

तं प्रियासं बहु रोचमानो दीर्घायुत्वाय शतशारदाय। अ. ३।५।४

उस प्रियको प्राप्त कर, बहुत प्रकाशित होकर, सौ वर्षकी दीर्घायु प्राप्त करूं।

दशमीमुग्रः सुमना वशेह। अ. ३।४।७

तू यहां उग्रवीर तथा उत्तम मनवाला होकर दसवीं दशक तक सब राज्यको अपने वशमें (अर्थात् अपने अनुकूल) कर।

परि धत्त, धत्त नो वर्चसेमं जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः। अ. २।१३।२

हमारे इस पुरुषको धारण करो, तेजसे युक्त करके इसको धारण करो, दीर्घायु इसको देकर जरावस्थाके पश्चात् इसका मृत्यु हो ऐसा करो।

शतं च जीव शरदः पुरूची, रायस्पोषमुपसंव्ययस्व। अ. २।१३।३

सौ वर्षतक पूर्ण रीतिसे जीओ और धन और पोषण उत्तम रीतिसे प्राप्त करो।

इन्द्र एतां ससृजे विद्धो अग्र ऊर्जां स्वधामजरां, सा त एषा। तया त्वं जीव शरदः सुवर्चा, मा त आ सुस्रोद्भिषजस्ते अक्रन् ॥ अ. २।२९।७

इन्द्रने भक्ति करनेपर अन्न, बल, धारकशक्ति, अक्षीणता आदिको उत्पन्न किया, यह शक्ति तुम्हारे लिये है। इससे तू युक्त होकर बहुत वर्ष जीवित रह, तेजस्वी बन, तेरे लिये न्यूनता न हो। वैद्योंने तेरे लिये यह रसयोग बनाया है।

अभि त्वा जरिमाहित गामुक्षणमिव रज्ज्वा। अ. ३।११।८

जिस तरह गाय और बैलको रज्जुसे बांधते हैं वैसा वृद्धावस्था तेरे साथ बंधी रहे।

जरायै त्वा परिददामि। अ. ३।११।७

वृद्धावस्थाके लिये तुझे देता हूं।

वि देवा जरसावृतन्। अ. ३।३१।१

देव जरासे दूर रहते हैं।

स्वस्त्येनं जरसे वहाथ। अ. १।३०।२

इसको वृद्ध आयुतक सुखसे पहुंचा दे।

विश्वेदेवा जरदष्टिर्यथासत्। अ. २।२८।५

सब देव यह वृद्ध होनेतक जीवे, ऐसा करें।

जरायै निधुवामि ते। अ. ३।११।७

वृद्धावस्थातक तुझे पहुंचाता हूं।

जरा त्वा भद्रा नेष्ट। अ. ३।११।७

तुझे वृद्धावस्था सुख देवे।

वि यक्ष्मेण, समायुषा। अ. ३।३१।१–११

यक्ष्मरोगसे मैं दूर रहूं। दीर्घायुसे मैं संयुक्त रहूं।

मित्र एनं वरुणो वा रिशादा जरामृत्युं कृणुतां संविदानौ। अ. २।२८।२

मित्र तथा शत्रुनाशक वरुण जानते हुए इसको जराके पश्चात् मृत्युको प्राप्त होनेवाला दीर्घायु करें।

दीर्घायुत्वाय महते रणायारिष्यन्तो दक्षमाणाः सदैव। मणिं विष्कन्धदूषणं जङ्गिडं बिभृमो वयम् ॥ अ. २।४।१

दीर्घायु प्राप्त हो, बड़ा आनंद प्राप्त हो, शोषकरोग दूर हो इसके लिये जंगिड मणिको, हम सब विनष्ट न होनेवाले और अपना बल बढानेकी इच्छा करनेवाले सदैव धारण करते हैं।

रायस्पोषं सवितरा सुवास्मै शतं जीवाति शरदस्तवायम्। अ २।२९।२

धन और पोषण, हे सविता! इसे तू दे। और यह तेरा बनकर सौ वर्ष जीवित रहे।

इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम्। अ. ३।११।३

सब पापजनित दुःखके पार इसको इन्द्र ले जाय और यह सौ वर्षकी आयु इसे मिले ऐसा करे।

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्तान् शतमु वसन्तान्। अ ३।११।४

सौ वर्षतक बढता हुआ जीवित रह। सौ हेमन्त, सौ वसन्त और सौ शरद ऋतुतक जीवित रहे।

सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाहार्षमेनम्। अ ३।११।३

सहस्रों शक्तियोंसे युक्त, सौ वीर्योंसे युक्त, शतायु करनेवाले हवनसे इसको मैं मृत्युसे वापस लाया हूं।

शतायुषा हविषाहार्षमेनम्। अ. ३।११।४

सौ वर्षकी आयु देनेवाले हवनसे मैं इसे वापस लाया हूं।

शतं जीवाति शरदस्तवायम्। अ १।१०।२

तुम्हारा यह मनुष्य सौ वर्ष जीवित रहे।

आयुरस्मै धेहि जातवेदः। अ २।२९।२

हे जातवेद! इसको दीर्घायु दे।

यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपाशया।
तं ते सत्यस्य हस्ताभ्यां उदमुञ्चद्बृहस्पतिः॥
अ ३।११।८

जिस मृत्युने तुझे उत्पन्न होते ही बांध रखा है उससे तुझको बृहस्पति सत्यके हाथोंसे छुडा देता है।

तुभ्यमेव जरिमन् वर्धतामयं मेममन्ये मृत्यवो हिंसिषुः शतं ये। अ २।२८।१

हे वृद्धावस्थे! तेरी आयुतक यह मनुष्य बढे। ये जो सैकडों मृत्यु हैं वे इसकी हिंसा न करें।

इममग्न आयुषे वर्चसे नय प्रियं रेतो वरुण मित्र राजन्। अ २।२८।५

हे अग्ने, हे वरुण, हे मित्र राजन्! इसको वीर्यवान् करके दीर्घायु तथा तेजके प्रति ले जा।

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव। तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्षमेनं शतशारदाय॥ अ ३।११।२

यदि इसकी आयु समाप्त हुई हो, यदि यह मृत्युके समीप पहुंचा हो, तो भी विनाशके पाससे मैं इसको वापस लाता हूं और इसको सौ वर्षतक मैं जीवित रखता हूं।

यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः। अ १।३५।२

जो दाक्षायण सुवर्ण शरीरपर धारण करता है वह जीवोंमें दीर्घायु धारण करता है।

परि त्वा रोहितैर्वर्णैर्दीर्घायुत्वाय दध्मसि।
यथायमरपा असदथो अहरितो भुवत्।
अ १।२२।२

लाल रंगोंके किरणोंमें मैं तुझे दीर्घायु प्राप्त होनेके लिये धरता हूं। इससे यह नीरोग होगा और पीलिमा भी इससे दूर होगी।

उदायुषा समायुषोदोषधीनां रसेन।
अ ३।३१।१०

आयुष्यसे उच्च बन, दीर्घायुसे युक्त हो, औषधियोंके रससे उन्नतिको प्राप्त हो।

कृत्यादूषिरयं मणिरथो अरातिदूषिः।
अथो सहस्वाञ्जङ्गिडः प्र ण आयूंषि तारिषत्॥

यह जंगिड मणि हिंसासे बचानेवाला है, शत्रु भूत दोनोंको दूर करनेवाला है और बल बढानेवाला है, वह हमारी आयुको बढावे।

यदा बध्नन्दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः। तत्ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय॥ अ १।३५।१

उत्तम मनवाले बलकी वृद्धि करनेकी कामना करनेवाले श्रेष्ठ पुरुष सैकडों बल प्राप्त करनेके लिये शरीरपर सुवर्ण (का आभूषण) रखते हैं। वह सुवर्ण दीर्घायु, तेजस्विता, बल, सौ वर्षकी दीर्घ आयु प्राप्त हो इसलिये तेरे शरीरपर बांधता हूं।

एतान्ये यन्तु मृत्यवो यानाहुरितरान् शतम्।
अ ३।११।५,७

सैकडों प्रकारके मृत्यु या दुःख इससे दूर हों।

आ पर्जन्यस्य वृष्ट्योदस्थामामृता वयम्।
अ. ३।३१।११

पर्जन्यकी वृष्टिजलसे हम वनस्पतिको प्राप्त हों और हम अमर बनें। हमें शीघ्र मृत्यु न आवे।

इहैव स्तं प्राणापानौ माप गातमितो युवम्।
अ. ३।११।६

हे प्राण और अपान यहां रहो, तुम इससे दूर न जाओ।

प्राणेन प्राणतां प्राणेहैव भव, मा मृथाः।
अ. ३।३१।९

जीवित रहनेवालोंकी जैसी प्राणशक्ति प्राप्त कर और यहां जीवित रह, मत मर जा।

प्राणापानाभ्यां गुपितः शतं हिमाः। अ. २।२८।४

प्राण तथा अपान द्वारा सुरक्षित होकर यह सौ हिमकाल-सौ वर्ष-जीवित रहे।

आयुष्मतामायुष्कृतां प्राणेन जीव, मा मृथाः।
अ. ३।३१।८

दीर्घ आयुवालों और आयुष्य बढानेवालोंकी जैसी प्राणशक्तिसे जीवित रह, मत मर जा।

प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं। अ. २।१६।१

हे प्राण और अपान! मृत्युसे मेरी सुरक्षा करो।

प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम्।

द्यु पिता और पृथिवी माता ज्ञानपूर्वक इसको जराके पश्चात् मृत्यु हो ऐसा करें।

मनुष्य दीर्घ आयु चाहता है। इसलिये दीर्घायु चाहनेवाला मनुष्य यहां दिये, वचनोंका जप करें, वारंवार उच्चारण करें, वारंवार भजन करें। लाभ अवश्य होगा जैसा—

शरीरं अस्याङ्गानि जरसे वहतं— इसका शरीर और इसके अंग वृद्ध अवस्थातक पहुंचा दो।

यह वचन अपने शरीरके विषयमें भी वारंवार बोला जा सकता है। मनके दृढ विश्वाससे लाभ होता है। तथा—

कृणुत जरसं आयुः अस्मै— इसकी आयु वृद्ध अवस्थातक करो।

कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतं— सब देव सौ वर्षोंकी तुम्हारी आयु करें।

दशमीं उग्रः समना वशेह— यह उग्रवीर बनकर दसवीं दशकतक जीवित रहे।

जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः— इसको दीर्घायु करके जराके पश्चात् मृत्यु हो।

शतं च जीव शरदः पुरूचीः— सौ वर्षकी दीर्घायु इसे मिले।

त्वं जीव शरदः सुवर्चाः— उत्तम तेजस्वी होकर सौ वर्ष जीवित रह।

आयुरस्मै धेहि— इसको आयु प्रदान करो।
नेममन्ये मृत्यवो हिंसिषुः शतं ये— सैकड़ों मृत्यु इसका नाश न करें।
इममग्न आयुषे वर्चसे नय— हे अग्ने! इसे आयु और तेजके लिये ले जा।
अस्पार्षमिनं शतशारदाय— सौ वर्षकी आयुके लिये मैं इसे स्पर्श करता हूं।
तत्ते बध्नामि आयुषे— आयुष्यकी प्राप्तिके लिये तुझे यह मणि बांधता हूं।
मा मृथाः— मत मर।
प्राणेन जीव— प्राणसे जीवित रह।
प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं— प्राण और अपान मृत्युसे मुझे बचावें।
जरा मृत्युं कृणुतां— जराके पश्चात् मृत्यु हो।

इस तरह अन्यान्य वचनोंका भी उपयोग हो सकता है। कोई बीमार पड़ा हो, तो पवित्र होकर सिरकी ओरसे पांवतक अपने हाथोंको घुमाना और ये मंत्रभाग बोलना, मनमें ही निग्रहपूर्वक बोलना। वारंवार बोलना। अपने हाथोंमें बीमारी दूर करनेकी शक्ति है ऐसा मानकर इससे बीमारी दूर होगी ऐसे विश्वाससे यह करना। रोगीका भी साथ-साथ विश्वास हो तो लाभ शीघ्र होगा। अन्य वचन अन्य समय बोलनेके लिये हैं। यह विचार करके पाठक जान सकते हैं।

वनस्पति

शं नो देवी पृश्निपर्ण्यशं निर्ऋत्या अकः।
अ. २।२५।१

हे पृश्निपर्णी देवी, हमारे लिये कल्याण कर, और व्याधियोंको दुःख प्राप्त हो।

अरायमसृक्पावानं यश्च स्फातिं जिहीर्षति।
गर्भादं कण्वं नाशय पृश्निपर्णि सहस्व च॥
अ. २।२५।३

शोभा हटानेवाला, रक्त पीनेवाला, जो पुष्टिको हटाता है, गर्भको खानेवाला जो रोगबीज है उसका नाश कर। हे पृश्निपर्णि! दुःखको दूर कर।

वीरुत् क्षेत्रियनाशन्यप क्षेत्रियमुच्छतु।
अ. २।८।२-५

आनुवंशिक रोगको दूर करनेवाली यह औषधि आनुवंशिक रोगको दूर करे।

श्यामा सरूपं करणी पृथिव्या अध्युद्भृता।
इदमू षु प्र साधय पुनः रूपाणि कल्पय।
अ. १।२४।४

श्यामा वनस्पति सरूप करनेवाली है, पृथिवीसे ऊपर उखाडी गयी है, इस कर्मका उत्तम साधन कर और पुनः पूर्ववत् शरीरका रंग कर।

शं सोमः सहौषधीभिः। अ. २।१०।२
औषधियोंके साथ सोम कल्याण करनेवाला हो।

इदं जनासो विदथ महद्‌ब्रह्म वदिष्यति।
न तत्पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः।
अ. १।३२।१

हे लोगों! यह जानो कि ज्ञान बड़ी घोषणा करके कहेगा। जिससे वनस्पतियां जीवित रहती हैं यह पृथिवीमें नहीं है और न द्युलोकमें है।

असितं ते प्रलयनमास्थानमसितं तव।
असिक्न्यसि ओषधे निरितो नाशया पृषत्॥
अ. १।२३।३

तेरा लयस्थान कृष्ण है और आस्थान भी कृष्णवर्णका है। हे औषधे! तू काले वर्णवाली है, इसलिये तू इसके श्वेत धब्बे दूर कर।

सरूपकृत्त्वमोषधे सा सरूपमिदं कृधि।
अ. १।२४।३

हे औषधे! तू सरूप त्वचाको करनेवाली है। अतः तू त्वचाको सरूप कर।

वधू

सोमजुष्टं ब्रह्मजुष्टं अर्यम्णा संभृतं भगम्।
धातुर्देवस्य सत्येन कृणोमि पतिवेदनम्।
अ. २।३६।२

आत्मज्ञानीसे सेवित, ब्राह्मणों द्वारा सेवित, श्रेष्ठ मनवालेने इकट्ठा किया यह धन है, धाता देवके सत्य नियमानुसार पतिकी प्राप्तिके लिये मैं इसको सुयोग्य करता हूं।

इदं हिरण्यं गुल्गुल्वयमौक्षो अथो भगः।
एते पतिभ्यस्त्वामदुः प्रतिकामाय वेत्तवे।
अ. २।३६।७

यह उत्तम सुवर्ण है, यह बैल है, और यह धन है।

ये पतिकी कामनाके लिये और तेरे लाभके लिये तेरे पतिको देते हैं।

आ नो अग्ने सुमतिं संभलो गमेदिमां कुमारीं
सह नो भगेन । अ. २।३६।१

हे अग्ने! धनके साथ उत्तम वक्ता पति इस उत्तम बुद्धिमती कुमारीके प्रति आ जावे।

यदन्तरं तद्बाह्यं यद्बाह्यं तदन्तरम्।
कन्यानां विश्वरूपाणां मनो गृभायौषधे ॥
अ. २।३०।४

जो अन्दर हो वही बाहर हो, जो बाहर हो वही अन्दर हो। विविध रूपवाली कन्याओंका मन ग्रहण कर।

या प्लीहानं शोषयति कामस्येषुः सुसन्नता।
अ. ३।२५।३

कामका बाण लगनेपर प्लीहाको शोषित करता है।

यथेदं भूम्या अधि तृणं वातो मथायति।
एवा मथ्नामि ते मनो, यथा मां कामिन्यसो,
यथा मन्नापगा असः ॥ अ. २।३०।१

हे स्त्री! जैसा यह पृथ्वीपरका घास वायु हिलाता है वैसा मैं तेरे मनको हिला देता हूं, तू मेरी इच्छा करनेवाली हो, मुझसे दूर जानेवाली न हो।

शिवा भव पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यः शिवा।
शिवास्मै सर्वस्मै क्षेत्राय शिवा न इहैधि ॥

तास्त्वा पुत्रविद्याय देवी प्रावन्त्वोषधयः।
अ. ३।२३।६

वे दिव्य औषधियां पुत्रप्राप्तिके लिये तेरी रक्षा करें।

एवा भगस्य जुष्टेयमस्तु नारी संप्रिया पत्या-
विराधयन्ती। अ. २।३६।४

ऐश्वर्यसे सेवित हुई यह स्त्री पतिको प्रिय और पतिसे विरोध न करती हुई यहां रहे।

पुमांसं पुत्रं जनय तं पुमाननु जायताम्।
भवासि पुत्राणां माता जातानां जनयाश्च यान् ॥
अ. ३।२३।३

पुरुष पुत्र उत्पन्न कर, उसके पीछे भी पुत्र ही होते रहें। तू पुत्रोंकी माता हो, जो हो चुके तथा जो होनेवाले सब पुत्र ही हों।

तं त्वा भ्रातरः सुवृधा वर्धमानमनु जायन्तां
बहवः सुजातम्। अ. २।१३।५

उस तुझ उत्तम जन्मे हुए बढते हुएके पीछेसे बहुतसे बढनेवाले भाई उत्पन्न हों।

पति--पत्नी

परि त्वा परितत्नुनेक्षुणागामविद्विषे।
यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ॥
अ. १।३४।५

कार्य कर। सब कार्य उसके दाहिनी और कर, जो वर तेरी कामनाके अनुकूल है।

देवा गर्भं समैरयन् तं व्यूर्णुवन्तु सूतवे।

अ. १।११।२

देव इस गर्भको प्रेरणा करें, प्रसूतिके लिये उस गर्भको प्रेरित करें।

अहमस्मि सहमानाथो त्वमसि सासहिः।
उभे सहस्वती भूत्वा सपत्नीं मे सहावहै॥

अ ३।१८।५

मैं विजयी हूं और तू विजयी है। दोनों विजयी होकर सपत्नीका पराभव करेंगे।

एषा सौभगत्वमस्त्वस्यै। अ. २।३६।१
इस कुमारीको इस पतिसे सौभाग्य प्राप्त हो।

इयमग्ने नारी पतिं विदेष्ट सोमो हि राजा सुभगां कृणोति। अ. २।३६।३

हे अग्ने! यह नारी पतिको प्राप्त करे, राजा सोम इसको उत्तम भाग्यवती करे।

वृक्षं यद् गावः परिषस्वजाना अनुस्फुरं शर-मर्चन्त्यृभुम्। अथर्व १।२।३

वृक्षं परिषस्वजाना गावः ऋभुं शरं अनुस्फुरं अर्चन्ति— वृक्ष (से उत्पन्न धनुष्यके साथ रहकर) गौ (चर्मसे बनी डोरियां) सीधे बाणको स्फूर्तिके साथ जिस तरह फेंकती हैं (उस तरह पुरुषके साथ मिलकर रहनेवाली स्त्रियां स्फूर्तिसे वीर पुत्रको शत्रुपर भेजें।)

धनुष्यकी लकडी पुरुष है, डोरी स्त्री है, इनका पुत्र बाण है। जिस तरह धनुष्य शत्रुपर बाण फेंकता है उस तरह गृहस्थ अपने पुत्रको बलवान् बनाकर शत्रुपर भेजे और शत्रुका पराभव करें।

इहैवाभि वि तनु उभे आर्त्नी इव ज्यया।

अथर्व १।१।३

(उभे आर्त्नी ज्यया इव) धनुष्यके दोनों नोंक जैसे डोरीसे तने रहते हैं, इस तरह (इह एव अभि वि तनु) यहां ही दोनोंको तनाओ। (धनुष्यकी डोरी धनुष्यके दोनों नोकोंको तनाकर रखती है, जिससे विजय मिलता है। इस तरह इस संसारमें दोनों-स्त्री-पुरुष, धीमत इत्यादि,

विद्वान् अविद्वान्– कार्य करनेके लिये जिस देशमें सिद्ध रहते हैं, वह देश विजयी होता है।)

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं (वि) युनक्ति। अ ३।३१।५
पिता पुत्रीको दहेज देनेके लिये अलग करके रखता है।

सुखप्रसूति

आ ते योनिं गर्भ एतु पुमान् बाण इवेषुधिम्।

अ. ३।२३।२

जैसा बाण भातेमें आता है वैसा यह पुरुषका गर्भ तेरे गर्भाशयमें आवे। (बाण शत्रुनाश करता है वैसा यह गर्भ वीर बने, शत्रु नाश करे।)

आ योनिं गर्भ एतु ते। अ ३।२३।५
तेरे उदरसे पुरुष गर्भ होवे।

रक्तस्राव दूर करना

तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि।

अ. १।१५।१

इन सब स्रोतोंसे हम सब धनको सम्यक् रीतिसे इकट्ठा करते हैं।

नियमसे चलना

वाचस्पतिर्नियच्छतु। अथर्व १।१।३
विद्वान् नियमसे चलावे। (विद्वान्के नियमसे अन्य लोग चलें, जिससे उनकी उन्नति होगी।)

मणि धारण

परीदं वासो अधिथाः स्वस्तये। अ. २।१३।३
इस वस्त्रको अपने कल्याणके लिये धारण करो।

जङ्गिडो जम्भाद् विशराद् विष्कन्धादभिशो-चनात्। मणिः सहस्रवीर्यः परि णः पातु विश्वतः॥ अ. २।४।२

यह जंगिड मणि सहस्र वीर्योंसे युक्त होनेके कारण जम्हाई, क्षीणता, शोषक रोग, तथा शोक करनेवाले रोगादि-से, सब ओरसे हमारा रक्षण करे।

अयं विष्कन्धं सहतेऽयं बाधते अत्त्रिणः।
अयं नो विश्वभेषजो जङ्गिडः पात्वंहसः॥

अ २।४।४

यह जंगिड मणि शोषक रोगको दूर करता है, यह भक्षक

करनेवाले क्रिमियोंको बाधा पहुचाता है, यह सब औषधी शक्तियोंसे युक्त है यह पापसे हमें बचावे ।

शणश्च मा जंगिडश्च विष्कंधादभि रक्षताम् ।
अरण्यादन्य आभृत कृष्या अन्यो रसेभ्य ॥
अ २।४।५

शण और जंगिद ये दोनों शापक रोगसे मेरा रक्षण करें। एक वनसे लाया है और दूसरा खेतीके रसोंसे बनाया है।

काम

कामेन त्वा प्रति गृह्णामि, कामैतत्ते । अ ३।२९।७
कामसे तुझ लेता हू। यह सब है काम ! तेरा कर्तृत है।

पापसे बचना

यदेनश्चकृवान्, बद्ध एष, त विश्वकर्मन् प्रमुञ्चा स्वस्तये । अ. २ ३५।३
इसने पाप किया, इसलिये यह बद्ध हुआ है। हे विश्वके रचना करनेवाल प्रभु ! इसको कल्याण प्राप्त हो इस लिये इसे मुक्त कर ।

पापमार्छत्वपकामस्य कर्ता । अ २।१२।५
अनिष्ट कार्य करनेवाला पापको प्राप्त होवे ।

मातेव पुत्र प्रमना उपस्थे मित्र एन मित्रिया त्पात्वहम । अ २।२८।१
जैसी माता प्रेमसे पुत्रको गोदमें लेती है। उस तरह मित्र मित्रसबधि पापसे इसको बचाव ।

ते नो निर्ऋत्या पाशेभ्यो मुञ्चताहसो-अहस ।
अ १।६।१२
ये देव विनाशके पाशोंसे तथा पापसे इसे मुक्त करें।

विश्व युग्र निचिकेषि द्रुग्धम् । अ ११।०२
हे उग्र वीर ! सब पापको तू जानता है। पाप कहा रहता है यह तू जानता है।

व्याकूतय एषामिताथो चित्तानि मुह्यत ।
अथो यदद्येषा हृदि तदेषा परि निर्जहि ॥
अ ३।२ ४
इन शत्रुओंके सदल्पों और इनके चित्तोंको मोहित करो। और जो इनके हृदयमें विचार हैं उन सबका नाश करो।

व्यहं सर्वेण पाप्मना । अ. ३।३१।१-५, १०-११
सब पापोंसे मे दूर रहता हू ।

वि शक्र. पापकृत्यया । अ ३।३१।२
समर्थ मनुष्य पापकर्मसे दूर रहता है।

सजातानुग्रेहा वद ब्रह्म चाप चिकीहि नः ।
अ १।१०।४
हे उग्र वीर ! सजातियोंसे घोषणा करके कह दे कि हमारा ज्ञान ही दोषोंको दूर कर सकता है।

आत्मरक्षण

तं त्वा विश्वेऽवन्तु देवाः । अ २।१३।५
सब देव तेरी सुरक्षा करें ।

सूरिरसि, वर्चोधा असि, तनूपानोऽसि ।
अ २।११।४
तू ज्ञानी है, तू तेजस्वी है, तू शरीरका रक्षण करने वाला है ।

अन्न-जल

तौलस्य प्राशान । अ ११७।२
तोलकर खाओ । (मित भोजन करो)

क इद कस्मा अदात् काम कामयादात् ।
अ ३।२९।७
किसने यह किसको दिया। काम ही कामके लिये देता है।

दानाय चोदय । अ ३।२०।७
दानके लिये प्रेरणा कर ।

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त स किर ।
अ ३।२४।५
शत हस्तोंसे प्राप्त कर और हजार हाथोंसे दान कर ।

घृत पीत्वा मधु चारु गव्यम् । अ २।१३।१
मीठा सुन्दर गौका घी पीओ ।

इह पुष्टिरिह रस इह सहस्रसातमा भव ।
पशून् यमिनि पोषय । अ ३।२८।४
यही पुष्टि और यही रस है। यहां हजारों काम देनेवाली होकर रह। हे जुडवें बच्चे देनेवाली गौ ! यहां पशुओंको पुष्ट कर ।

सा न आयुष्मतीं प्रजां रायस्पोषेण सं सृज।

अ. ३।१०।३;८

वह तू हमारी दीर्घायुवाली प्रजाको धनकी पुष्टिसे युक्त कर।

अविस्तस्मात् प्र मुञ्चति दत्तः शितिपात्स्वधा।

अ. ३।२९।१

वह (सोलहवां भाग कर) दिया हुआ रक्षक बनकर हिंसकोंसे रक्षण करनेवाला तथा अपनी धारणा करनेवाला होता है, और वह दुःखसे मुक्त करता है।

दुह्रां मे पञ्च प्रदिशो दुह्रामुर्वी यथाबलम्।

अ. ३।२०।९

ये बडी पांच दिशायें यह पृथ्वी यथाशक्ति मुझे सामर्थ्य देवे।

एष वां द्यावापृथिवी उपस्थे मा क्षुधन् मा तृषत्।

अ. २।२९।४

हे द्यावापृथिवी ! यह तुम्हारे समीप रहता हुआ क्षुधासे अथवा तृषासे दुःखी न हो।

गृहनिर्माण

गृहानलुभ्यतो वयं संविशेमोप गोमतः।

अ. ३।१०।११

हमारे घरोंमें बहुत गायें हों और किसी पदार्थकी न्यूनता न रहे।

तं त्वा शाले सर्ववीराः सुवीरा अरिष्टवीरा उपसंचरेम। अ. ३।१२।१

हे घर ! तेरे चारों ओर हम सब उत्तम वीर, उत्तम पराक्रम करते हुए संचार करते रहेंगे।

इहैव ध्रुवा तिष्ठ शालेऽश्वावती गोमती सूनृतावती। ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय॥ अ. ३।१२।२

हे घर ! तू यहीं रह, यहां स्थिर रह, गौओंसे युक्त, घोडोंसे युक्त, मधुर भाषणसे युक्त, बलवान् घीसे युक्त, दूधसे युक्त होकर महान् सौभाग्यसे युक्त होकर यहीं खडा रह।

आ त्वा वत्सो गमेदा कुमार आ धेनवः सायमास्पन्दमानाः॥ अ. ३।१२।३

तेरे पास बछडा और लडका तथा दूधवाली गौवें सायंकाल आ जांय।

धरुण्यसि शाले बृहच्छन्दाः पूतिधान्या।

अ. ३।१२।३

हे घर ! तू बडे छतवाला और पवित्र धान्यवाला होकर धारणशक्तिसे युक्त होकर रह।

तृणं वसाना सुमना असस्त्वं। अ. ३।१२।५

घासको पहनेवाला तू घर हमारे लिये उत्तम मनवाला हो।

मानस्य पत्नि शरणा स्योना देवी देवेभिर्निमितास्यग्रे। अ. ३।१२।५

संमानका रक्षक, रहने योग्य, सुखकर यह दिव्य घर देवोंद्वारा पहिले बनाया गया था।

ऋतेन स्थूणामधि रोह वंशोग्रो विराजन्नप वृङ्क्ष्व शत्रून्। अ. ३।१२।६

हे बांस ! अपने सीधेपनसे अपने आधारपर खडा रह। उग्रवीर बनकर शत्रुओंको हटा दे।

शाले शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः।

अ. ३।१२।६

हे घर ! सब वीर पुत्रोंसे युक्त होकर हम सौ वर्षोंतक जीवित रहेंगे।

एमां कुमारस्तरुण आ वत्सो जगता सह।
एमां परिस्रुतः कुम्भ आ दध्नः कलशैरगुः॥

अ. ३।१२।७

इस घरके पास कुमार आवे, तरुण आवे, बछडेके साथ चलनेवाले गौ आदि प्राणी आवें, इसके पास मधुर रससे भरा घडा दहीके कलशोंके साथ आ जांय।

असौ यो अधराद् गृहः तत्र सन्त्वराय्यः।
तत्र सेदिर्न्युच्यतु सर्वाश्च यातुधान्यः॥

अ. २।१४।३

जो यह नीच घर है, वहां विपत्तियां रहें, वहां क्लेश हो, सब यातना वहां रहे।

मा ते रिषन्नुपसत्तारो गृहाणाम्। अ. ३।१२।६

हे घर ! तेरे आश्रयमें रहनेवाले विनष्ट न हों।

पूर्णं नारि प्र भर कुम्भमेतं घृतस्य धाराममृतेन संभृताम्। इमां पातॄनमृतेना समङ्ग्धीष्टापूर्तमभि रक्षात्येनाम्॥ अ. ३।१२।८

हे स्त्री ! इस पूर्ण भरे घडेको तथा अमृतसे भरी घीकी

धाराको अच्छी तरह भरकर ले आओ। पीनेवालोंको अच्छी तरह भर दे। यज्ञ और अन्नदान इस घरका रक्षण करते हैं।

गौ

स नः प्रजास्वात्मसु गोषु प्राणेषु जागृहि।

यह तू हमारी प्रजा, आत्मा, गौवों और प्राणोंके विषयमें जागता रह।

इहैव गाव एतनेहो शकेव पुष्यत।
इहैवोत प्रजायध्वं मयि संज्ञानमस्तु वः॥

अ. ३।१४।४

हे गौवों! यहां आओ, शाकके समान पुष्ट बनो, यहां बच्चे उत्पन्न करो और आपका प्रेम मुझपर रहे।

मया गावो गोपतिना संचध्वं अयं वो गोष्ठ इह पोषयिष्णुः। रायस्पोषेण बहुला भवंती-र्जीवा जीवन्तीरुप वः सदेम॥ अ. ३।१४।६

हे गौवों! मुझ गोपतीके साथ मिली रहो। तुम्हारा पोषण करनेवाली यह गोशाला यहां है। शोभायुक्त वृद्धिके साथ बढती हुई, जीवित रहनेवाली तुमको हम सब प्राप्त करते हैं।

संजग्माना अबिभ्युषीरस्मिन्गोष्ठे करीषिणीः।
बिभ्रती सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन॥

अ ३।१४।३

इस गोशालामें मिलकर रहती हुई, निर्भय होकर गोबरका उत्तम खाद उत्पन्न करनेवाली, शान्ति उत्पन्न करने-वाले रस-दूध-का धारण करती हुई हमारे पास हमारे समीप गौवें आ जाय।

शिवो वो गोष्ठो भवतु शारिशाकेव पुष्यत।
इहैवोत प्रजायध्वं मया वः संसृजामसि॥

इमं गोष्ठं पशवः सं स्रवन्तु। अ. २।२६।१

इस गोशालामें पशु रहें।

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमु-च्छन्तु भद्राः। घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ अ. ३।१६।७

कल्याण करनेवाली उषायें घोडों और गौवोंके साथ तथा वीर पुत्रोंके साथ हमारे घरोंको प्रकाशित करें। घी देवें, सब ओरसे संतुष्ट होकर आप सदा हमें कल्याणोंसे सुरक्षित रखें।

तीव्रो रसो मधुपृचामरंग आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत्। अ. ३।१३।५

यह मधुरतासे भरा तीव्र जलरूप रस, प्राण और तेजके साथ मुझे प्राप्त हो।

ऊर्जमस्मा ऊर्जस्वती धत्तं पयो अस्मै पयस्वती धत्तम्। ऊर्जमस्मै द्यावापृथिवी अधातां विश्वे-देवा मरुत ऊर्जमापः॥ अ. २।२९।५

अन्नवाली (द्यावापृथिवी) इसे अन्न देवें, दूधवाली इसे दूध देवें, द्यावापृथिवी इसको बल देवें, सब देव, मरुत् और जल इसे शक्ति प्रदान करें।

आ हरामि गवां क्षीरं आहार्षं धान्यं रसम्।
आहृता अस्माकं वीरा आ पत्नीरिदमस्तकम्॥

अ. २।२६।५

मैं गौओंका दूध लाता हूं, धान्य और रस लाता हूं। हमारे वीर आगये हैं, ये पत्नियां हैं और यह घर है।

सं सिचामि गवां क्षीरं समाज्येन बलं रसम्।
सं सिक्ता अस्माकं वीरा ध्रुवा गावो मयि गोपतौ॥

अ. २।२६।४

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम् ।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा ॥
अ. १।१६।४

यदि हमारी गौका वध तू करेगा, यदि घोडेका या यदि पुरुषका वध करेगा, तो तुझे सीसेकी गोलीसे वेध करूंगा, जिससे हमारे समीप कोई वीरोंका नाश करनेवाला नहीं रहेगा।

कृषि

सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव ।
यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः ॥
अ. ३।१७।८

हे हलकी रेषा ! तुझे हम वन्दन करते हैं, तू संमुख हो, और भाग्यवाली हो । तू उत्तम इच्छावाली हो और सुफल देनेवाली हो ।

शुनं वाहाः, शुनं नरः, शुनं कृषतु लांगलम् ।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥
अ. ३।१७।६

बैल सुखी हों, मनुष्य प्रसन्न रहें, हल सुखसे जमीन खोदें, रस्सियां सुखसे बांधी जाय, और चाबूक सुखसे चलाया जाय।

घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः। सा नः सीते पयसाभ्याववृत्स्वोर्जस्वती घृतवत्पिन्वमाना ॥ अ. ३।१७।९

घी और मधसे सिंचित हलकी रेषा सब देवों और वायुओंसे अनुमोदित हुई । हे हलकी रेषा ! तू घीसे सिंचित होकर हमें बल देनेवाली होकर दूधसे युक्त कर ।

शुनं सुफाला वि तुदन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अनुयन्तु वाहान्। शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तमस्मै ॥अ. ३।१७।५

सुन्दर हलके फाल भूमिको उत्तम रीतिसे खोदें। किसान सुखसे बैलोंको चलावें। हे वायु और सूर्य ! तुम हविसे सन्तुष्ट होकर हमके लिये उत्तम फलयुक्त धान्य देवें।

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषाभि रक्षतु ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥
अ. ३।१७।४

इन्द्र हलकी रेषाकी रक्षा करे, पूषा उसकी चारों ओरसे रक्षा करे। वह रसयुक्त होकर आगेके वर्षोंमें हमें अधिक अधिक रस प्रदान करे।

नेदीय इत् सृण्यः पक्वमायन् । अ. ३।१७।२

हंसूवे परिपक्व धान्यको हमारे निकट ले आवें।

विराजः श्नुष्टिः सभरा असन्नः । अ ३।१७।२

अन्नकी उपज हमारे लिये भरपूर हो जावे।

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक् ।
धीरा देवेषु सुम्नयौ ॥ अ. ३।१७।१

जो ज्ञानियोंमें उत्तम मनवाले बुद्धिमान् कवि हैं वे हल जोतते हैं। और जुओंको पृथक् करते हैं।

भगो नो राजा नि कृषिं तनोतु । अ. ३।१२।४

राजा भग हमारे लिये कृषिको बढावे।

युनक्त सीरा, वियुगा तनोत, कृते योनौ वपतेह बीजम् ॥ अ ३।१७।२

हल जोतो, जुओंको फैला दो, भूमि तैयार करनेपर बीज वहीं बो दो।

जल

अप्सु मे सोमोऽब्रवीत् । अन्तर्विश्वानि भेषजा ॥
अथर्व १।६।२

सोमने मुझे कहा कि जलमें सब औषधियां हैं।

अप्स्वन्तरमृतं अप्सु भेषजम् । अथर्व १।४।४

जलमें अमृत है, जलमें औषधि गुण है।

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम । अ. १।६।३

हे जलो ! मुझे औषध दो और मेरे शरीरको संरक्षण दो।

ईशाना वार्याणाम् । क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् ।
अपो याचामि भेषजम् ॥ अथर्व १।५।४

वरणीय सुखोंका स्वामी जल है। प्राणियोंका निवासक जल है। इस जलसे मैं औषधकी याचना करता हूं।

आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ।
अ. ३।७।५

जल औषधी है, जल रोग दूर करनेवाला है, जल सब रोगोंकी औषधी है, इस जलसे आनुवंशिक रोगसे तुझे मुक्त करता हूं।

अपां तेजो ज्योतिरोजो बलं च वनस्पतीनामुत वीर्याणि । अग्निमध्यधि धारयामः । अ १।३५।३

जलका तेज, प्रकाश, ओज, बल और वनस्पतियोंके वीर्य (इस सुवर्णमें है) उनका हम धारण करते हैं।

(आपः) महे रणाय चक्षसे (दधातन) ।
अथर्व १।५।१

जल बडी रमणीयताके दर्शनके लिये हमें धारण करे। (हमारे अन्दर रमणीयता रखे।)

ता न आपः शं स्योना भवन्तु । अ. १।३३।१-४
वे जल हमारे लिये सुखशान्ति देनेवाले हों।

इमा आपः प्रभराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशिनीः ।
गृहानुपप्रसीदामि अमृतेन सहाग्निना ॥
अ. ३।१२।९

ये रोगनाशक और रोगरहित जल मैं भर लाता हूं। अमृत, अन्न और अग्निके साथ मैं घरोंमें जाकर बैठता हूं।

शं नः खनित्रिमा आपः । अ. १।६।४
खोदकर निकाला जल हमें सुख देवे।

शिवा नः सन्तु वार्षिकीः । अ. १।६।४
वृष्टिसे प्राप्त जल हमें कल्याण करनेवाला हो।

शमु सन्तु अनूप्याः । अ. १।६।४
जलपूर्ण प्रदेशका जल हमें शान्ति देवे।

शमु या कुम्भ आभृताः । अ. १।६।४
जो जल घडेमें रखा है वह हमें शान्ति देवे।

शं न आपो धन्वन्याः । अ. १।६।४
रेतीले प्रदेशका जल हमें कल्याण करनेवाला हो।

घृतश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः
शं स्योना भवन्तु । अ. १।३३।४
तेजस्वी, पवित्र, शुद्धता करनेवाला जल हमारे लिये सुखदायी हों।

शंयोरभिस्रवन्तु नः । अथर्व १।६।१
जल हमें शान्ति और इष्ट प्राप्ति देनेवाला होवे।

शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे। अ. १।३३।४
अपना कल्याण करनेवाले शरीरसे मेरी त्वचाको स्पर्श करो।

(हे आपः !) यो वः शिवतमो रसः तस्य भाजयते ह नः । अथर्व. १।५।२
हे जलो ! जो आपमें कल्याण करनेवाला रस है, उसका हमें भागी करो। (हमें वह कल्याण करनेवाला तुम्हारा भाग मिले।)

आपो जनयथा च नः । अथर्व. १।५।३
हे जलो ! हमें बढाओ।

आपो भवन्तु पीतये । अथर्व १।६।१
जल हमारे पीनेके लिये, रक्षणके लिये हो।

शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः । अ. १।३३।४
हे जलो ! कल्याणकारी नेत्रसे आप मुझे देखो।

आपो हि ष्ठा मयो भुवः ता न ऊर्जे दधातन ।
अथर्व. १।५।१
जल सचमुच सुखदायी है, वह जल हमें शक्ति दें।

शं नो देवीरभिष्टये । अथर्व. १।६।१
दिव्य जल हमें शान्तिसुख देवे।

तस्मा अरंगमाववो यस्य क्षयाय जिन्वथ । ।
अथर्व. १।५।३
जिसके निवासके लिये आप यत्न करते हैं, आपसे पर्याप्त मात्रामें (वह बल) प्राप्त हो।

अपामुत प्रशस्तिभिरश्वा भवथ वाजिनः ।
गावो भवथ वाजिनीः ॥ अथर्व. १।४।४
जलके प्रशंसनीय गुणोंसे घोडे बलवान् होते हैं और गौवें बलशालिनी होती हैं।

सुभाषितोंका उपयोग

अथर्ववेदके पहिले तीन काण्डोंके सुभाषित यहां दिये हैं। ये इतने ही हैं ऐसा नहीं। संख्यामें ये सुभाषित अधिक भी हो सकते हैं। ये किस तरह अधिक हो सकते हैं यह इस लेखमें बताया ही है। व्यवहारमें उपयोगी सार्थ मन्त्र भाग सुभाषित कहा जाता है।

सूरिरसि, वर्चोधा असि, तनूपानोऽसि ।
अ. २।११।४
तू ज्ञानी है, तू तेजस्वी है, तू शरीर रक्षक है। यह एकमंत्र है, पर इसमें तीन सुभाषित हैं।

सीसेकी गोली

'तं त्वा सीसेन विध्यामः' उस तुझको सीसेसे हम वेध करेंगे। सीसेसे वेध करनेका अर्थ सीसेकी गोलीसे वेध करेंगे। गौका वध करनेवालेको या पुरुषका वध करनेवालेको सीसेकी गोलीसे वेध करनेका दण्ड कहा है। सीसा था, सीसेकी गोली थी और गोलीसे वेध करनेका साधन बंदूक जैसा कुछ था ऐसा यहां पता लगता है।

जलचिकित्सासे सब रोग दूर होते हैं ऐसा पाठक जलके सुभाषितोंमें देखेंगे। सुभाषितोंका उपयोग करनेकी रीति यहां बताई है। वेदके उपदेशको मानवी आचार और व्यवहारमें लानेकी रीति यह है। पाठक इसका उपयोग करके वैदिक जीवनसे व्यवहार करके अपना लाभ प्राप्त करें।



अथर्ववेद

का

सुबोध भाष्य ।

प्रथमं काण्डम् ।

लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

साहित्य-वाचस्पति, वेदाचार्य, गीतालङ्कार,

अध्यक्ष स्वाध्याय मंडल, आनन्दाश्रम पारडी [जि. सूरत]

तृतीय वार

संवत् २००६, शक १८७१, सन १९५०

ब्रह्म और ज्येष्ठ ब्रह्म ।

ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम् ।
यो वेद परमेष्ठिनं यश्च वेद प्रजापतिम् ।
ज्येष्ठं ये ब्राह्मणं विदुस्ते स्कम्भमनुसंविदुः ॥

(अथर्व० १०।७।१७)

“ (ये) जो (पुरुषे ब्रह्म) पुरुषमें ब्रह्म (विदुः) जानते हैं, वे (परमेष्ठिनं) परमेष्ठीको जानते हैं, जो परमेष्ठीको जानता है, और जो प्रजापतिको जानता है, तथा जो (ज्येष्ठं ब्राह्मणं) श्रेष्ठ ब्रह्माको जानते हैं, वे स्कम्भको (अनुसंविदुः) उत्तम प्रकार जानते हैं । ”

ॐ

अथर्ववेद के विषयमें

स्मरणीय कथन।

(१) अथर्ववेदका महत्त्व।

अथर्ववेदका नाम "ब्रह्मवेद, अमृतवेद, आत्मवेद" आदि है, इससे यह आत्मज्ञानका वेद है, यह स्पष्ट है। इसी लिये कहा है, कि—

श्रेष्ठो ह वेदस्तपसोऽधि जातो ब्रह्मज्ञानां हृदये संबभूव ॥
(गोपथ ब्रा. १।९)

एतद्वै भूयिष्ठं ब्रह्म यद् भृग्वङ्गिरसः। येऽङ्गिरसः स रसः।
येऽथर्वाणस्तद्भेषजम्। यद्भेषजं तदमृतम्। यदमृतं तद्ब्रह्म॥
(गोपथ ब्रा. ३।४)

चत्वारो वा इमे वेदा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेदः॥
(गोपथ ब्रा. २।१६)

"(१) यह श्रेष्ठ वेद है, ब्रह्मज्ञानियोंके हृदयमें यह प्रविष्ट रहता है। (२) भृग्वंगिरस बड़ा ब्रह्म ज्ञान है, जो अंगिरस हैं वही रस अर्थात् सत्त्व है, जो अथर्वा है वह भेषज (दवा) है, जो भेषज है वह अमृत है, जो अमृत है वही ब्रह्म है। (३) ऋक्, यजु, साम और ब्रह्म येही चार वेद हैं।"

अथर्ववेदको इस वचनमें 'भेषज' अर्थात् रोगदोष दूर करनेवाली औषधि, 'अमृत' अर्थात् मृत्युको दूर करनेका साधन, तथा 'ब्रह्म' बड़ा ज्ञान कहा है। ये तीन शब्द अथर्ववेदका महत्त्व स्पष्ट रीतिसे व्यक्त कर रहे हैं। और देखिये—

अथर्वमन्त्रसम्प्राप्त्या सर्वसिद्धिर्भविष्यति॥
(अथर्वपरिशिष्ट २।५)

"अथर्ववेद मंत्रकी संप्राप्ति होनेसे सब पुरुषार्थ सिद्ध होंगे।" यह अथर्वमंत्रोंका महत्त्व है, इस वेदमें (शांतिक कर्म) शांति स्थापनके कर्म, (पौष्टिक कर्म) पुष्टि धनादि आदिकी सिद्धिके कर्म, (राजकर्म) राज्यशासन, समाजव्यवस्था आदि कर्मके आदेश होनेके कारण यह वेद प्रजाहितकी दृष्टिसे विशेष महत्त्व रखता है। इस विषयमें देखिये—

यस्य राज्ञो जनपदे अथर्वा शान्तिपारगः।
निवसत्यपि तद्राष्ट्रं वर्धते निरुपद्रवम्॥
(अथर्वपरिशिष्ट. ४।६)

"जिस राजाके राज्यमें अथर्ववेद जाननेवाला विद्वान् शांति स्थापनके कर्मपर निरत रहता है, वह राष्ट्र उपद्रवरहित होकर बढ़ता जाता है।"

(२) अथर्व-शाखा।

१ पैप्पलाद, २ तौद, ३ मौद, ४ शौनकीय, ५ जाजल, ६ जलद, ७ ब्रह्मवाद, ८ देवदर्श, ९ चारणवैद्य ये अथर्वके नौ शाखाभेद हैं। इनमें इस समय पिप्पलाद और शौनक ये दो संहितायें उपलब्ध हैं, अन्य उपलब्ध नहीं हैं। इनमें थोडासा मंत्रपाठभेद और सूक्त क्रमभेद भी है, अन्य व्यवस्था प्राय समान है।

(३) अथर्वके कर्म।

1 स्थालीपाकः — अक्षागेद्धि।

२ मेधाजननम् — बुद्धिकी वृद्धि करनेका उपाय।

३ ब्रह्मचर्यम् — वीर्य रक्षण, ब्रह्मचर्यव्रत आदि।

४ ग्राम-नगर-राष्ट्र-वर्धनम् — ग्राम, नगर, कोने, राज्य आदि की प्राप्ति और उनका संवर्धन।

५ पुत्रपशुधनधान्यप्रजास्त्रीकरितुरगरथान्दोलिकादिसकल-संपत्साधनानि— पुत्र, पशु, धन, धान्य, प्रजा, स्त्री, हाथी, घोडे, रथ, पालकी आदि ऐश्वर्यके साधनोंकी सिद्धि करनेके उपाय।

६ साम्मनस्यम्—जनतामें ऐक्य, मिलाप, प्रेम, एकता आदिकी स्थापना के उपाय।
७ राजकर्म — राजाके लिये करनेयोग्य कर्म।
८ शत्रुत्रासनम्—शत्रुको कष्ट पहुंचानेका उपाय।
९ संग्रामविजय.— युद्धमें विजय संपादन करना।
१० शस्त्रनिवारणम्—शत्रुओंके शस्त्रोंका निवारण करना।
११ परसेनामोहनोद्वेजनस्तंभनोच्चाटनादीनि — शत्रुसेनामें मोह भ्रम उत्पन्न करना, उनमें उद्वेगभय उत्पन्न करना, उनकी हलचलको रोकना, उनको उखाड देना आदिका साधन।
१२ स्वसेनोत्साहपरिरक्षणाभयार्थानि — अपनी सेनाका उत्साह बढाना, और उसको निर्भय करना।
१३ संग्रामे जयपराजयपरीक्षा — युद्धमें जय होगा या पराजय होगा इसका विचार।
१४ सेनापत्यादिप्रधानपुरुषजयकर्माणि — सेनापति मंत्री आदि मुख्य ओहदेदारोंके विजयका उद्योग।
१५ परसेनासंचरणम्—शत्रुकी सेनामें संचार करके गुप्त रीतिसे सब ज्ञान प्राप्त करना और वहांके अपने ऊपर आनेवाले अनिष्टोंको दूर करना।
१६ राष्ट्रच्युतस्य राज्ञः पुनः स्वराष्ट्रप्रवेशनम्— शत्रु द्वारा उखडे गये अपने राजाको पुनः स्वराष्ट्रमें स्थापन करनेके उद्योग।
१७ पापक्षयकर्म—पतनके साधनोंको दूर करना।
१८ गोसमृद्धिकृषिपुष्टिकराणि—गौ बैल आदिकोंका संवर्धन और कृषिका पोषण करना।
१९ गृहसम्पत्कराणि—घरकी शोभा बढानेके कर्म।
२० भैषज्यानि — रोगनिवारक औषधियां।
२१ गर्भाधानादि कर्म —(गर्भ संस्कार)
२२ सभाजयसाधनम्— सभामें जय, विवादमें जय और कलह शांत करनेके उपाय।
२३ वृष्टिसाधनम्—योग्य समयपर वृष्टि करानेका उपाय।
२४ उत्थापनकर्म—शत्रुपर चढाई करना।
२५ वाणिज्यलाभ — क्रय विक्रय आदिमें लाभ।
२६ ऋणविमोचनम्—ऋण उतारना।
२७ अभिचारनिवारणम्— घातसे अपना बचाव करना।
२८ अभिचार — शत्रुके नाशक उपाय।
२९ स्वस्त्ययनम्—सुखसे देशदेशान्तरमें भ्रमण।
३० आयुष्यम्—दीर्घ आयुष्य प्राप्ति।
३१ स्त्रीकर्म आदि।

इत्यादि अनेक विषय इस वेदमें आनेके कारण इसका अध्ययन विशेष सूक्ष्म दृष्टिसे करना आवश्यक है। ये सब उपाय और कर्म मनुष्यमात्रके अभ्युदय नि.श्रेयसके साधक होनेके कारण मानव जातिके लिये लाभदायक हैं, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता। परन्तु यहां विचार इतनाही है कि, ये सब विषय अथर्ववेदके सूक्तोंसे हम किस रीतिसे जानकर अनुभवमें ला सकते हैं। नि संदेह यह महान् और गंभीर तथा कष्टसे ज्ञान होनेयोग्य विषय है। इसलिये यदि सुविज्ञ पाठक इसमें अपना सहयोग देंगे तोही इस गंभीर विषयका कुछ पता लग सकता है, और गुप्त विषय अधिक खुल सकता है। क्योंकि किसी एक मनुष्यके प्रयत्नसे इस कठिन विषयकी उलझान होना प्राय. अशक्य ही है।

(४) मनका संबंध।

अथर्ववेदद्वारा जो कर्म किये जाते हैं वे मनकी एकाग्रतासे उत्पन्न हुए सामर्थ्यसे ही किये जाते हैं, क्योंकि आत्मा, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि अंत शक्तियोंसे ही अथर्ववेदका विशेष संबंध है, इस विषयमें देखिये —

मनसैव ब्रह्मा यज्ञस्यान्यतरं पक्षं संस्करोति
(गोपथ ब्रा० ३।२)

तद्वाचा त्रय्या विद्ययैकं पक्षं संस्कुरते। मनसैव ब्रह्मा संस्करोति॥ (ऐतरेय ब्रा० ५।३३)

अर्थात् "ऋग्वेद यजुर्वेद और सामवेद द्वारा वाणीपर संस्कार होकर एक भाग सुसंस्कृत होता है और अथर्ववेद द्वारा मनपर संस्कार होकर दूसरा भाग सुसंस्कृत होता है।" मनुष्यमें वाणी और मन ये दो मुख्य दो पक्ष हैं। उन दोनोंसे ही मानवी उन्नतिके साधक अभ्युदय नि श्रेयस विषयक कर्म होते हैं।

शरीरके रोग दूर करना हो अथवा शत्रुका विजय संपादन करना हो, तो ये सब कर्म मानसिक सामर्थ्यसे ही हो सकते हैं। इसी लिये अथर्ववेदने मन.शक्तिकी अभिवृद्धि द्वारा उक्त कर्म और विविध पुरुषार्थ सिद्ध करनेके उपाय बताये हैं।

(५) शांतिकर्मके विभाग।

समाज तथा राष्ट्रमें शांति स्थापन करना अथर्ववेदका मुख्य विषय है। वैमनस्य, शत्रुता, द्वेष आदि भावोंको दूर करके मित्रता, एक विचार, सुमनस्कता आदिकी वृद्धि करना अथर्ववेदका साध्य है। इसी कार्यकी सिद्धिके लिये अथर्ववेदका शांति प्रकरण है। इस प्रकरणमें कई प्रकारकी शांतियां हैं, जिनका थोडासा वर्णन यहां करना उचित है —

१ भूचाल, विद्युत्पात आदिके भय निवारण करनेके लिये महाशान्ति।

२ आयुष्य प्राप्ति और वृद्धिके लिये वैश्वदेवी शान्ति।

३ अग्न्यादि भयकी निवृत्तिके लिये आग्नेयी शान्ति।

४ रोगादि निवृत्तिके लिये भार्गवी शान्ति।

५ ब्रह्मवर्चस- ज्ञानका तेज प्राप्त करनेके मार्गमें आने वाले विघ्न दूर करनेके लिये ब्राह्मी शान्ति।

६ राज्यलक्ष्मी और ब्रह्मवर्चस प्राप्त करनेके लिये अर्थात् क्षात्र और ब्राह्म तेज की वृद्धि करनेके लिये बार्हस्पत्य शान्ति।

७ प्रजा क्षय न हो और प्रजा पशु अन्न आदिकी प्राप्ति हो इसलिये प्राजापत्या शान्ति।

८ शुद्धि करनेके लिये सावित्री शान्ति।

९ ज्ञानसम्पन्नताके लिये गायत्री शान्ति।

१० धनादि ऐश्वर्य प्राप्ति करने, शत्रुसे होनेवाला भय दूर करने और अपने शत्रुको उखाड देनेके लिये आङ्गिरसी शान्ति।

११ परचक्र दूर हो और अपने राष्ट्रका विजय हो तथा अपना बल, अपनी पुष्टि और अपना ऐश्वर्य बढे इसलिये ऐन्द्रि शान्ति।

१२ राज्यविस्तार करनेके लिये माहेन्द्री शान्ति।

१३ अपने धनका नाश न हो और अपना ऐश्वर्य बढे इसलिये करनेयोग्य कौबेरी शान्ति।

१४ विद्या तेज धन और आयु बढानेवाली आदित्या शान्ति।

१५ अन्नकी विपुलता करनेवाली वैष्णवी शान्ति।

१६ वैभव प्राप्त करानेवाली तथा वस्तु सत्कारपूर्वक महादिकी शान्ति करनेवाली वास्तोष्पत्या शान्ति।

१७ रोग और आपत्ति आदिके कष्टोंसे बचानेवाली रौद्री शान्ति।

१८ विजय प्राप्त करानेवाली अपराजिता शान्ति।

१९ मृत्युका भय दूर करनेवाली याम्या शान्ति।

२० जलभय दूर करनेवाली वारुणी शान्ति।

२१ वायुभय दूर करनेवाली वायव्या शान्ति।

२२ कुलक्षय दूर करनेवाली और कुलवृद्धि करनेवाली सन्तति शान्ति।

२३ वस्त्रादि भोग बढानेवाली तथा कारीगरीकी वृद्धि करनेवाली त्वाष्ट्री शान्ति।

२४ बालकोंको हृष्टपुष्ट करके उनको अपमृत्युसे बचानेके लिये कौमारी शान्ति।

२५ दुर्गतिसे बचानेके लिये नैर्ऋति शान्ति।

२६ बलवृद्धि करनेवाली मारुद्गणी शान्ति।

२७ घोडोंकी अभिवृद्धि करनेके लिये गान्धर्वी शान्ति।

२८ हाथियोंकी अभिवृद्धि करनेके लिये पारावती शान्ति।

२९ भूमिके संबंधी कष्ट दूर करनेके लिये पार्थिवी शान्ति।

३० सब प्रकारका भय दूर करनेवाली अभया शान्ति।

ये और इस प्रकारकी अनेक शान्तियां अथर्ववेदसे सिद्ध होती हैं। इनके नामोंका भी यदि विचार पाठक करेंगे, तो उनको पता लग जायगा कि मनुष्यका जीवन सुखमय करनेके लिये ही इनका उपयोग निःसंदेह है। वेदमंत्रोंका मनन करके प्राचीन ऋषि मुनि अपनी उन्नति की विद्याएं किस रीतिसे सिद्ध करते थे, इसकी कल्पना इन शान्तियोंका विचार करनेसे हो सकती है। कई शान्तियोंके नामोंसे पता लग सकता है कि किस ऋषिकी खोजसे किस शान्तिकर्मकी उत्पत्ति हुई। यदि वैदिक धर्म जीवित और जाग्रत रूपमें फिर अपने जीवनमें ढालना है तो पाठकोंको भी इसी दृष्टिसे विचार करना अत्यावश्यक है।

विविध इष्टियां, याग, क्रतु, मेध आदिकी जो योजना वैदिक धर्ममें है, वह उक्त बातकी सिद्धता करनेके लिये ही है। इन सबका विचार कैसा है और इनकी विधि किस रीतिसे का जा सकती है इसका यथामति विचार आगे किया जायगा। परन्तु यहां निवेदन है कि पाठक भी अपनी बुद्धियोंको इस दृष्टिसे काममें लावें और जो खोज होगी वह प्रकाशित करें। क्योंकि अनेक बुद्धियोंके एकाग्र होनेसे ही यह विद्या पुनः प्रकट हो सकती है अन्यथा इसके प्रकट होनेका कोई संभव नहीं है।

(६) मन्त्रोंके अनेक उद्देश्य।

(७) सूक्तोंके गण ।

अथर्ववेदके सूक्तों और मंत्रोंके कई गण हैं, जिनके नाम " अभय गण, अपराजित गण, साम्रामिक गण " इस प्रकार अनेक हैं। प्रथम कांडमें अपराजित गणके सूक्त निम्न-लिखित हैं—

१ विद्मा शरस्य पितरं ०	(१ । २)
२ मा नो विदन् वि व्याधिनः ०	(१ । १९)
३ अदारसृद्भवतु देव ०	(१ । २०)
४ स्वस्तिदा विशां पतिः ०	(१ । २१)

इसके पश्चात् षष्ठकाण्डमें अपराजित गणके सूक्त निम्नलिखित है-

५ अयं मन्युः ०	(६ । ६५)
६ निर्हस्तः शत्रुः ०	(६ । ६६)
७ परिवर्त्मानि ०	(६ । ६७)
८ अभिभूर्यज्ञः ०	(६ । ९७)
९ इन्द्रो जयाति ०	(६ । ९८)
१० अभि त्वेन्द्र ०	(६ । ९९)

कौनसा सूक्त किस गणमें है, यह समझनेसे उसका अर्थ करना, उसके अर्थका मनन करना और उससे बोध लेना, बडा सुगम हो सकता है। तथा गणोंके मंत्रोंके अंदर परस्पर संबंध देखना भी सुगम हो जाता है। इसलिये इस गणोंका विचार वेद पढनेके समय अवश्य ध्यानमें धरना चाहिये। हम आगे बतायेंगे कि कौनसा सूक्त किस गणमें आता है और उसका परस्पर संबंध किस पद्धतिसे देखना होता है।

पूर्वोक्त शांतियोंमें जिन जिन शान्तियोंका संबंध राज्यव्यव-स्थासे है, उन शान्तिकर्मोंके साथ अपराजित गणके मंत्रोंका संबंध है, इस एक बातसे पाठक बहुत कुछ बोध प्राप्त कर सकते हैं। एक एक गणके विषयमें हम स्वतंत्र निबंध लिखकर उसका अधिक विचार आगे करेंगे। उसका अनुसंधान पाठक करें इसी लिये यह बात यहां दर्शायी है।

जब इन सब गणोंका विचार हो जायगा तब ही वेद की रिती ज्ञात हो सकती है, अन्यथा नहीं। यहां यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि कई सूक्त किसी गणके साथ सम्बन्ध नहीं रखते अर्थात् वे स्वतंत्र हैं अथवा उनका सम्बन्ध गणसूक्तोंके समान किसी अन्य सूक्तोंसे नहीं है।

"स्वतंत्र-सूक्त" और " गण-सूक्त " इनका विचार करनेके समय स्वतंत्र सूक्तके मंत्रोंका मनन स्वतंत्र रीतिसे करना चाहिये, और गणसूक्तोंके मंत्रोंका मनन संपूर्णगणोंके संबंध-का विचार करके ही करना चाहिये।

(८) अथर्ववेदका महत्त्व ।

ऋग्वेदसे ज्ञान, यजुर्वेदसे उत्तम कर्म और सामवेदसे उत्तम पुरुषकी उपासना, इन तीन काण्डोंका अभ्यास होनेके पश्चात् आत्माका ज्ञान और बल प्राप्त करनेके मार्ग बतानेका कार्य अथर्ववेद करता है। इस कारण इसको " ब्रह्मवेद " अथवा " आत्मवेद " भी कहते हैं।

उत्तम ज्ञान, प्रशस्त कर्म और उत्तम पुरुषकी उपासना द्वारा अंतःशुद्धि होनेके पश्चात् ब्रह्मका ज्ञान संभवनीय है, इसलिये यह पूर्वोक्त वेदत्रयीसे भिन्न यह " चतुर्थ वेद " कहा जाता है।

उपासक लोग आत्माको जगत्में ढूंढते ढूंढते थक गये, उस समय उनको साक्षात्कार हुआ कि " आत्माको जगत्में कहां ढूंढते हो ? यहां आओ और" अपने पासही उसे ढूंढो ! "

अथार्वाङेनमेतास्वेवाऽप्स्वन्विच्छेति, तद्यदब्रवीदथार्वाङेन-मेतास्वेवाप्स्वन्विच्छेति, तदथर्वाऽभवत् ॥

(गोपथ-ब्राह्मण १-४)

" अब पासही उसे ढूंढो ! " यह पासही है। यह बात इस अथर्व [अथ+अर्वाक्=अथर्वा (क्)] वेदने कही, इसी लिये इसका नाम " अथर्ववेद " हुआ है। यह गोपथ ब्राह्मणका कथन अथर्ववेदका ज्ञानक्षेत्र कहांतक है इसका वर्णन स्पष्ट शब्दोंमें कर रहा है। आत्माका पता अपने पासही लगना है, यह बताना अथर्ववेदके ज्ञानक्षेत्रमें है। इसी लिये इसका नाम " ब्रह्मवेद " है क्योंकि यही ब्रह्मका ज्ञान बताता है।

" थर्व " शब्द चंचलताका वाचक है। और " अ-थर्व " शब्द शांतिका अथवा एकाग्रताका द्योतक है। आत्मानुभव अथवा ब्रह्मसाक्षात्कार जो होना है, वह चित्तकी चंचलता हटनेके पश्चात् और चित्तवृत्तियोंका निरोध होकर उसमें शांति आनेके पश्चात् ही होना है। यह आत्मज्ञानके मार्गकी सूचना इस प्रकार अपने नामसे ही इस अथर्ववेदने बता दी है। वेदके नामोंका महत्त्व पाठक यहां देख सकते हैं।

" अथर्वन् " (अथ+अर्वन्) इस शब्दका अर्थ " अब इस ओर " ऐसा होता है। जगत्में दो पदार्थ हैं, एक मैं और दूसरा मेरेसे भिन्न संपूर्ण जगत्। हरएक मनुष्य समझता है कि मेरेसे भिन्न पदार्थोंसे ही मुझमें शक्ति आती है, मैं स्वयं अशक्त हूं और शक्ति दूसरोंसे प्राप्त होती है। इस सर्वसाधारण विचारसे भिन्न परंतु अत्यंत रम्य विचार जो अथर्ववेद जनता-के सन्मुख रखना चाहता है, वह यह है कि " अब शक्तिके लिये अपनी ओर " ही देखो। सब जगत्में यह नियम देखो

कि वृद्धि अंदरसे होती है, वृक्ष अंदरसे बढते हैं, बालक अंदर-से बढते हैं, अर्थात् शक्तिकी वृद्धि अंदरसे हो रही है, इस-लिये अपने अंदर अपनी ओर देखकर विचार करो । बाह्य जगत्में न देखते हुए, परंतु उसके साथ अपनी शक्तियोंको जोडकर अपनी उन्नतिके हेतु अपने अंदर देखो, शक्ति अपने अंदर है न कि बाहर है। यह अथर्ववेदकी शिक्षा अत्यंत महत्त्वकी है ।

इस अथर्ववेदका स्वाध्याय करना है । ब्रह्मवेद होनेके कारण यह वेद संपूर्ण रीतिसे समझना कठिन है, इसलिये इस वेदके जितने मंत्र समझमें आवेंगे, उनकाही स्वाध्याय करना है। जिन-का ठीक प्रकार ज्ञान नहीं हुआ उनके विषयमें हम कुछ भी नहीं लिखेंगे। तथा जो मंत्र स्वाध्यायके लिये यहां लेंगे उनके विषयमें थोडेसे थोडे शब्दोंमेंही जो कुछ लिखना हो वह लिखेंगे अर्थात् बहुत विस्तार नहीं करेंगे । परंतु जहांतक हो सके वहां-तक कोई बात संदिग्ध नहीं छोडेंगे। इससे स्वाध्याय करने वालोंको बडी सुविधा होगी ।



अथर्ववेद ।

प्रथम--काण्ड ।

इस प्रथम काडमें छ अनुवाक, पैंतीस सूक्त और १५३ मन्त्र हैं।

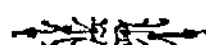
१ प्रथम अनुवाकमें छः सूक्त हैं, तीसरे सूक्तमें ९ मंत्र हैं; शेष पाच सूक्तोंमें प्रत्येकमें चार चार हैं। इस प्रकार इस अनुवाकमें २९ मन्त्र हैं।

१ द्वितीय अनुवाकमें (७ से ११ तक) पाच सूक्त हैं। सप्तम सूक्तमें ७ और ग्यारहवें में ६, शेष तीनमें प्रत्येकमें चार चार मन्त्र हैं। इस प्रकार कुल २५ मन्त्र हैं।

३ तृतीय चतुर्थ और पचम अनुवाकों (१२ से २८ तक सूक्तों) के प्रत्येक सूक्तमें चार मंत्रवाले क्रमश पाँच, पाच और सात सूक्त हैं। इन तीनोंकी मन्त्रसंख्या ६८ है।

४ पष्ठ अनुवाकमें सात (२९ से ३५ तक) सूक्त हैं। २९ वें सूक्तमें छ मंत्र और ३४ वें में पाच मन्त्र हैं, शेषमें चार चार हैं। इस प्रकार कुछ मन्त्रसंख्या ३१ है।

इस ३५ सूक्तोंमें चार मन्त्रवाले सूक्त ३० हैं, पाँच मन्त्रवाला एक, छः मंत्रवाले दो, सात मन्त्रवाला एक, और नौ मन्त्रवाला एक है। यह सूक्त और मन्त्रविभाग देखनेसे पता लगता है कि यह अथर्ववेदका प्रथम काण्ड प्रधानतया चार मन्त्रवाले सूक्तोंका ही है। इसका प्रथम सूक्त यह है इसमें बुद्धि बढानेका विषय कहा है जिसका नाम " मेधा-जनन" है—





मेधाजनन।

(१) बुद्धिका संवर्धन करना।

(ऋषिः—अथर्वा। देवता—वाचस्पतिः।)

ये त्रिषुप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः। वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥१॥

अन्वयः— विश्वा रूपाणि बिभ्रतः, ये त्रि-सप्ताः परियन्ति, तेषां तन्वः बला वाचस्पतिः अद्य मे दधातु ॥१॥

अर्थ— सर्व रूपोंको धारण करके, जो तीन-गुणा-सात पदार्थ सर्वत्र व्यापते हैं, उनके शरीरके बल वाणीका स्वामी आज मुझे देवे ॥१॥

पदार्थ दो प्रकारके हैं एक रूपवाले और दूसरे रूपरहित। आत्मा परमात्मा रूपरहित हैं और संपूर्ण जगत् रूपवाले पदार्थोंसे भरा है। पदार्थोंके विविध रूप जो मनुष्य पशु पक्षी वृक्ष वनस्पति पाषाण आदि में दिखाई देते हैं-कौन धारण करता है, ये रूप कैसे बनते हैं? इस शंकाके उत्तरमें वेद कह रहा है, कि जगत्के मूलमें जो सात पदार्थ-पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, तन्मात्र और अहंकार-हैं ये ही संपूर्ण जगत में दिखाई देनेवाले विविध रूप धारण करते हैं। ये सात पदार्थ तीन अवस्थाओंमें गुजरते हुए जगत्के रूप और आकार धारण करते हैं। (१) सत्त्व अर्थात् समावस्था, (२) रज अर्थात् गतिरूप अवस्था और (३) तम अर्थात् गतिहीन अवस्था, इन तीन अवस्थाओंमें पूर्वोक्त सात पदार्थ गुजरनेसे कुल इक्कीस पदार्थ बनते हैं, जो संपूर्ण सृष्टिका रूप धारण करते हैं।

सृष्टिके हरएक आकारधारी पदार्थमें यही शक्ति है। हमारा शरीर भी सृष्टिके अंतर्गत होनेसे एक स्वतन्त्र पदार्थ है और इसमें भी पूर्वोक्त "तीन गुणा सात" पदार्थ हैं। और इसी कारण शरीरके अंदरके इन इक्कीस तत्त्वोंका संबंध बाह्य जगत् के पूर्वोक्त इक्कीस तत्त्वोंके साथ है। शरीरका स्वास्थ्य या रोगीपन इन संबंधके ठीक होने और न होनेपर अवलंबित है।

शरीरान्तर्गत इन तत्त्वोंके बाह्य जगत्के तत्त्वोंके साथ योग्य संबंध रखने द्वारा अपना आरोग्य स्थिर करके अपना बल अंदरसे बढानेकी सूचना इस मंत्रद्वारा यहां मिलती है। जैसे आप शुद्ध वायुसे अपना प्राणका बल, आप सूर्य-प्रकाशसे अपने नेत्र का बल, इसी प्रकार अन्यान्य बल बढा कर अपनी शक्ति पराकाष्ठातक बढानी चाहिये। यह अथर्ववेदका मुख्य विषय है।

जगत्का तत्त्वज्ञान जानकर, जगत् का अपने साथ संबंध अनुभव करके, अपना बल बढानेकी विद्याका अध्ययन करके, उसका अनुष्ठान करना चाहिये। यह उन्नतिका मूल मंत्र इस प्रथम मंत्रमें बताया है। यहां प्रश्न होता है, कि यह विद्या कौन दे सकता है? उत्तरमें मंत्रने बताया है कि "वाचस्पति" ही उक्त ज्ञान देनेमें समर्थ है।

"वाचस्पति" कौन है? वाक्, वाच्, वाणी, वक्तृत्व, उपदेश, व्याख्यान ये समानार्थक शब्द हैं। वक्तृत्व करनेवाला अर्थात् उत्तम उपदेशक गुरु ही यहां वाचस्पतिसे अभिप्रेत है। इस अर्थको लेनेसे इस मंत्रका अर्थ निम्न प्रकार हुआ-

"मूल सात तत्त्व तीन अवस्थाओंसे गुजर कर सब जगत्के संपूर्ण पदार्थोंके रूप बनाते हुए सर्वत्र फैले हैं। इनके बलोंको अपने अंदर धारण करनेकी विद्या व्याख्याता गुरु आजही मुझे पढावे।"

पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह। वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥२॥
इहैवाभि वि तनूभे आर्त्नी इव ज्यया। वाचस्पतिर्नि यच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥३॥

अन्वयः— हे वाचस्पते! देवेन मनसा सह पुनः एहि। हे वसोष्पते! निरमय। श्रुतं मयि मयि एव अस्तु ॥ २ ॥
ज्यया उभे आर्त्नी इव, इह एव उभौ अभि वि तनु। वाचस्पतिः नि यच्छतु। श्रुतं मयि मयि एव अस्तु ॥ ३ ॥

अर्थ- हे वाणीके स्वामी! दिव्य मनके साथ सन्मुख आओ। हे वसुओंके स्वामी! मुझे आनंदित करो। पढा हुआ ज्ञान मुझमें स्थिर रहे ॥ २ ॥

डोरीसे धनुष्यकी दोना कोटीयोंकी तरह, यहांही (दोनोंको) तनाओ। वाणीका पति नियमसे चले। पढा हुआ ज्ञान मेरेमें स्थिर रहे।

इस मंत्रमें प्रारंभमें ही " पुनः " शब्द है। इसका अर्थ "वारंवार, पुनः पुन अथवा संमुख" है। शिष्य विद्याकी एक ओर और गुरु दूसरी ओर होता है, इसलिये गुरु शिष्यके सन्मुख और शिष्य गुरुके सन्मुख होते हैं। इन दोनोंको इसी प्रकार रहना चाहिये। यदि ये परस्पर सन्मुख न रहे तो पढाई असंभव है।

गुरु (देवेन मनसा) दैवी भावनासे युक्त मनसेही शिष्यके साथ वर्ताव करे। मन दो प्रकारके हैं-एक देव मन, और दूसरा राक्षस मन। राक्षस मन जगत् में झगडे उत्पन्न करता है और देव मन जगत्में शांति रखता है। गुरु देवमनसे ही शिष्यको पढावे।

गुरु शिष्यको (नि रमय) रममाण करे, अर्थात् ऐसा पढावे कि जिससे शिष्य आनंदके साथ पढता जाय। इस शब्दके द्वारा पढाईकी " रमण पद्धति " वेदने प्रकट की है। इससे भिन्न " रोदन पद्धति " है जिसमें रोते हुए शिष्य पढाये जाते हैं।

" हे उत्तम उपदेश करनेवाले गुरु! देव भावसे युक्त मनसे ही शिष्यके सन्मुख जा। हे अग्न्यादि वसुओंके प्रयोग कर्ता गुरु! तू शिष्यको रमाता हुआ उसे विद्या पढाओ। शिष्य भी कहे कि पढा हुआ ज्ञान अपने अंदर स्थिर रहे ॥"

अथर्ववेद पिप्पलाद-संहितामें मंत्रका प्रारंभ "उप नेह" शब्दसे होता है और " वसोष्पते "के स्थानपर "असोष्पते" पाठ है। असुपति (असोः पति) का अर्थ प्राणोंका पति गुरु। "प्राणोंका पति" अर्थात् योगादि साधनद्वारा प्राणोंको स्वाधीन रखनेवाला उत्तम योगी गुरु हो। यह शब्द भी गुरुका एक उत्तम लक्षण बता रहा है।

धनुष्यकी दोनों कोटीयाँ डोरीसे तनी रहती हैं इस तनी हुई अवस्थामें ही धनुष्य विजयका साधन हो सकता है। जिस समय दोनों कोटियोंसे डोरी हट जाती है उस समय वह धनुष्य शत्रुनाश या विजय प्राप्त करनेमें असमर्थ हो जाता है। इसी प्रकार जाति या समाजरूपी धनुष्यकी दो कोटियां गुरु और शिष्य हैं, इन दोनोंको विद्यारूपी डोरी बांधी गयी है और इस डोरीसे यह धनुष्य तना हुआ अर्थात् अपने कार्यमें सिद्ध रहता है। समाजको यह धनुष्य सदा सिद्ध रखना चाहिये। इसीकी सिद्धतासे जाति, समाज या राष्ट्र जीवित, जाग्रत और उन्नत रहता है। जिस समय विद्याकी डोरी गुरु शिष्यरूपी धनुष्यसे हट जाती है उस समय अज्ञान-युग शुरू होनेके कारण जाति पतित हो जाती है।

उपहूतो वाचस्पतिरुपास्मान्वाचस्पतिर्ह्वयताम्। सं श्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन वि राधिषि ॥ ४ ॥

अन्वयः— वाचस्पतिः उपहूतः। वाचस्पतिः अस्मान् उपह्वयताम्। श्रुतेन सङ्गमेमहि। श्रुतेन मा वि राधिषि। ॥ ४ ॥

अर्थ— वाणीका स्वामी बुलाया गया। वह वाणीका स्वामी हम सबको बुलावे। ज्ञानसे हम सब युक्त हों। हम ज्ञानके साथ कभी विरोध न करें ॥ ४ ॥

स्थिर रखनेके लिये अति दक्ष रहें। पहिले पढा हुआ ज्ञान स्थिर रहा तो ही आगे अधिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यह भाव ध्यानमें धरनेसे इस मंत्रका अर्थ निम्न प्रकार होता है—

" जिस प्रकार डोरीसे धनुष्यकी दोनों कोटियां विजयके लिये तनी होती हैं, उसी प्रकार गुरु और शिष्य ये समाजकी दो कोटियां विद्यासे सज्ज रखिये। आचार्य स्वयं नियमानुसार चलें और शिष्योंको नियमानुसार चलावें। शिष्य अध्ययन किया हुआ ज्ञान दृढ करके आगे बढे॥"

" उपहूत " का अर्थ " बुलाया, पुकारा, आह्वान किया अथवा पूछा गया " है। उत्तम व्याख्याता गुरुको हमने बुलाया और उसे प्रश्न पूछे गये अर्थात् विद्याका व्याख्यान करनेके लिये उसे आह्वान किया गया है। गुरु भी शिष्यके प्रश्न सुनकर उनके प्रश्नोंका उचित उत्तर देकर उनका समाधान करे। अर्थात् गुरु कोई बात शिष्यसे छिपाकर न रखे। इस प्रकार दोनोंके परस्पर प्रेमसे विद्याकी वृद्धि होती रहे।

हरएक अपने मनमें यह इच्छा रखे कि " हम सब ज्ञानसे युक्त हों, ज्ञानकी वृद्धि करते रहें और कभी ज्ञानकी प्रगतिमें बाधा न डालें, ज्ञानका विरोध न करें और मिथ्या ज्ञानका प्रचार न करें।"

इस स्पष्टीकरणका विचार करनेसे इस मंत्रका अर्थ निम्न प्रकार प्रतीत होता है-

" हम तत्त्व व्याख्याता गुरुसे प्रार्थना करते हैं। वह हमें योग्य उत्तर देवे। हम [प्रश्नोत्तरकी रीतिसे हम सब] ज्ञानसे युक्त होते रहें और कभी हमसे ज्ञानकी उन्नतिमें बाधा उत्पन्न न हो।"

अंदर स्थिर करनेकी विद्या] गुरु हमें सिखावे ॥ १ ॥ हे गुरु ! तू मनमें शुभ संकल्प धारण करके हमारे सन्मुख आ, हमें रमाते [हुए पढा] प्राप्त किया हुआ ज्ञान हममें स्थिर रहे ॥ २ ॥ डोरीसे दोनों धनुष्कोटियोंके तनानेके समान यहां तू [विद्यासे हम दोनोंको] तना [कर बांध दे] गुरु नियमसे चले और हमें चलावे। ज्ञान हममें स्थिर रहे ॥ ३ ॥ हम गुरुसे प्रश्न पूछते हैं, वह हमें उत्तर देवे। हम सब ज्ञानी बनें। कोई भी ज्ञानका विरोध न करे ॥ ४ ॥

इन मंत्रोंका जितना मनन होगा, इनपर जितना विचार होगा, उतना ज्ञान बढानेका उपाय-(मेधाजनन)- हो सकता है। आशा है कि पाठक इसका योग्य विचार करें और अपनी परिस्थितिमें अपने ज्ञानकी वृद्धि करनेके उपाय सोचें। इसमें निम्नलिखित पांच बातोंका अवश्य विचार हो—

१ विद्या- जिनसे जगत् बनता है उन मूलतत्त्वोंका ज्ञान प्राप्त करना और उनका अपनी उन्नतिसे संबंध देखना तथा उसका अनुष्ठान करनेका विधि जानना, यही सीखनेयोग्य विद्या है।

विजय-सूक्त ।

(२)

यह " अपराजित गण" का प्रथम सूक्त है जिसका ऋषि " अथर्वा 'और देवता' 'पर्जन्य" है ।

विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम् । विद्मो ष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्पसम् ॥१॥
ज्याके परि णो नमाश्मानं तन्वं कृधि । वीडुर्वरीयोऽरातीरप द्वेषांस्या कृधि ॥२॥
वृक्षं यद्गावः परिषस्वजाना अनुस्फुरं शरमर्चन्त्यृभुम् । शरुमस्मद्यावय दिद्युमिन्द्र ॥३॥
यथा द्यां च पृथिवीं चान्तस्तिष्ठति तेजनम् । एवा रोगं चास्रावं चान्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इत् ॥४॥

अर्थ—(शरस्य) शरका, बाणका पिता (भूरि-धायसं पर्जन्यं) बहुत प्रकारसे धारण पोषण करनेवाला पर्जन्य है यह (विद्म) हम जानते हैं । तथा (अस्य) इसका माता (भूरि-वर्पसं) बहुत प्रकारकी कुशलताओंसे युक्त पृथिवी है, यह हमें (सुविद्म) उत्तम प्रकारसे पता है ॥ १ ॥ हे (ज्याके) माता ! (नः) हम सब पुत्रोंको (परि नम) परिणत कर अर्थात् हमारे (तन्वं) शरीरको (अश्मानं) पत्थर जैसा सुदृढ (कृधि) कर (वीडुः) बलवान बनकर (अ-राती) अदानके भावोंको तथा (द्वेषांसि) द्वेषोंको अर्थात् सब शत्रुओंको (वरीयः) पूर्ण रीतिसे (अप कृधि) दूर कर ॥ २ ॥ (यत्) जिस प्रकार (वृक्षं) वृक्षके साथ (परिषस्वजाना) लिपटी हुई या बंधी हुई (गावः) गौएं अपने (ऋभुं शरं) तेजस्वी पुत्र शरको (अनुस्फुरं) फुर्तीके साथ (अर्चन्ति) चाहती हैं, उसी प्रकार हे इन्द्र ! (अस्मत्) हमसे (दिद्युं शरूं) तेजःपुत्र बाणको (यावय) दूर बढा ॥ ३ ॥ जिस प्रकार (द्या) द्युलोक और पृथ्वीके (अन्तः) बीचमें (तेजनं) तेज (तिष्ठति) होता है, (एव) इसी प्रकार यह (मुञ्जः) मुंज (रोगं च आस्रावं च) रोग और स्रावके (अन्तः) बीचमें (इत् तिष्ठतु) निश्चयसे रहे ॥ ४ ॥

भावार्थ- धारण-पोषण उत्तम प्रकारसे करनेवाला पिता पर्जन्य है, कुशलतासे अनेक कर्म करनेवाली माता पृथ्वी है, इन दोनोंसे शर सरकंडा-पुत्र उत्पन्न होता है । ॥ १ ॥ माता पुत्रके शरीरपर ऐसा परिणाम करावे कि जिससे वह बलवान बनकर शत्रुओंको पूर्ण रीतिसे दूर करनेमें समर्थ हो सके ॥ २ ॥ जिस प्रकार वृक्षके साथ बंधी हुई गौवें अपने बछडे को वेगसे प्राप्त करना चाहती हैं, उसी प्रकार हे ईश्वर ! तेज शर हमसे आगे बढे ॥३॥ जिस प्रकार द्युलोक और पृथ्वीके बीचमें प्रकाश होता है, उसी प्रकार रोग और स्राव-घाव के बीचमें शर ठहरे ॥ ४ ॥

---

५ गुरु शिष्य- धनुष्यके दोनों नोक जिस प्रकार डोरीसे तने रहते हैं, उस प्रकार विद्यारूपी डोरीसे समाजके गुरु-शिष्य-रूपी दोनों नोक एक दूसरेसे पूर्णतया सुसंबंध रहें । कभी उनमें ढीलेपन न आजावे ।

यह सब सूक्त शिष्यके मुखद्वारा उच्चारित होनेके समान है, इससे अनुमान होता है कि गुरुको लाने, रखने आदिके प्रबंधादि व्यवस्था उत्तरदायित्व शिष्यों या शिष्योंके संरक्षकों पर ही पूर्णतया है ।

अनुसन्धान

इस प्रथम सूक्तमें "मेधाजनन" अर्थात् बुद्धिका संवर्धन करनेके मूलभूत नियम बताये हैं । गुरु, शिष्य तथा विद्यालय आदिका प्रबंध किस रीतिसे करना चाहिये, गुरु किस प्रकार पढावे, शिष्य किस ढंगसे पढे और दोनों मिलकर राष्ट्रकी उन्नति किस रीतिसे करें इसका विचार किया गया ।

इसके पश्चात् विद्याकी पढाई शुरू होती है, जिसमें अपराजित गणका सूक्त " विद्मा शरस्य पितरं " यह है । अथर्ववेदमें यह द्वितीय सूक्त है । तृतीय सूक्त भी इसी वाक्यसे प्रारंभ होता है । इन दोनों सूक्तोंका विचार अब करेंगे ।—

यह भावार्थ भी परिपूर्ण नहीं क्योंकि इन मंत्रोंके हरएक आगे पीछेका संबंध देखकर जो भाव व्यक्त होता है, वह जानकर ही मंत्रोंका सत्य भावार्थ जानना चाहिये। वह भाव,

देखनेके लिये आगेका स्पष्टीकरण देखिये—

(१) वैयक्तिक विजय ।

इस सूक्तमें पहिला वैयक्तिक विजय प्राप्त करनेके उपदेश निम्न प्रकार बताये है—

१ उत्तम मातापितासे जन्म प्राप्त हो, (मंत्र १)
२ शरीर बलवान बनाया जावे, (मंत्र २)
३ रोगादि शत्रुओंको दूर रखा जावे, (मंत्र २)
४ शरीरमें फुर्ती लाई जावे, (मंत्र ३)
५ जगत्‌में अपना तेज फैलानेका यत्न किया जावे, (मंत्र ४)
६ औषधों से रोगोंको दूर किया जावे, (मंत्र ५)

पाठक विचारकी दृष्टिसे इन मंत्रोंका विचार करेंगे तो उनको उक्त छः भाव वैयक्तिक उन्नतिके साधन पूर्वोक्त चारों मंत्रोंके अन्दर गुप्तरूपसे दिखाई देंगे। इनका विशेष विचार होनेके लिये यहां मंत्रोंके शब्दार्थ और स्पष्टीकरण दिये जाते हैं—

(२) पिताके गुण-धर्म-कर्म ।

पूर्वोक्त मंत्रोंमें पिताके गुणधर्म बतानेवाले ये शब्द आये हैं–" *पिता, पर्जन्य, भूरिधायस्, वृक्ष, द्यौः।* " इनके अर्थोंका बोध होनेसे पिताके गुण धर्म कर्मोंका बोध हो सकता है; इसलिये इनका आशय देखिये—

१ पिता- (माता) रक्षक, संभालनेवाला।
२ पर्जन्यः- (पूर्ति+जन्य) पूर्ति करनेवाला, पूर्णता करनेवाला। न्यूनताको दूर करनेवाला।
३ भूरिधायस्— (भूरि) बहुत प्रकारसे (धायस्) धारण पोषण करनेवाला, दाता, उदारचरित।
४ वृक्षः- आधार, स्वयं धूप सहकर दूसरोंको छाया देनेवाला।

(३) माताके गुण-धर्म-कर्म ।

" *माता, पृथिवी, भूरिवर्पस्, ज्याका, गौ* " ये पांच शब्द पूर्वोक्त मन्त्रोंमें माताके गुणधर्मकर्मोंको प्रकट कर रहे हैं। इनका अर्थ देखिये–

१ माता- बालकोंका हित करनेवाली।
२ पृथिवी— क्षमाशील, सहनशील, पुत्रोंकी उन्नतिके लिये आवश्यक कष्ट सहन करनेवाली।
३ भूरिवर्पस्-(भूरि) बहुत (वर्पस्) कुशलतासे कर्म करनेमें समर्थ, कर्ममें अत्यंत कुशल, सदा कर्म करनेमें दक्ष, परिवारकी उन्नतिके लिये उत्तम कर्म करनेवाली।
४ ज्या, ज्याका-(ज्या–जया) जयका साधन करनेवाली, माता, पृथिवी, रस्सी, बलशालिनी।
५ गौः- प्रगतिशील, दुग्धादिद्वारा पुत्रोंकी पुष्टि करनेवाली। किरण, स्वर्ग, रस, वाणी, सरस्वती, माता, जल, नेत्र, आकाश सूर्य आदिके शुभगुणोंसे युक्त।

माताके गुणधर्म इन शब्दों द्वारा व्यक्त हो रहे हैं। अर्थात्– " बालबच्चोंका हित करनेवाली क्षमाशील, पुत्रोंकी उन्नतिके लिये करनेयोग्य कर्मोंमें सदा दक्ष रहनेवाली, बहुतही कुशलतासे अपने कुटुंबकी उन्नति करनेमें समर्थ, बलशालिनी, गौके समान दुग्धादिद्वारा बालकोंकी पुष्टि करनेवाली, किरणोंके समान प्रकाश करनेवाली, स्वर्गके समान सुखदायिनी, रसके समान घरकी शोभा बढानेवाली, शुभ भाषण करनेमें चतुर, विदुषी, जलके समान शांति बढानेवाली, नेत्रके समान मार्ग दर्शानेवाली, आकाशके समान सबको आश्रय देनेवाली, सूर्यके समान अज्ञानान्धकार दूर करनेवाली माता होनी चाहिये।"

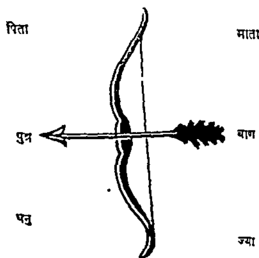
पिताके गुणधर्मकर्म पहिले बताये, और यहां माताके गुण धर्म बताये हैं। ये आदर्श माता पिता हैं, इनसे जो पुत्र पैदा होगा और पाला तथा बढाया जायगा, वह भी वैसा वीर पुत्रही होगा तथा पुत्री भी उसी प्रकार वीरा बनेगी इसमें क्या संदेह है ?

४ ऋभुः-बुद्धिमान्, कुशल, कारीगर, तेजस्वी।
५ शरुः-शत्रुका नाश करनेवाला।
६ दिद्युः-तेजस्वी।
७ तेजनः—प्रकाशमान।
८ मुञ्जः-(मुञ्जति मार्जयति) शुद्धता और पवित्रता करनेवाला।

पुत्र ऐसा हो कि जो "शत्रुका नाश करनेमें समर्थ हो, सुदृढ अंगवाला हो, शूर, बुद्धिमान्, कुशल, कारीगर, तेजस्वी, यशस्वी और पवित्र आचारवाला हो।" माता पिताको उचित है, कि वे ऐसा यत्न करें कि पुत्रमें ये गुणधर्म और कर्म बढें और इन गुणोंके द्वारा कुलका यश फैले।

यह बात स्पष्ट ही है कि पूर्वोक्त गुणधर्म कर्मोंसे युक्त मातापिता होंगे तो उनके पुत्रों और पुत्रियोंमें ये गुणधर्म आ सकते हैं।

(५) एक अद्भुत अलंकार



इस सूक्तमें बाण, धनुष्य और डोरीके अलंकारसे एक महत्त्वपूर्ण बातका प्रकाश किया है। धनुष्यका सख्त भाग जिसपर डोरी चढाई जाती है वह पुरुषरूप समझिये, डोरी मातारूप है और पुत्र बाणरूप है। पिताका बल और माताकी प्रेरणा इनसे युक्त होकर पुत्र संसारमें फेंका जाता है। वह संसारमें जाकर अपने शत्रुओंका नाश करके यशका भागी होता है। इस अलंकारका विचार पाठक करेंगे तो उनको बडाही बोध प्राप्त हो सकता है। पुत्रकी उन्नतिमें माता पिताका कार्य कितना होता है इसकी ठीक कल्पना इस अलंकारसे पाठकोंके मनमें आ सकती है।

डोरीके विना केवल धनु जैसा शत्रुनाश करनेमें असमर्थ है उसी प्रकार स्त्रीके विना पुरुष असमर्थ है। तथा जिस प्रकार धनुके विना डोरी कार्य करनेमें असमर्थ है उसी रीतिसे पुरुषके विना स्त्री असमर्थ है। माता पिता की योग्य प्रेरणा और योग्य शिक्षाद्वारा सुशिक्षित बना पुत्रही जगत्में यशस्वी होता है। यह अलंकार गृहस्थियोंको बडाही बोधप्रद हो सकता है।

पिताके सूचक " पर्जन्य, वृक्ष" आदि शब्द तथा माताके सूचक " पृथिवी" आदि शब्द उनका ऋतुगामित्व होकर ब्रह्मचारी होनेकी सूचना कर रहे हैं। [इस विषयमें स्वाध्याय मंडलद्वारा प्रकाशित "ब्रह्मचर्य" पुस्तकके अंदर अथर्ववेदीय ब्रह्मचर्य सूक्तकी व्याख्यामें पृथ्वी, पर्जन्य और वृक्षोंके ब्रह्मचर्यका प्रकरण अवश्य देखिये]

(६) कुटुम्बका विजय।

व्यक्तिकी उन्नतिके विषयमें पहिले बतायाही है कि वैयक्तिक विजय की सूचनाएं इस सूक्तमें किस रूपमें हैं। कुटुंबके या परिवारके विजयका संबंध पूर्वोक्त अलंकार तथा स्पष्टीकरणके देखनेसे स्पष्ट हो सकता है। कुटुंबका विजय माता पिताके उत्तम कर्तव्य पालन करने और सुप्रजा निर्माण करनेसे ही प्राप्त होता है।

(मंत्र १) जैसा " अनेक प्रकारसे पोषण करनेवाला पर्जन्य पिता ऋतुगामी होकर वर्षा ऋतुमें अपने जलरूपी वीर्यका सिंचन उत्तम उपजाऊ भूमिमें करता है और शररूपी विजयी संतानकी उत्पत्ति करता है," तद्वत् माता पिता ऋतुगामी होकर वीर पुत्र उत्पन्न करें।

(मंत्र २) " हे जयका साधन करनेवाली माता! अपने पुत्रोंका शरीर पत्थर जैसा सुदृढ बना, जिससे पुत्र बलवान बनकर अपने शत्रुओंको दूर कर सके।"

(मंत्र ३) –" जिस प्रकार वृक्षके साथ बंधी हुई गौवें अपने तेज बछडेको चाहती हैं" [उसी प्रकार पिताके साथ रहती हुई माता भी अपने लिये तेजस्वी पुत्र उत्पन्न करनेकी ही इच्छा करे।] अथवा– " (वृक्षं) धनुष्यके साथ रहनेवाली डोरी तेजस्वी (शरं) बाण ही वेगसे छोडती है। " [उसी प्रकार पतिकी उपासना करनेवाली स्त्री वीर पुत्र उत्पन्न होनेकी ही अभिलाषा करे।] " हे (इन्द्र) परमा·

त्मन् ! हमसे तेजस्वी (शरुः) बाणके समान तेजस्वी पुत्र चले अर्थात् उत्पन्न हो।" [मातापिता परमात्माकी प्रार्थना ऐसी करें कि हे ईश्वर ! हमारा ऐसा पुत्र हो कि जो दूर दूर जाकर जगत्में विजय प्राप्त करे।]

(मंत्र ४) –" जिस प्रकार [पिता] द्युलोक और [माता] पृथिवीके मध्यमें विद्युत् आदि तेजस्वी पदार्थ [पुत्ररूपसे] रहते हैं," [उसी प्रकार माता पिता के मध्यमें तेजस्वी सुंदर बालक चमकता रहे।]" जैसा मुञ्ज शर रोग और स्रावके घावके बीचमें रहता है" अर्थात् उनको दूर करता है उसी प्रकार [यह पवित्रता करनेवाला पुत्र रोग घावके मध्यमें रहता हुआ भी स्वयं अपना बचाव करे और कुलका भी उद्धार करे]

यह भाव पहिलेकी अपेक्षा अधिक विस्तृत है और इसमें स्पष्टीकरणके लिये पूर्वापर संबंध रखनेवाले अधिक वाक्य जोड दिये हैं, जिससे पाठकोंको पता लग जायगा, कि यह सूक्त कुटुंबके विजयका उपदेश किस ढंगसे दे रहा है। जातिके या राष्ट्रके विजयकी बुनियाद इस प्रकार कुटुंबकी सुस्थितिपर तथा सुप्रजा निर्माणपर ही अवलंबित है। जो लोग राष्ट्रकी उन्नति चाहते हैं, वे अपनी उन्नतिकी बुनियाद इस प्रकार कुटुंबमें रखें। आदर्श कुटुंब-व्यवस्था ही सब विजयका मुख्य साधन है।

(७) पूर्वापर-सम्बन्ध

पहिले सूक्तमें विद्या पढानेका उपदेश दिया है। इस द्वितीय सूक्तसे पढाईका प्रारंभ हो रहा है। विद्याका प्रारंभ बिलकुल साधारण बातसे ही किया गया है। घासकी उत्पत्तिका विषय हरएक स्थानके मनुष्य जानते हैं। " *मेघसे पानी गिरता है और पृथ्वीसे घास उगता है इसलिये घासका* पिता मेघ और माता भूमि है।" इतना ही विषय इस सूक्तके प्रारंभमें बताया है। इतनी साधारण घटनाका उपदेश करते हुए "पिता-माता-पुत्र" रूपी कुटुंबकी उन्नतिकी शिक्षा किस ढंगसे बेदने बतायी है यह पाठक यहां देख चुके हैं। घासके अंदर मुञ्ज या शर एक जातिका घास है। यह सरकंडा स्वयं शत्रुका वध करनेमें समर्थ नहीं होता। क्योंकि कोमल रहता है। परंतु जब उसके साथ कठिन लोहेका संयोग किया जाता है और पीछे पर लगाये जाते हैं, तब वही कोमल सरकंडा धनुष्यपर चढकर डोरीकी गति प्राप्त करके शत्रुका नाश करनेमें समर्थ होता है। इसी प्रकार कोमल बालक गुरुगृहकी कठिन तपस्या करता हुआ ब्रह्मचर्य पालनरूपी कठिन वज्रसे युक्त होकर उन्नतिके नियमोंके पालनसे अपनी गतिको एक मार्गमें रखता हुआ अपने, कुटुंबके, जातिके तथा राष्ट्रके शत्रुओंको भगा देनेमें समर्थ होता है।

पहिले सूक्तके तृतीय मंत्रमें धनुष्यकी उपमा देकर बताया है कि "गुरु शिष्यरूपी धनुष्यकी दो कोटियां विद्यारूपी डोरीसे तनी हैं।" प्रथम सूक्तमें यह अलंकार भिन्न उपदेश दे रहा है और इस सूक्तका धनुष्यका दृष्टांत भिन्न उपदेश दे रहा है। दृष्टांतमें एकदेशी बातको ही देखना होता है, इसलिये एक ही दृष्टांतसे भिन्न उपदेश देना कोई दोष नहीं है। प्रथम सूक्तके दृष्टांतमें भी डोरीका स्थान विद्या माता अर्थात् सरस्वती देवीको दिया है उसमें मातृत्व का सादृश्य है।

जंगलमें वृक्षके साथ बंधी हुई गाय भी अपने बछडेका स्मरण करती रहती है, गायका बछडेके ऊपर का प्रेम सबसे बढिया प्रेम है। इस प्रकारका प्रेम अपने बालकके विषयमें माताके हृदयमें होना चाहिये। अपना बालक अति तेजस्वी हो, अति यशस्वी हो, यही भावना माता मनमें धारण करे और इस भावनाके साथ यदि माता अपने बालकको दूध पिलावेगी, तो उक्त गुण पुत्रमें निःसंदेह उतरेंगे। इस विषयमें तृतीय मंत्र मनन करनेके योग्य है।

(८) कुटुम्बका आदर्श।

चतुर्थ मंत्रमें आदर्श कुटुंबका नमूना सन्मुख रखा है। *द्युलोक पिता, भूमि माता और इनके बीच का तेजस्वी गोलक* इनका पुत्र है। अपने घरमें भी यही आदर्श होवे। आकाश और पृथ्वीमें जैसा सूर्य होता है उसी प्रकार पिता और माताके मध्यमें बालक चमकता रहे। कितना उच्च आदर्श है! हरएक गृहस्थी इसका स्मरण रखें।

(९) औषधिप्रयोग।

मुञ्ज घास अपने रस आदिसे अनेक रोगों और अनेक स्रावोंको दूर करता है, क्योंकि गुण शोधक, शुद्धता तथा निर्मलता करनेवाला है। इसलिये स्पष्ट है कि यदि शोधकता और पवित्रता का गुण अपने अंदर बढाया जाय तो रोगादि दूर रह करते हैं। हरएकके लिये यह सूचना अपनाने योग्य है।

मुञ्ज या शर औषधिका प्रयोग करके स्रावके रोग तथा मूत्राघात आदि रोग दूर होते हैं। इस विषयका सूचक उपदेश इस सूक्तके अन्तमें है। वैद्य लोग इसका विचार करें।

(१०) राष्ट्रका विजय।

व्यक्ति, कुटुंब, जाति, देश तथा राष्ट्रके विजयपूर्ण अभ्युदयके नियमोंमें समानता है। पाठक इस बातको अच्छी प्रकार जानते ही हैं। व्यक्तिका कार्यक्षेत्र छोटा और राष्ट्रका विस्तृत है, छोटेपन और विस्तृतपन की बातको छोडनेसे दोनों स्थानोंमें नियमोंकी एकरूपताका अनुभव आ सकता है।

कुटुंबका ही विस्तृत रूप राष्ट्र है, ऐसा मान लें और पूर्व स्थानमें एक घर या एक परिवारके विषयमें जो उपदेश बताया है, वही विस्तृत रूपसे राष्ट्रमें देखेंगे तो पाठकोंको राष्ट्रीय उन्नति का विषय पूर्वोक्त रीतिसे ही ज्ञात हो जायगा।

घरमें पिता शासक है, राष्ट्रमें राजा शासक है; घरमें माता प्रबंधकर्त्री है, राष्ट्रमें प्रजाद्वारा चुनी हुई राष्ट्रसभा प्रबंधकर्त्री है। घरमें पुत्र वीर बनाया जाता है और राष्ट्रमें बालचमुओंमें वीरता बढाई जाती है। इत्यादि साम्य देखकर पाठक जान सकते हैं कि यह सूक्त राष्ट्रीय विजयका उपदेश किस ढंगसे देता है। पूर्वोक्त स्थानमें वर्णन किये हुए पिता, माता और पुत्रके गुणधर्मकर्म यहां राष्ट्रीय क्षेत्रमें अतिविस्तारसे देखनेसे इस क्षेत्रकी बात पाठकोंको अतिस्पष्ट हो जायगी। इस भावको ध्यानमें धारण करनेसे इस सूक्तका राष्ट्रीय भाव निम्नलिखित प्रकार होगा—

"प्रजाका उत्तम धारण पोषण और पूर्णता करनेवाला राजा ही शूरका सच्चा पिता और उसकी माता बहुत कर्मोंकी प्रेरणा करनेवाली मातृभूमि ही है ॥ १ ॥ हे मातृभूमि! हम सबके शरीर अति सुदृढ हों, जिससे हम सब उत्तम बलवान बनकर अपने शत्रुओंको भगा देंगे ॥ २ ॥ जिस प्रकार गौ अपने बछडेका हित सदा चाहती है, उसी प्रकार हे ईश्वर! मातृभूमिके प्रेमसे बढे हुए वीर आगे बढें ॥ ३ ॥ जिस प्रकार आकाश और भूमिके बीचमें तेजोगोलक होते हैं उसी प्रकार राजा और प्रजाके मध्यमें वीर चमकते रहें। तथा वे पवित्रता करते हुए रोगादि भयसे दूर हों ॥ ४ ॥

साधारणतः यह आशय अतिसंक्षेपसे है। पाठक इस प्रकार विचार करें और वेदके आशयको समझनेका यत्न करें।

आरोग्य-सूक्त।

(२)

पूर्व सूक्तका अभ्यास करनेसे यह ज्ञान हुआ कि पर्जन्य पिता है, पृथ्वी माता है और इनके पुत्र वृक्षवनस्पति आदि सब हैं। यहां शंका उत्पन्न होती है कि, क्या पर्जन्यके समान सूर्य, चंद्र, वायु आदि भी वृक्षवनस्पतियोंके लिये पितृस्थानीय हैं वा नहीं, क्या इनके न होते हुए, केवल अकेला एक ही पर्जन्य तृणादि की उत्पत्ति करनेमें समर्थ हो सकता है? इसके उत्तरमें यह तृतीय सूक्त है—

[ऋषि—अथर्वा। देवता—(मंत्रोंमें उक्त अनेक) देवताएँ]

विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं शतवृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति॥ १॥
विद्मा शरस्य पितरं मित्रं शतवृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ॥ २॥
विद्मा शरस्य पितरं वरुणं शतवृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ॥ ३॥

विद्मा शरस्य पितरं चन्द्रं शतवृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ॥ ४ ॥
विद्मा शरस्य पितरं सूर्यं शतवृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति ॥ ५ ॥

अर्थ— (विद्म) हमें पता है कि शरके पिता (शत-वृष्ण्य) सैकडों बलोंसे युक्त पर्जन्य, मित्र, वरुण, चंद्र, सूर्य (ये पांच) हैं। (तेन) इन पांचोंके वीर्यसे (ते तन्वे) तेरे शरीरके लिये मैं (शं करं) आरोग्य करूं। (पृथिव्यां) पृथिवीके अंदर (ते निषेचनम्) तेरा सिंचन होवे और सब दोष (ते) तेरे शरीरसे (बाल् इति) शीघ्रही (बहिः अस्तु) बाहर हो जावें ॥ १—५ ॥

भावार्थ— तृणादि मनुष्यपर्यंत सृष्टिकी माता भूमि है और पिता पर्जन्य, मित्र वरुण चंद्र, सूर्य ये पांच हैं। इनमें अनंत बल हैं। उनके बलोंका योग्य उपयोग करनेसे मनुष्यके शरीरमें आरोग्य स्थिर रह सकता है, मनुष्यका जीवन दीर्घ हो सकता है और उसके शरीरसे सब दोष बाहर हो जाते हैं।

आरोग्यका साधन।

पांच मंत्रोंका मिलकर यह एकही प्रकरण है और इसमें मनुष्यादि प्राणियों तथा वृक्षवनस्पतियोंके आरोग्यके मुख्य साधन कहे गये हैं। 'शर' शब्द घास वाचक होता हुआ भी सामान्य अर्थसे यहां उपलक्षण है और तृणसे लेकर मनुष्यतक सृष्टिका आशय उसमें है। विशेष अर्थमें "शर" संज्ञक वनस्पतिका गुणधर्म बताया जाता है यह बात भी स्पष्ट ही है।

इन मंत्रोंमें पांच पिता कहे हैं। "पिता" शब्द पाता अर्थात् रक्षा, संरक्षण करनेवाला इस अर्थमें यहां प्रयुक्त है। तृणादिसे लेकर मानव-सृष्टिपर्यंत सब की सुरक्षा करनेका कार्य इनका ही है। ये पांचों सब सृष्टिकी रक्षा कर ही रहे हैं। देखिये

१ पर्जन्य वृष्टिद्वारा जलसिंचन करके सबका रक्षण करता है।
२ मित्र प्राणवायु है और इस वायुसे ही सब जीवित रहते हैं।
३ वरुण जलकी देवता है और यह जल सबका जीवन ही कहलाता है।
४ चंद्र औषधियोंका अधिराजा है और औषधियां बाहर

जाती है, पाठक विचार करें और लाभ उठावें–

पर्जन्यसे आरोग्य।

पर्जन्यका शुद्ध जल जो स्वाती आदि मध्य नक्षत्रोंमें प्राप्त किया जा सकता है वह बडा आरोग्यप्रद है। दिनके पूरे तपन के समय यदि इसका पान किया जाय तो शरीरके संपूर्ण दोष दूर हो जाते हैं और पूर्ण नीरोगता प्राप्त हो सकती है। वृष्टिजलके स्नानसे शरीरके शुष्क खुजली आदिका निवारण होता है। अंतरिक्षमें शुद्ध प्राण विराजमान है वह वृष्टिके जलबिंदुओंके साथ भूमिपर आता है। इसलिये वृष्टिजलका स्नान आरोग्य वर्धक है।

मित्र (प्राण) वायुसे आरोग्य।

प्राणायामसे योगसाधनमें आरोग्यरक्षणका जो उपाय वर्णन किया है वह यहां अनुसंधेय है। दोनों नासिकाएं [illegible] नेतिसे, भस्त्रिकासे अथवा जलकी नासिकासे स्वच्छ और मल रहित रखनेसे प्राणवायु अंदर जाता और उत्तम [illegible] करता है। खुली वायुमें [illegible] बहनेवाला वायुमान बडा आरोग्यवर्धक है। जो मनुष्य [illegible]

प्राप्त होता है। अन्य जल अर्थात् तालाब, कूए, नदी आदिकोंके जलके स्नानमें उनमें उत्तम प्रकार तैरनेसे भी कई दोष दूर हो जाते हैं। जलचिकित्साका यह विषय है वह पाठक यहां अनुसंधान करके देख। यह बडा ही विस्तृत विषय है क्योंकि प्राय सभी बीमारियां जलचिकित्सासे दूर हो सकती हैं।

चन्द्र (सोम) देवसे आरोग्य।

चंद्र औषधियोंका राजा है, इसका दूसरा नाम सोम है। सोमादि औषधियोंसे आरोग्य प्राप्त करनेका साधन चरकादि आचार्योंने अपने वैद्य ग्रंथोंमें लिखा ही है। इसी साधनका दूसरा नाम "वैद्यक" है।

सूर्यदेवसे आरोग्य।

सूर्य पवित्रता करनेवाला है। सूर्यकिरणसे जीवनका तत्व सर्वत्र फैलता है। सूर्यकिरणोंका स्नान लेने शरीरसे करनेसे अर्थात् धूपमें अपना शरीर तपानेसे आरोग्य प्राप्त होता है। सूर्यकिरणोंसे चिकित्सा करनेका भी एक बडा भारी शास्त्र है।

पञ्चपाद पिता।

ये पांच देव अनेक प्रकारसे मनुष्य, पशुपक्षी, वृक्ष, वनस्पति आदिकोंका आरोग्य साधन करते हैं। वृक्षवनस्पति और आरण्यक पशु उक्त पंचपाद पितरों अर्थात् पांचों देवोंके साथ पांचों पिताओंके साथ-पांचों रक्षकोंके साथ नित्य रहते हैं, इस लिये सदा आरोग्यसंपन्न होते हैं। नागरिक पशुपक्षी मनुष्यके कृत्रिम बनावटी जीवनसे संबंधित होनेके कारण रोगोंसे अधिक ग्रस्त होते हैं। जंगली लोग प्रायः सीदे सादे रहनेके कारण अधिक नीरोग होते हैं। परंतु नागरिक लोग कि जो सदा तंग मकानोंमें रहते हैं सदा तंग वस्त्रोंसे वेष्टित होते हैं और जल वायु तथा सूर्य प्रकाश आदिकोंसे अपने आपको दूर रखते हैं, अर्थात् जो अपने पंचपिताओंसे ही विमुख रहते हैं वेही अधिकसे अधिक रोगी होते हैं और प्रति दिन इन नगरोंमें पीडित नागरिक लोगोंमें ही विविध रोग बढ रहे हैं और अस्वास्थ्यसे वे ही सदा दुःखी होते हैं।

इसलिये वेद कहता है कि पर्जन्य, मित्र (प्राण) वायु, जलदेव वरुण, चंद्र, सूर्यदेव इन पांच देवोंको अपना पिता अर्थात् अपना संरक्षक जानो और — विचार करें और इस निसर्गनियमोंका पालन करके अपना आरोग्य प्राप्त करें।

पृथ्वीमें जीवन।

पृथ्वीमें प्राणिमात्रका सामान्यतः और मनुष्यका उच्च जीवन विशेषतः उक्त पांचों शक्तियोंपर ही निर्भर है। मंत्रका "निषेचन" शब्द "जीवनरूप जल" का सूचक है। इसलिये—

ते पृथिव्यां निषेचनम्।

इस मंत्रभागका आशय "तेरा पृथ्वीमें जीवन" पूर्वोक्त पांचां देवताओंके साथ संबंधित है यह स्पष्ट है। जो शरीर का आरोग्य, शरीरका कल्याण करनेवाले हैं वेही जीवन अथवा दीर्घ जीवन देनेवाले निश्चयसे हैं। इनके द्वारा ही—

ते बालू इति बहि अस्तु।

"तेरे शरीरके दोष शीघ्र बाहर हो जाय।" पूर्वोक्त पांचों देवोंके योग्य संबंधसे शरीरके सब दोष शरीरसे बाहर हो जाते हैं। देखिये—

(१) वृष्टिजल पान पूर्वक लंघन करनेसे मूत्रद्वारा शरीर दोष बाहर हो जाते हैं।
(२) शुद्ध प्राणके अंदर जानेसे रक्तशुद्धि होती है और उच्छ्वासद्वारा दोष दूर होते हैं।
(३) जलचिकित्साद्वारा हरएक अवयवके दोष दूर किये जा सकते हैं।
(४) सोम आदिक औषधियोंका औषधि नाम इसलिये है, कि वे शरीरके (दोष-धी) दोषोंको धोती हैं।
(५) सूर्यकिरण पसीना लाने तथा अन्यान्य रीतियोंसे शरीरके रोग बीज दूर कर देते हैं।

इस रीतिसे पाठक अनुभव करें कि ये पांच देव किस प्रकार शरीरका (शं करं) कल्याण करते हैं। आरोग्य देते हैं, (निषेचनं) जीवन बढाते हैं, और (बहि) दोषोंको बाहर निकाल देते हैं।

"शं" शब्द "शांति" का सूचक है। शरीरमें "शांति, समता, सुख" आदि स्थापन करना आरोग्यका भाव बता रहा है। ये देव "शं" करनेवाले हैं, इसका तात्पर्य यही है कि, ये आरोग्य बढानेवाले हैं। आरोग्य बढानेके कारण जीवन बढानेवाले अर्थात् दीर्घ जीवन करनेवाले हैं और सदा सर्वदा दोषोंको शीघ्र बाहर करनेवाले हैं। पाठक इस मंत्रके मननसे अपने आरोग्यके मुख्य सिद्धान्तका ज्ञान स्पष्टतया प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार आरोग्यके मुख्य साधनका सामान्यतया उपदेश करके मूत्रदोष निवारणका विशेष उपाय बताते हैं—

मूत्रदोष-निवारण ।

यदान्त्रेषु गवीन्योर्यद्वस्तावधि संश्रुतम्। एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥६॥
प्र ते भिनद्मि मेहनं वर्त्रं वेशन्त्या इव । एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥७॥
विषितं ते वस्तिबिलं समुद्रस्योदधेरिव । एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥८॥
यथेषुका परापतदवसृष्टाऽधि धन्वनः । एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥९॥

अर्थ— (यत्) जो (आन्त्रेषु) आंतोंमें (गवीन्योः) मूत्र नाडियोंमें तथा जो (वस्तौ) मूत्राशयमें मूत्र (संश्रुतं) इकट्ठा हुआ है। वह तेरा मूत्र (सर्वकं) सबका सब एकदम बाहर (मुच्यताम्) निकल जावे ॥ ६ ॥ (वेशन्त्याः) झीलके पानीके (वर्त्रं) बंधको (इव) जिस प्रकार खोल देते हैं तद्वत् तेरे (मेहनं) मूत्रद्वारको (प्र भिनद्मि) मैं खोल देता हूं . ॥ ७ ॥ समुद्रके अथवा (उदधेः) बडे तालावके जलके लिये मार्ग खुला करनेके समान तेरा (वस्ति-बिलं) मूत्राशयका बिल मैंने (विषितं) खोल दिया है... ॥ ८ ॥ जिस प्रकार धनुष्यसे छूटा हुआ (इषुका) बाण (परा अपतत्) दूर जाता है, उस प्रकार तेरा सब मूत्र शीघ्र बाहर निकल जावे ॥ ९ ॥

भावार्थ—तालाव आदिसे जिस प्रकार नहर निकाल देते हैं जिससे तालावका पानी सुखपूर्वक बाहर जाता है उसी प्रकार मूत्राशयसे मूत्र मूत्रनाडियों द्वारा मूत्रेंद्रियसे बाहर निकल जावे ।

मूत्र खुली रीतिसे बाहर जानेसे शरीरके बहुत दोष दूर हो जाते हैं। शरीरके सब विष मानो इस मूत्रमें इकट्ठे होते हैं और वे मूत्र बाहर जानेसे विष भी उसके साथ बाहर जाते हैं और आरोग्य प्राप्त होता है। इसीलिये किसी रोगी का मूत्र अंदर रुक जानेसे मूत्रके विष शरीरमें फैलते हैं और रोगी शीघ्र ही मर जाता है। *इस कारण आरोग्यके लिये मूत्रका उत्सर्ग* नियमपूर्वक होना अत्यंत आवश्यक है। यदि वह मूत्र मूत्राशयमें रुक जाय तो मूत्र नलिकाको खोल कर मूत्रका मार्ग खुला करना आवश्यक है। इस कार्यके लिये क्षार या कुछ औषधिका प्रयोग बडा सहायक है। वैद्य लोग इसका उपयोग करें। इसपर दूसरा उपाय मूत्रद्वार खोलनेका है, इसके लिये लोह शलाका, बस्तियंत्र (Catheter कैथेटर) का प्रयोग करनेकी सूचना इन मंत्रों की उपमाओंसे मिलती है। यह मूत्राशय यंत्र सोनेका, चांदीका या लोहेका बनाया जाता है, यह बारीक नलिका आरंभमें गोल सी होती है, आजकल यह रबर आदि अन्यान्य पदार्थोंका भी बनाबनाया मिलता है। इस समय इसको हरएक डाक्टरके पास पाठक देख सकते हैं। यह मूत्र इंद्रियसे मूत्राशयमें योग्य रीतिसे डाला जाता है। यह वहां पहुंचनेसे अंदर रुका हुआ मूत्र इसके अंदर की नलीसे बाहर हो जाता है।

योगी लोग इसकी सहायतासे वज्रोली आदि क्रियाएं प्राप्त करते हैं मूत्रद्वारसे कोमल दूध अथवा जल आदि अंदर मूत्राशयमें खींचने और उसके द्वारा मूत्राशयको शुद्ध करनेका सामर्थ्य अपनेमें बढाते हैं। इसका अभ्यास बढानेसे न केवल मूत्राशयपर प्रभुत्व प्राप्त होता है, परंतु संपूर्ण वीर्य नाडियोंके समेत संपूर्ण वीर्याशयपर भी प्रभुत्व प्राप्त होता है। *ऊर्ध्वरेता होनेकी सिद्धि इसीके योग्य अभ्याससे प्राप्त होती है।* योगी लोग इस अभ्यासको अतिगुप्त रखते हैं और योग्य परीक्षा होनेके पश्चात् ही यह अभ्यास शिष्यको सिखाया जाता है। पूर्ण ब्रह्मचर्य रहना इसी अभ्याससे साध्य होता है। *गृहस्थ धर्म पालन करते हुए भी पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन होनेकी संभावना इस अभ्याससे हो सकती है।*

पूर्वापर सम्बन्ध

द्वितीय सूक्तमें आरोग्य साधनका विषय प्रारंभ किया था। उसी आरोग्यप्राप्तिका विस्तृत नियम इस तृतीय सूक्तके प्रथम पांच मंत्रोंके गणमें कहा है। सबके आरोग्यका मानो यह मूल-मंत्र ही है। हरएक अवस्थामें सुगमतया आरोग्यसाधन करनेका उपाय इस गणमंत्रमें वर्णन किया है। इस तृतीय सूक्तके अंतिम चार मंत्रोंमें मूत्राशयके दोषको दूर करनेका साधन बताया है।

इस सूक्तका "शत वृष्ण्य" शब्द अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। "वृष्ण्य" शब्द बल, वीर्य, उत्साह, प्रजननसामर्थ्य आदिका वाचक है। ये सैकडों बल देनेवाले पूर्वोक्त पांचों देव हैं यह यहां इस सूक्तसे स्पष्ट हुआ है। वीर्यवर्धक अन्य उपायोंका अवलम्बन न करके पाठक यदि इन पांचोंको ही योग्य रीतिसे वर्तते रहेंगे तो उनको अनुपम लाभ हो सकता है।

द्वितीय सूक्तमें, "भूरि-धायस" शब्द है जिसका अर्थ 'अनेक प्रकारसे धारण पोषण करनेवाला" पूर्व स्थानमें दिया है। यह भी पर्जन्यके साहचर्यके कारण इस सूक्तमें अनुवृत्ति से आता है और पांचों देवोंका विशेषण बनता है। पाठक इस शब्दको ऐसा मंत्रोंका अर्थ देखें और बोध प्राप्त करें।

"भूरि-धायस" शब्दका "शत वृष्ण्य' शब्दसे निकट संबंध है, मानो ये दोनों शब्द एक दूसरेके सहायक हैं। विशेष प्रकारसे धारण पोषण करनेवाला ही सैकडों वीर्योंको देनेवाला हो सकता है। क्योंकि पुष्टिके साथ ही बलका संबंध है। इस प्रकार पूर्व सूक्तसे इस सूक्तका संबंध देखिये।

शारीरशास्त्रका ज्ञान।

इस सूक्तके मननसे पाठकोंने जान ही लिया होगा कि शारीर-शास्त्रका ज्ञान अथर्वविद्याके यथावत् जाननेके लिये अत्यंत आवश्यक है। मूत्राशयमें शलाकाका प्रयोग विना वहांके अवयवोंके जाननेसे नहीं हो सकता। शारीरशास्त्रको न जाननेवाला मनुष्य योगसाधन भी नहीं कर सकता, तथा अथर्ववेदका ज्ञान भी यथा योग्य रीतिसे प्राप्त नहीं कर सकता।

यह "अंगि-रस" का विषय है, अर्थात् अंगोंके रसोंकाही यह अथर्वशास्त्र है। अर्थात् जिसने अंगोंका ज्ञान नहीं प्राप्त किया है, अंगोंके अंदरके जीवन रसोंका जिसको कुछ भी ज्ञान नहीं है वह अथर्वविद्यासे बहुत लाभ प्राप्त नहीं कर सकता।

डाक्टर लोग जिस प्रकार मुर्दोंकी चीर फाड करके शरीरांगोंका यथावत ज्ञान प्राप्त करते हैं उसी प्रकार योगियों और अथर्वांगिरसविद्याके पढनेवालोंको करना उचित है।

हमने यहां सोचा था कि इस सूक्तमें वर्णित शलाकाके प्रयोगके लिये आवश्यक अवयवोंका परिचय चित्रोंद्वारा दिया जावे, परंतु इससे कई लोग अधिक भ्रममें भी पड सकते हैं और जो चित्रोंको ठीक प्रकार समझ नहीं सकते वे उलटाही प्रयोग करके दोषके भागी हो सकते हैं। इस भयको सामने देखकर इस बातको चित्रोंसे स्पष्ट करनेका विचार इस समयके लिये दूर कर दिया है। और हम यहां पाठकोंसे निवेदन करना चाहते हैं कि वे इस प्रयोगका ज्ञान सुशिक्ष डाक्टरोंसे ही प्राप्त करें तथा ऊपर दिये हुए योग-प्रक्रियाका ज्ञान किसी उत्तम योगीके पास जाकर सीखें; क्योंकि अंगरस चिकित्सामें इन बातोंकी आवश्यकता है। इनके विना केवल मंत्रार्थ पढनेसे अथवा शाब्दिक ज्ञान समझने मात्रसे भी उपयोग नहीं हो सकता।

जल-सूक्त।

पूर्व सूक्तमें आरोग्यसाधक जलका संक्षेपसे वर्णन किया है इसलिये अब उसी जलका विशेष वर्णन करनेवाले आगेके तीन सूक्तोंको देखते हैं-

[४]

(ऋषिः- सिन्धुद्वीपः। देवता[अपांनपात्, सोमः-] आपः।)

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम्। पृञ्चतीर्मधुना पयः ॥ १॥

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह। ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥ २॥

अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः। सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः॥ ३॥
अप्स्व १ न्तरमृतमप्सु भेषजम्। अपामुत प्रशस्तिभिरश्वा भवथ वाजिनो गावो भवथ वाजिनीः॥४॥

अर्थ- (अध्वरीयतां) यज्ञकर्ताओंके (जामयः) बहिनोंके समान और (अम्बयः) माताओंके समान जलकी नदियां, (अध्वभिः यन्ति) अपने मार्गोंसे जाती हैं जो (मधुना) मधु-शहदके साथ (पयः) दूध या जल (पृञ्चतीः) मिलाती हैं॥१॥ (याः) जो (अमूः) ये नदियां (उप सूर्ये) सूर्यके सम्मुख होती हैं अथवा (याभिः) जिनके साथ सूर्य होता है। वे हम सबका (अध्वरं) यज्ञ (हिन्वन्ति) सांग करती हैं॥२॥ (यत्र) जहां हमारी (गावः) गौवें पानी (पिबन्ति) पीती हैं उन (देवीः आपः) दिव्य जलोंकी (सिन्धुभ्यः) नदियोंके लिये हवि करनेके कारण (उप ह्वये) मैं प्रशंसा करता हूं॥३॥ (अप्सु अन्तः) जलमें अमृत है, (अप्सु भेषजं) जलमें दवाई है। (उत) और (अपां प्रशस्तिभिः) जलके प्रशंसनीय गुण धर्मोंसे (अश्वाः वाजिनः) घोडे बलवान् (भवथ) होते और गौवें बलयुक्त होती हैं॥४॥

भावार्थ-जल उनके लिये माता और बहिनके समान हितकारक होता है जो उनका उत्तम उपयोग करना जानते हैं। जलकी नदियां बह रही हैं, मानो वह दूधमें शहद मिला रही हैं। जो जल सूर्यकिरणसे शुद्ध बनता है अथवा जिसकी पवित्रता सूर्य करता है वह जल हमारा आरोग्य सिद्ध करे। जिन नदियोंमें हमारी गौवें जल पीती हैं और जिनके लिये हवि बनाया जाता है उनके जलका गुणगान करना चाहिये। जलमें अमृत है, जलमें औषध है, जलके शुभ गुणसे घोडे बलवान् बनते हैं और गौवें भी बलवती बनती हैं।

---

[५]

(ऋषिः- सिन्धुद्वीपः। देवता-[अपांनपात्, सोमः] आपः)।

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे॥ १॥
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः॥ २॥
तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च नः॥ ३॥
ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम्। अपो याचामि भेषजम्॥ ४॥

अर्थ- हे (आपः) जलो! (हि) क्योंकि आप (मयोभुवः) सुखदायक (स्थ) हो इसलिये (ताः) वो तुम (नः ऊर्जे) हमारे बलके लिये तथा (महे रणाय चक्षसे) बडी रमणीयताके दर्शनके लिये हमें (दधातन) पुष्ट करो॥१॥ (यः) जो (वः) आपके अंदर (शिवतमः रसः) अत्यन्त कल्याणकारी रस है (तस्य) उसका (नः इह भाजयत) हमें यहां भागी करो (इव) जैसी (उशतीः मातरः) इच्छा करनेवाली माताएं करती हैं॥२॥ हे जलो! जिसके (क्षयाय) निवासके लिये आप (जिन्वथ) तृप्ति करते हो (तस्मै) उसके लिये हम (वः अरं गमाम) आपको पूर्णतया प्राप्त करेंगे। और आप (नः) हमें (जनयथ) बढाओ॥३॥ (वार्याणां) इच्छा करनेयोग्य गुणोंके (ईशानाः) स्वामी इसलिये (चर्षणीनां) प्राणिमात्रके (क्षयन्तीः) निवासके हेतु ऐसे (अपः) जलोंसे (भेषजं याचामि) औषधकी याचना करता हूं॥

भावार्थ— जल सुखकारक है, उससे बल बढता है, रमणीयता प्राप्त होती है और पुष्टि भी है॥ जिस प्रकार पुत्रको माताके दूधसे पुष्टिका भाग मिलता है, उसी प्रकार जलके अंदरके उत्तम सुखवर्धक रस हमें प्राप्त हों॥ जिससे प्राणिमात्रकी स्थिति होती है, वह रस हमें प्राप्त हो और उससे हमारी वृद्धि होती रहे॥ जलमें इष्ट गुण प्राप्त होते हैं और प्राणिमात्रकी स्थिति होती है, उस जलसे हमें औषधरस प्राप्त होता रहे॥

[६]

[ऋषिः- सिन्धुद्वीपः । देवता (अपांनपात्) आपः, २ आपः सोमो अग्निश्च]

शं नो॑ दे॒वीर॒भिष्ट॑य॒ आपो॑ भवन्तु पी॒तये॑ । शं योर॒भि स्र॑वन्तु नः ॥ १ ॥

अ॒प्सु मे॒ सोमो॑ अब्रवीद॒न्तर्विश्वा॑नि भेष॒जा । अ॒ग्निं च॑ वि॒श्वशं॑भुवम् ॥ २ ॥

आपः॑ पृणी॒त भे॑ष॒जं वरू॑थं त॒न्वे॒ ३ मम॑ । ज्योक् च॒ सूर्यं॑ दृ॒शे ॥ ३ ॥

शं न॒ आपो॑ धन्व॒न्या॒३ः शमु॑ सन्त्वनू॒प्याः॑ ।

शं नः॑ खनि॒त्रिमा॒ आपः॒ शमु॒ याः कु॒म्भ आभृ॑ताः शि॒वा नः॑ सन्तु॒ वार्षि॑कीः ॥ ४ ॥

अर्थ— (देवी आप) दिव्य जल (न शं) हमें सुख दे और (अभिष्टये) इष्ट प्राप्तिके लिये तथा (पीतये) पीनेके लिये हो और हमपर शांतिका (अभि स्रवन्तु) स्रोत चलावे ॥ १ ॥ (मे) मुझे (सोम अब्रवीत्) सोमने कहा कि (अप्सु अन्त) जलमें (विश्वानि भेषजा) सब औषधियां हैं और अग्नि (विश्व-शं-भुवं) सब कल्याण करनेवाला है ॥ २ ॥ (आप) जलो ! (भेषज पृणीत) औषध दो और (मम तन्वे) मेरे शरीरके (वरूथं) संरक्षण दे जिससे मैं सूर्यको (ज्योक् दृशे) दीर्घकालतक देखूं ॥ ३ ॥ (न.) हमारे लिये (धन्वन्या आपः) मरुदेशका जल (शं) सुखकारक हो, (अनूप्या) जलपूर्ण प्रदेशका जल सुखकारक हो, (खनित्रिमा) खोदे हुए कूवे आदिका जल सुखदायक हो, (कुंभे) घडेमें भरा जल सुखदायक हो, (वार्षिकी) वृष्टिका जल सुखदायक होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ- दिव्य जल हमें पीनेके लिये मिले और वह हमारा सुख बढावे ॥ १ ॥ जलमें सब औषध रहते हैं और अग्नि सुख बढानेवाला है ॥ २ ॥ जलसे हमारी चिकित्सा होवे और शरीरका बचाव रोगोंसे होकर हमारा दीर्घ आयु बने ॥ ३ ॥ मरुदेशका, जलमय देशका, कूवेका, वृष्टिका तथा घडोंमें भरा हुआ जल हमारा सुख बढानेवाला होवे ॥ ४ ॥

ये तीन सूक्त जलका वर्णन कर रहे हैं। तीनों सूक्त इकट्ठे हैं इसलिये तीनोंका विचार यहां इकट्ठाही करेंगे।

जलकी भिन्नता ।

जल भिन्न प्रकारका है यह बात पूर्व सूक्तोंमें कही है—

१ देवी (दिव्या) आप (४।३) —आकाशसे अर्थात् मेघोंसे प्राप्त होनेवाला जल, इसी का नाम "वार्षिकी" भी है।

२ वार्षिकी आपः (६।४) —वृष्टिसे प्राप्त होनेवाला जल।

३ सिंधुः (४।३) —नदी तथा समुद्रसे प्राप्त होनेवाला जल।

४ अनूप्या आपः (६।४) -जलमय प्रदेशमें प्राप्त होनेवाला जल।

५ धन्वन्या आप (६।४) -मरुदेश, रेतीले देशमें, अथवा थोडी वृष्टि होनेवाले देशमें मिलनेवाला जल।

६ खनित्रिमा आपः (६।४) -खोदकर बनाये हुए कूए बावलीसे प्राप्त होनेवाला जल।

वृष्टिसे प्राप्त होनेवाला जल भी रेतीले स्थान, कीचडकी मिट्टीके स्थान आदिमें गिरनेसे भिन्न गुण धर्मोंसे युक्त होता है। जिस स्थानमें साली साल कीचड बना रहता है, उसमें पडे हुए पानीकी अवस्था भिन्न होती है और रेतीमेंसे प्राप्त हुए पानीके गुणधर्म भिन्न है। इसी कारण ये सब जल विभिन्न गुणधर्मोंसे युक्त होते हैं। जलका उपयोग आरोग्यके लिये करना हो, तो प्रथम सबसे उत्तम शुद्ध और पवित्र जल प्राप्त करना आवश्यक है।

उक्त जल जो बाहर प्राप्त होता है वह घरमें लाकर घडोंमें रखनेके कारण उसके गुणधर्ममें बदल होता है। अर्थात् कूवेका ताजा पानी जो गुणधर्म रखता है, वही घरमें लाकर (कुंभे आभृताः ६।४) घडेमें कई दिन रखनेपर भिन्न गुणधर्मोंसे युक्त होना संभव है। तथा प्रवाही नदीका पानी और कूवेके स्थिर पानीके गुणधर्म भी भिन्न हो सकते हैं।

इसी प्रकार एक ही जल विभिन्न स्थानमें और विभिन्न गुणधर्मोंसे युक्त होता है। यह दर्शानेके लिये निम्नलिखित मंत्रमें कहा है—

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह । (४ । २)

" वह जल जो सूर्यके सम्मुख रहता है, अथवा जिसके साथ सूर्य रहता है।" अर्थात् सूर्यकिरणोंके साथ स्पर्श करनेवाला जल भिन्न गुणधर्मवाला बनता है और सदा अंधेरेमें रहनेके कारण जिसपर सूर्यकिरण नहीं गिरते उसके गुणधर्म भिन्न होते हैं। जिन कूवोंपर वृक्षादिकी हमेशा छाया होती है और जिनपर नहीं होती उनके जलोंके गुणधर्म भिन्न होते हैं। तथा-

अम्बयो यन्त्यध्वभिः । (४ । १)

"नदियां अपने मार्गसे चलती हैं।" इसमें जलमें गतिका वर्णन है। यह गतिमान जल और स्थिर जल विभिन्न गुणधर्मोंसे युक्त होता है। स्थिर जलसे कृमिकीटक तथा सडावट होना संभव है उस प्रकार गतिवाले जलमें नहीं। इसी प्रकार गतिकी मंदता और तेजीके कारण भी जलके गुणधर्मोंमें भेद होते हैं। तथा-

पृञ्चतीर्मधुना पयः । (४ । १)

"मधु अर्थात् पुष्प-पराग आदिसे जलमें मिलावट होती है।" इससे भी पानीके गुणधर्म बदलते हैं। नदी तालावके तटपर वृक्षादि होते हैं और उस जलमें वृक्षवनस्पतियोंसे फूल, फूलके पराग, पत्ते आदि गिरते हैं, जलमें सडते या मिलते हैं। यह कारण है कि जिससे जलके गुणधर्म बदलते हैं तथा-

यत्र गावः पिबन्ति । (४ । ३)

" जिस जलाशयमें गौवें पानी पीती हैं," जहां गौवें, भैंसे आदि पशु जाते हैं, जलपान करते हैं। उस पानीकी अवस्था भी बदल जाती है।

जल लेनेके समय इन बातोंका विचार करना चाहिये। जो जलकी अवस्थाएं वर्णन की हैं, उनमें सबसे उत्तम अवस्थावाला जल ही पीने आदि कार्यके लिये योग्य है। हरएक अवस्थामें प्राप्त होनेवाला जल लाभदायक नहीं होगा। वेदने ये सब जलकी अवस्थाएं बताकर स्पष्ट कर दिया है कि जलमें भी उत्तम मध्यम अधम अवस्थाका जल हो सकता है और यदि उत्तम आरोग्य प्राप्त करना हो तो उत्तमसे उत्तम पवित्र जलही लेना चाहिये। पाठक इन अवस्थाओंका उत्तम विचार करें।

जलमें औषध।

जलका नाम ही "अमृत" है अर्थात् जीवन रूप रस ही जल है यही बात मंत्र कहता है-

अप्सु अमृतम् । (४ । ४)

अप्सु भेषजम् । (४ । ४)

"जलमें अमृत है, जलमें औषध है,' जल अमृतमय है और औषधिमय है। मरनेसे बचानेवाला अमृत कहलाता है, और शरीरके दोषोंको धोकर शरीरकी निर्दोषता सिद्ध करनेवाला भेषज कहलाता है। जल इन गुणोंसे युक्त है। इसी लिये जलको कहा है-

शिवतमः रसः । (५ । २)

"जल अत्यंत कल्याण करनेवाला रस है।" केवल "शिवो रसः" कहा नहीं है, परंतु "शिवतमो रसः" कहा है, इससे स्पष्ट है कि इससे अत्यंत कल्याण होना संभव है। यही बात अन्य शब्दोंसे भी वेद स्पष्ट कर रहा है—

आपः मयोभुवः । (५ । १)

"जल हितकारक है।" यहांका "मयस्" शब्द "सुख, आनंद, समाधान, तृप्ति" आदि अर्थका बोध कराता है। यदि जल पूर्ण आरोग्य साधक न होगा तो उससे आनंद बढना असंभव है। इसलिये जल अमृतमय है यह स्पष्ट सिद्ध होता है इसीलिये कहा है।-

अप्सु विश्वानि भेषजानि । (६।२)

"जलमें सब दवाइयां हैं।" जलमें केवल एकही रोग की औषधि नहीं प्रत्युत सब प्रकारकी औषधियां हैं। इसीलिये हरएक बीमारीका जलचिकित्सासे इलाज किया जा सकता है। योग्य वैद्य और पथ्यपालन करनेवाला रोगी होगा, तो आरोग्य निःसंदेह प्राप्त होगा। इसलिये कहा है-

आपः पृणीत भेषजम् । (६ । ३)

अपो याचामि भेषजम् । (५ । ४)

"जल औषध करता है। जलसे औषध मांगता हूं।" अर्थात् जलसे चिकित्सा होती है। रोगोंकी निवृत्ति जलचिकित्सासे हो सकती है। रोगोंके कारण शरीरमें जो विषमता होती है उसे दूर करना और शरीरके सात धातुओंमें समता स्थापित करना जलचिकित्सासे संभवनीय है।

समता और विषमता।

शरीरकी समता आरोग्य है और विषमता रोग है। समता स्थापन करनेकी सूचना वेदके "शं, शांति" आदि शब्द करते हैं और विषमता दूर करनेका भाव "योः" शब्द वेदमें कर रहा है। दोनों मिलकर "शं-योः" शब्द बनता है। इसका संदुक्त तात्पर्य "समताकी स्थापना और विषमताका दूर करना" है। इसलिये कहा है-

धर्म-प्रचार-सूक्त ।

(ऋषिः– चातनः । देवता– अग्निः (जातवेदाः), ३ अग्नीन्द्रौ)

(७)

स्तुवानमग्न आ वह यातुधानं किमीदिनम् । त्वं हि देव वन्दितो हन्ता दस्योर्बभूविथ ॥१॥
आज्यस्य परमेष्ठिन् जातवेदस्तनूवशिन् । अग्ने तौलस्य प्राशान यातुधानान् वि लापय ॥२॥
विलपन्तु यातुधाना अत्त्रिणो ये किमीदिनः । अथेदमग्ने नो हविरिन्द्रश्च प्रति हर्यतम् ॥३॥
अग्निः पूर्व आ रभतां प्रेन्द्रो नुदतु बाहुमान् । ब्रवीतु सर्वो यातुमानयमस्मीत्येत्य ॥४॥
पश्याम ते वीर्यं जातवेदः प्र णो ब्रूहि यातुधानान्नृचक्षः ।
त्वया सर्वे परितप्ताः पुरस्तात्त आ यन्तु प्रब्रुवाणा उपेदम् ॥५॥
आ रभस्व जातवेदोऽस्माकार्थाय जज्ञिषे । दूतो नो अग्ने भूत्वा यातुधानान् वि लापय ॥६॥
त्वमग्ने यातुधानानुपबद्धाँ इहा वह । अथैषामिन्द्रो वज्रेणापि शीर्षाणि वृश्चतु ॥७॥

अर्थ— हे अग्ने ! (स्तुवानं) स्तुति करनेवाले (यातुधानं किमीदिनं) घातक शत्रुओंको भी (आ वह) यहां ले आ। (हि) क्योंकि हे देव ! (वन्दितः त्वं) नमनको प्राप्त हुआ तू (दस्योः) डाकूका (हन्ता) हनन या शासन करने वाला (बभूविथ) होता है ॥ १ ॥ हे (परमेष्ठिन्) श्रेष्ठ स्थानमें रहनेवाले (जातवेदः) ज्ञानको प्राप्त करनेवाले और (तनू-वशिन्) शरीरका संयम करनेवाले अग्ने ! तू (तौलस्य आज्यस्य) तोले हुए घी आदि का (प्राशान) भोजन कर और (यातुधानान्) दुष्टोंको (वि लापय) विलाप करा ॥ २ ॥ (ये) जो (यातुधानाः) दुष्ट (अत्त्रिणः) भक्षण करनेवाले और (किमीदिनः) घातक हैं वे (विलपन्तु) विलाप करें । (अथ) और अब, हे अग्ने ! (इदं हविः) यह हवि तू और (इन्द्रः च) इन्द्र (प्रतिहर्यतम्) स्वीकार करो ॥ ३ ॥ (पूर्वः अग्निः आरभतां) पहिला अग्नि आरंभ करे, तथा पश्चात् (बाहुमान् इन्द्रः प्र नुदतु) बाहुबलवाला इन्द्र विशेष प्रेरणा करे, जिससे (सर्वः यातुमान्) सब दुष्ट लोग (एत्य) आकर (ब्रवीतु) बोलें, कि (अयं अस्मि इति) यह मैं हूं ॥ ४ ॥ हे (जातवेदः) ज्ञानी ! (ते वीर्यं पश्याम) तेरा पराक्रम हम देखें । हे (नृ-चक्षः) मनुष्योंके मार्ग दर्शक ! (यातुधानान्) दुष्टोंको (नः) हमारा आदेश (प्र ब्रूहि) विशेष रूपसे कह दे । (त्वया) तुझसे (पुरस्तात्) पहिले (परितप्ताः) तपे हुए (ते सर्वे) वे सब (इदं ब्रुवाणाः) यह कहते हुए (उप आयन्तु) हमारे पास आजावें ॥ ५ ॥ हे (जातवेदः) ज्ञानी ! (आरभस्व) आरंभ कर (अस्माक-अर्थाय) हमारे प्रयोजनके लिये तू (जज्ञिषे) उत्पन्न हुआ है । हे अग्ने ! तू हमारा दूत बनकर यातुधानोंको विलाप करा ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तू [यातुधानान्] दुष्टोंको [उपबद्धान्] बांधे हुए अर्थात् बांधकर [इह आ वह] यहां लेआ । [अथ] और इन्द्र अपने वज्रसे [एषां शीर्षाणि] इनके मस्तक [वृश्चतु] काट डाले ॥ ७ ॥

इसका भावार्थ हम सबसे पीछे लिखेंगे क्योंकि इस सूक्तके कई शब्दोंके अर्थोंका विचार पहिले करना चाहिये । इस सूक्तके कई शब्द भ्रम उत्पन्न करनेवाले हैं, और जबतक इनका निश्चित ठीक अर्थ ध्यानमें न आयेगा, तब तक इस सूक्तका उपदेश समझमें नहीं आसकता । सबसे प्रथम "अग्नि" शब्द है इसका निश्चय करना चाहिये–

अग्नि कौन है ?

इस सूक्तमें अग्निपद से किसका ग्रहण करना चाहिये, इसका निश्चय करानेवाले ये शब्द इस सूक्तमें हैं-"जातवेद, परमेष्ठिन्, तनूवशिन्, नृचक्ष, वन्दित, दूतः, देवः, अग्निः।" इन शब्दोंका अर्थ देखकर अग्निका स्वरूप सबसे प्रथम हम देखेंगे-

१ जातवेद — [जातं वेत्ति] जो बनी हुई सृष्टिको ठीक ठीक जानता है। [ज्ञात-वेदः] जिसने ज्ञान प्राप्त किया है। अर्थात् ज्ञानी सृष्टिविद्या और आत्मविद्या का यथावत् जानने वाला।

२ परमेष्ठिन्—(परमे पदे स्थाता) परमपद में ठहरनेवाला अर्थात् समाधिकी अंतिम अवस्थाको जो प्राप्त है, आत्मानुभव जिसने प्राप्त किया है, तुर्या-चतुर्थ अवस्थाका अनुभव करनेवाला।

३ तनूवशिन्- (तनू-वशिन्) अपने शरीर और इन्द्रियोंको स्वाधीन करने वाला, इन्द्रिय संयम और मनोनिग्रह करनेवाला, आसनादि योगाभ्यासपे जिसने अपनी कायासिद्धि की है। यही मनुष्य "परमेष्ठिन्" होना संभव है।

४ नृचक्ष —" चक्षस् " शब्द स्पष्ट शब्दोंद्वारा उपदेश देनेका भाव बता रहा है। मनुष्योंको जो योग्य धर्म मार्गका उपदेश देता है।

पर पहुंचाने वाला यह दूत धर्मका उपदेशक ही है।

७ देवः—प्रकाशमान, तेजस्वी।

८ अग्निः— प्रकाश देकर अन्धकारका नाश करनेवाला, ज्ञानकी रोशनी बढाकर अज्ञानान्धकार का नाश करनेवाला। उष्णता (गर्मी) उत्पन्न करके हलचल करने वाला।

ये सब शब्द योग्य उपदेशक का ही वर्णन कर रहे हैं। इस प्रकार वेदमें "अग्नि" शब्द ज्ञानी उपदेशक ब्राह्मणका वाचक है। तथा 'इन्द्र' शब्द क्षत्रियका वाचक है।

ब्रह्म क्षत्रिय।

" ब्रह्म क्षत्रिय" शब्द ब्राह्मण और क्षत्रिय का बोध करता है। वेदमें ये दो शब्द इकट्ठे कई स्थानपर आगये हैं। यही भाव "अग्नि-इन्द्र" ये दो शब्द वेदमें कई स्थानोंपर व्यक्त कर रहे हैं। अग्नि शब्द ब्राह्मणका और इन्द्र शब्द क्षत्रियका वाचक है। अग्नि शब्दका ब्राह्मण अर्थ हमने देखा, अब इन्द्र शब्दका अर्थ देखेंगे—

इन्द्र कौन है ?

स्वयं इन्द्र शब्द क्षत्रिय वाचक है, क्योंकि इसका अर्थ ही शत्रु नाशक है—

१ इन्द्रः- (इन्+द्रः) शत्रुओंको छिन्न भिन्न करनेवाला।

२ बाहुमान्- बाहुवाला, भुजावाला, अर्थात् बाहुबलके लिये सुप्रसिद्ध। हरएक मनुष्य भुजावाला होता ही है, परन्तु क्षत्रियको ही "बाहुमान्" इसलिये कहा है, कि उसका कार्य

समान ही है। वास्तव में मलिन कपडे को ही धोकर स्वच्छ करना चाहिये, इसी तरह अधार्मिक वृत्तिके लोगों को ही धर्मोपदेश द्वारा सुधारना चाहिये, यही सच्चा धर्म प्रचार है, यह बतानेके लिये इस सूक्तमें धर्म प्रचार करने योग्य लोगोंका वर्णन निम्न लिखित शब्दोंसे किया है—"यातुधान, किमीदिन्, दस्यु, अत्रिन्।" अब इनका आशय देखिये

१ यातु—"यातु" भटकनेवाले का नाम है। जिसको घरदार कुछभी नहीं है और जो वन्य पशुके समान इधर उधर भटकता रहता है उसका नाम "यातु" है। भटकने का अर्थ बतानेवाला "या" धातु इसमें है।

२ यातुमान्— यातुमान्, यातुवान्, यातुमत्, शब्दका भाव *"यातुवाला" है अर्थात् जिसके पास बहुतसे यातु (भटकनेवाले)* लोग होते हैं। अर्थात् भटकने वालों के जमाव का मुखिया।

३ यातुमावान् — बहुतसे यातुमानों को अपने काबूमें रखनेवाला।

४ यातुधानः— यातुओंका धारण पोषण करनेवाला, अर्थात् भटकनेवालोंको अपने पास रखकर उनको पोषण करनेवाला। "यातु धान्य" भी इसी भावका वाचक है।

पाठकोंने जान लिया होगा, कि ये शब्द विशेष बातको व्यक्त कर रहे हैं। जिसको घरदार स्त्रीपुत्र आदि होते हैं, और जो कुटुंबमें रहता है, वह उतना उपद्रव देनेवाला नहीं होता. जितना कि जिसका घरदार कुछभी न हो, और जो भटकने वाला होता है। यह सदा भूखा रहता है, किसी प्रकारका मनका समाधान उसको नहीं होता, इसलिये हरएक प्रकारका उपद्रव देनेके लिये वह तैयार होता है, इसी कारण "यातु" शब्द "बुरी वृत्ति वाला" इस अर्थमें प्रवृत्त होता है। दुष्ट, डाकु, चोर, लुटेरे, बदमार आदि इसी शब्दके अर्थ आगे जाकर बने हैं। ये चोर डाकु जबतक अकेले अकेले रहते है, तब तक उनका नाम "यातु" है, ऐसे दोचार डाकुओंको अपने वशमें रखकर डाका डालनेवाला "यातु-मान्, यातु-वान्, यातुमत्" अर्थात् यातुवाला किंवा डाकुवाला कहा जाता है। पहिले की अपेक्षा इससे समाजको अधिक कष्ट पहुंचते हैं। इस प्रकारके छोटे डाकुओंके अनेक संघोंको अपने आधीन रखने वाला "यातु-मा-वान्' अर्थात् डाकुओंकी कई जमातोंको अपने आधीन रखनेवाला। यह पूर्वकी अपेक्षा अधिक कष्ट ग्रामों और प्रांतोंको भी पहुंचा सकता है। इसीके नाम "यातु धान यातु-धान्य' है। पाठक इनसे जान सकते हैं, कि ये वैदिक शब्द जो कि वेदमें कई स्थानोंमें आते हैं, हीन और दुष्ट लोगोंके वाचक हैं। अब और देखिये—

५ अत्रिन्— अत्री (अतति) सतत भटकता रहता है। यह शब्द भी पूर्व शब्द का ही भाव बताता है। इसका दूसरा भाव (अत्ति) खानेवाला, सदा अपने भोगके लिये दूसरोंका गला काटनेवाला। जो थोडेसे धनके लिये खून करते हैं, इसप्रकारके दुष्ट लोगोंका वाचक यह शब्द है।

६ किमीदिन्— (किं इदानीं) अब क्या खाय, इस प्रकार की वृत्तिवाले भूखे किंवा पेटके लिये ही दूसरोंका घात पात करनेवाले दुष्ट लोग।

७ दस्यु— (दस् उपक्षये) घातपात करनेवाले, दूसरोंका नाश करनेवाले हर प्रकारके दुष्ट लोग।

ये सब लोग समाजके सुखका नाश करते हैं, इनके कारण समाजके लोगोंको कष्ट होते हैं। ये ग्राममें आगये, तो ग्राममें चोरी, डकैती, खून, लूटमार होती है, स्त्री विषयक अत्याचार होते हैं, सज्जनोंको अनेक प्रकारके कष्ट होते हैं इसलिये इन लोगोंको धर्मोपदेश द्वारा सुधारना चाहिये, यह इस सूक्तका आदेश है। जो परदारसे हीन हैं, जो जगलों और वनों में रहते हैं, जो चोरी डकैती आदि दुष्ट कर्म करते हैं। उनको धर्मोपदेश द्वारा सुधारना चाहिये। अर्थात् जो नागरिक हैं, जो पहिलेसे ही धर्मके प्रेमी हैं उनमें धर्म की जागृति करनी योग्य है; परंतु जिनके पास धर्म की आवाज नहीं पहुंची और जिनका जीवन-क्रम ही धर्मबाह्य मार्गसे सदा चलता रहता है, उनका सुधार करके ही उनको उत्तम नागरिक बनाना चाहिये। धर्मोपदेशक यह अपना कार्य क्षेत्र देखें।

धर्मोपदेशक के गुण, शासन कार्य में निपुण क्षत्रिय के गुण, और जिन लोगोंमें धर्म प्रचारकी अत्यन्त आवश्यकता है उनके गुणकर्म हमने इस सूक्तके आधारसे देखे। अब इन तत्त्वार्थोंके प्रकाश में यह सूक्त देखना है—

दुष्टोंका सुधार।

प्रथम मंत्र—"हे धर्मोपदेशक! तुम्हारी प्रशंसा करनेवाले दुष्ट डकैतों को यहां ले आ, क्योंकि तू वेदना द्वारा करनेपर दस्युओंका नाशक होता है" ॥ १ ॥

इस पहिले मंत्रमें दो विधान हैं—

समझा दे, उन दुष्ट कर्मों से उनको वह निवृत्त करे, जब वे ठीक प्रकार जानेंगे कि चोरी आदि उनके व्यवसाय बुरे हैं और मानवोंकी रक्षा करनेवाला सत्य धर्म भिन्न है और वह सत्य धर्म इस धर्मोपदेशकसे प्राप्त हो सकता है, तब वे इसके पास श्रद्धा भक्तिसे आवेंगे, इसकी प्रशंसा करेंगे और इसके सामने सिर झुकायेंगे अर्थात् इनको प्रणाम करेंगे। जब उनमें इतनी श्रद्धाभक्ति बढेगी, तब उनका डाकूपनका नाश या हनन स्वयं हो ही जायगा। इसलिये मंत्र कहता है कि "धर्मोपदेशक दुष्ट मनुष्योंको अपने उपदेशद्वारा अपनी प्रशंसा करनेवाले बनाकर अर्थात् अपने अनुगामी बनाकर, अपने समाजमें ले आवे, और उनसे नमस्कार प्राप्त करके उनका घातक बने।"

"जिनसे नमस्कार प्राप्त करना उनकाही घात करना" प्रथम विचित्र सा प्रतीत होता है, परन्तु अधार्मिक दुष्ट मनुष्यों के सुधार करनेवालेसे ऐसाही बनता है। जब दुष्ट मनुष्य धार्मिक बन जाता है उस समय वह पहिले धर्मोपदेशक के सामने अपना सिर झुकाता है और सिर झुकाते ही दुष्ट मनुष्यके रूपसे मर कर धार्मिक नवजीवन प्राप्त करने द्वारा वह मानो नया ही मनुष्य बनता है। यदि एक डाकु धर्मोपदेश सुनकर धार्मिक बनगया, तो उसका सामाजिक दृष्टिसे सत्य अर्थ यही है कि एक डाकू मर गया और एक सच्चा धार्मिक मनुष्य नया पैदा हुआ। अब दूसरा मंत्र देखिये-

खाना चाहिये। ये उपदेशक सदा भ्रमणमें रहनेके कारण तथा जलवायुके सदा परिवर्तन होनेसे इनकी पाचक शक्तिमें बिगाड होना संभव है; अतः जितनी पाचक शक्ति होती है, उससे भी कम ही खाना इनके लिये योग्य है। इस कारण वेद कहता है, कि "उपदेशक तोलकर ही घी आदि पदार्थ खावें" कभी अधिक न खावें।

मंत्रमें दूसरी बात "दुष्टोंको रुलाने" की है। यदि उपदेशक प्रभाव शाली होगा, और यदि उसके उपदेशसे श्रोताओंको अपने दुराचारका पता लगा तथा उनके अंतःकरणमें धर्म भावना जागृत हो गई तो उनके रो पडनेमें तथा अपने पूर्व दुराचारमय जीवनके विषयमें पूर्ण पश्चाताप होनेमें कोई सन्देहही नहीं है। इस प्रकार द्वितीय मंत्रका भाव देखनेके पश्चात् अब तीसरा मंत्र देखिये—

दुष्टजीवनका पश्चाताप

तृतीय मंत्र- "दुष्ट लोग रो पडें, और हे धर्मोपदेशक! तेरे लिये यह हमारा दान है, क्षत्रिय भी इसका स्वीकार करे" ॥ ३ ॥

सच्चे धर्मोपदेशक के धर्मोपदेश सुनकर दुष्ट लोगोंको अपने दुराचारका पश्चाताप होवे और वे रो पडें। तथा जनता ऐसे धर्मोपदेशकोंको तथा उनके सहायक क्षत्रियोंको भी यथा शक्ति

ऐसा हो, कि सब दुष्ट दुराचारी मनुष्य अपना आचरण सुधारें और खुले दिलसे उपदेशकोंके पास आकर कहें कि " हम अब आपकी शरणमें आगये हैं।" यही धर्म प्रचारका साध्य है। धर्म प्रचारसे दुराचारी डाकु सुधर जाय और अच्छे धार्मिक बनें, वे अपने पूर्व दुराचारका पश्चात्ताप करें, तथा जब पूर्व दुराचारका उनको स्मरण आवे उस समय उनको रोना आवे। क्षत्रियके बल की अपेक्षा न करते हुए केवल ब्राह्मण ही अपनी धार्मिक और आत्मिक शक्तिसे यह कार्य करें। पिछेसे क्षत्रिय उनको मदत पहुंचावें। क्षत्रियके जोरसे जो धर्म प्रचार होता है, वह सत्य नहीं है, परन्तु ब्राह्मण अपने सात्विक वृत्तिसे जो हृदय पलटा देता है, वही सच्चा धर्मपरिवर्तन है। इस प्रकार चतुर्थ मंत्रका आशय देखनेके पश्चात् अब अगला मंत्र देखिये—

दुष्टोंकी पश्चात्तापसे शुद्धि।

पंचम मंत्र— " हे ज्ञानी उपदेशक ! हम तुम्हारा पराक्रम देखेंगे। हे मनुष्योंको सन्मार्ग बतलानेवाले! तुम दुष्टोंको हमारे धर्मका उपदेश करो। तुम्हारे प्रयत्नसे पश्चात्ताप को प्राप्त हुए सब दुष्ट लोग हमारे पास आवें और वैसाही कहें। " ॥ ५ ॥

पूर्वोक्त प्रकारका सच्चा धर्मोपदेशक जिस समय धर्मोपदेश के लिये चलने लगता है, उस समय उसका गौरव करते हुए लोग कहते हैं कि "हे उपदेशक! अब तू उपदेश करनेके लिये जा रहा है, हम देखेंगे कि तुम अपने परिशुद्ध सदुपदेशसे कितने लोगोंके हृदयमें पलटा उत्पन्न करते हो और कितनों को सत्य धर्मकी दीक्षा देते हो। इससे तुम्हारे पराक्रमका हमें पता लग जायगा। तुम जाओ, हम तुम्हारा गौरव करते हैं। सत्यधर्मका संदेश सब जनता तक पहुंचाओ। तेरे उपदेशकी ज्ञानाग्निसे तपे हुए और पश्चात्तापको प्राप्त हुए लोग हमारे अंदर आवें और कहें "कि हमने अब धर्मामृत पीया है। और अब हम आपके बने हैं।"

"तप्त, संतप्त, परितप्त" ये शब्द पश्चात्ताप के सूचक हैं। तप शब्द तपकर शुद्ध होनेका सूचक है। अग्नि तपाकर सोना, चांदी, तांबा आदि धातुओंको शुद्ध करता है अर्थात् उनके मलोंको दूर करता है। इसी प्रकार यहांका अग्नि-जो ज्ञानी धर्मोपदेशक है-वह अपनी ज्ञानाग्निसे सब दुष्टोंको तपाता है और अच्छी प्रकार उनके मलोंको दूर करता है। शुद्धिकी यही विधि है। भोगके जीवनको छोडकर तपके जीवनमें आना ही धार्मिक बनना है। इस दृष्टिसे इस मंत्रका "परि-तप्त" शब्द बडे भावका सूचक है। अब छठे मंत्रका भावार्थ देखिये—

धर्मका दूत।

षष्ठ मंत्र-" हे ज्ञानी पुरुष ! अपना कार्य आरंभ कर। हमारे कार्य के लिये ही तुम्हें आगे किया है। हे उपदेशक ! तू हमारा धार्मिक संदेश पहुंचाने वाला दूत बन कर दुष्टोंको पश्चात्तापसे रुला दे " ॥ ६ ॥

धर्म प्रचारके लिये बाहर जानेवाले उपदेशकको लोग कहते हैं कि- "अब तू अपना धर्म प्रचारका कार्य आरंभ करदो। बिना डर देशदेशांतरमें जा और वहां सत्यधर्मका प्रचार कर। यही हमारा कार्य है और इसी कार्यके लिये तुम्हें आगे भेजा जाता है, अथवा आगे रखा जाता है। हमारा धार्मिक संदेश जगत्में फैलाना है, इस संदेशको स्थान स्थानमें पहुंचानेवाला दूतही तू है। अब जा और धार्मिक संदेशको चारों दिशाओंमें फैला दो और इस समय तक जो लोग अधार्मिक वृत्तिमें रहते हैं, उनको अपने सदुपदेशद्वारा शुद्ध करो और उनको अपने पूर्व दुराचारका पूर्ण पश्चात्ताप होने दो। उनके दिलोंको ऐसा पलटा दो कि जिससे वे अपने पूर्वाचरणका स्मरण करके रोने लगें।" इस प्रकार जगत्का सुधार करनेके लिये धर्मोपदेशकोंको भेजा जाता है।

डाकुओंको दण्ड।

इतना धर्मोपदेश होकर भी जो सुधरेंगे नहीं और अपना दुराचार जारी रखेंगे अथवा पूर्वोक्त प्रकारके श्रेष्ठ धर्मोपदेशकोंके पराकाष्ठाके प्रयत्न करनेपर भी जो अपना दुष्ट आचरण नहीं छोडते और जनताको चोरी डकैती आदिसे अत्यंत कष्ट देते ही रहेंगे, उनको योग्य दण्ड देना ब्राह्मणका कार्य नहीं, वह कार्य क्षत्रियका है यह आशय अगले मंत्रमें कहा है—

सप्तम मंत्र- " हे धर्मोपदेशक ! तुम्हारे प्रयत्न करनेपर भी दुष्ट डाकु आदि अपने दुराचार छोडते नहीं उनको पीछे कर यहां ला और पश्चात् क्षत्रिय उनके सिर तलवारसे काट दे " ॥ ७ ॥

श्रेष्ठ धर्मोपदेशक अपना धर्मोपदेशका प्रयत्न करे और

अन्योंको भी यह उपदेश मिल सकता है, कि हम भी धार्मिक बननेसे बच सकते हैं, नहीं तो हमारी भी यही अवस्था बनेगी ।

ब्राह्मण और क्षत्रियोंके प्रयत्नका प्रमाण ।

इस सूक्तमें ब्राह्मणके प्रयत्न के लिये छः मन्त्र हैं और एकही मन्त्रमें क्षत्रियका कठोर दण्ड आगे करनेको सूचित किया है । इससे स्पष्ट है कि कमसे कम छः गुणा प्रयत्न ब्राह्मण अपने सदुपदेशसे करें, इतने प्रयत्न करनेपरभी यदि वे न सुधरे, कमसे कम छः वार प्रयत्न करनेपर भी न सुधरे छः वार अवसर देनेपर भी जो लोग दुष्टता नहीं छोडते, उनपर ही क्षत्रियका वज्र प्रहार होना योग्य है । क्योंकि जिनकी जन्मसे ही दुष्टता करने का अभ्यास होगा वे एक वारके उपदेशसे पलट जायगे अथवा सुधरेंगे यह कठिन अथवा अशक्य है । इसलिये भिन्न उपायोंसे उनको अधिक अवसर देने चाहिये । इतना करनेपर भी जो नहीं सुधरते उनको या तो बंधन में डालना या शिरच्छेद करना चाहिये ।

ब्राह्मण भी हनन करता है और क्षत्रियभी करता है परन्तु दोनोंके हननों में बडा भारी भेद है । पहिले मन्त्र में ब्राह्मण की रीति बताई है और सप्तम मन्त्रमें क्षत्रिय की पद्धति बतादी है । क्षत्रिय की रीति यही है कि तलवार लेकर दुष्टका गला काट डालना, अथवा दुष्टोंको कारागृहमें बान्धकर रखना । ब्राह्मण की रीति इससे भिन्न है, ब्राह्मण उपदेश करता है, उपदेश द्वारा श्रोताओंके दिलोंको पलटा देता है, उनको अनुगामी बना देता है, उनके मनकी दुष्टता का नाश करता है। दोनोंका उद्देश्य दुष्टोंकी संख्या कम करने का ही होता है, परन्तु ब्राह्मण दुष्टोंको सुधारनेका प्रयत्न करता है, हृदय शुद्ध बनाता है और दुष्टोंकी संख्या घटाता है । और क्षत्रिय उनको कतल करके उनकी संख्या घटाता है । इसी लिये ब्राह्मण के प्रयत्न श्रेष्ठ और क्षत्रियके दूसरे दर्जेके है ।

वेदमें जहां "हनन, दहन, परिताप, विलाप" आदि शब्द आते हैं वहां सर्वत्र एकसाहीं अर्थ लेना उचित नहीं । वे शब्द ब्राह्मण के लिये प्रयुक्त हुए हैं या क्षत्रिय के लिये हुए हैं यह देखना चाहिये । हनन से शत्रुकी संख्या घटती है, ब्राह्मण, क्षत्रिय दोनों अपने अपने शस्त्रसे हनन करते हैं, परन्तु ऊपर बताया ही है, कि ब्राह्मण विचार परिवर्तन द्वारा शत्रुका नाश करता है और क्षत्रिय शिरच्छेदादि द्वारा शत्रुको घटाता है । इसी प्रकार ' विलाप " भी दो प्रकार का है । क्षत्रिय शत्रुकी कतल करता है उस समय भी शत्रुके लोग विलाप करते हैं और रोते पीटते ही हैं । उसी प्रकार ब्राह्मण धर्मोपदेश द्वारा जिस समय श्रोताओंके हृदयमें भक्तिभाव और धर्मप्रेम उत्पन्न करने द्वारा कृत दुराचारका पश्चात्ताप उत्पन्न करता है उस समय भी वे लोग रोते हैं और आंसू बहाते हैं । इन दोनों आंसू बहाने में बडा भारी भेद है । जो हृदय परिवर्तन ब्राह्मण कर सकता है, वह क्षत्रिय कदापि नहीं कर सकता । यही बात "परिताप, सन्ताप ' आदिके विषयमें समझनी चाहिये ।

इस सूक्तका अर्थ करनेवाले विद्वानोंने इस ब्रह्मक्षत्रिय प्रणालीके भेदको न समझने के कारण इन शब्दोंके अर्थोंका बडा अनर्थ किया है । इसलिये पाठक इस भेदको पहिले समझें और पश्चात् मन्त्रोंके उपदेश जाननेका यत्न करें । यह बात एकवार ठीक प्रकार समझमें आगई, तो मन्त्रोंका आशय समझनेमें कोई कठिनता नहीं होती, परन्तु ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके क्रमशः कोमल और तीक्ष्ण मार्गोंका भेद यदि ठीक प्रकार समझमें नहीं आया, तो अर्थका अनर्थ प्रतीत होगा । इसलिये दुष्टोंका संख्या ब्राह्मण किस प्रकार घटाता है और क्षत्रिय किस प्रकार घटाता है, इसी प्रकार ये दोनों शत्रुओंको किस रीतिसे रुलाते हैं, तपाते हैं और जलाते हैं, यह पाठक अपने विचार से और यहां बताये मार्गसे ठीक समझें और ऐसे सूक्तोंका तात्पर्य जानें ।

(८)

(ऋषिः-चातनः । देवता—अग्निः, बृहस्पतिः)

इदं हविर्यातुधानान् नदी फेनमिवा वहत् । य इदं स्त्री पुमानकरिह स स्तुवतां जनः ॥१॥
अयं स्तुवान आगमदिमं स्म प्रति हर्यत । बृहस्पते वशे लब्ध्वाग्नीषोमा वि विध्यतम् ॥२॥
यातुधानस्य सोमप जहि प्रजां नयस्व च । नि स्तुवानस्य पातय परमक्ष्युतावरम् ॥३॥

यत्रैषामग्ने जनिमानि वेत्थ गुहा सतामत्रिणां जातवेदः ।
तांस्त्वं ब्रह्मणा वावृधानो जह्येषां शततर्हमग्ने ॥४॥

अर्थ— (नदी फेनं इव) नदी फेन को जैसी लाती है उस प्रकार (इदं हविः) यह दान (यातुधानान् आवहतु) दुष्टोंको यहां लावे। (यः पुमान्) जो पुरुष अथवा जो स्त्री (इदं अकः) यह पाप करती रही है। (सः जनः) वह मनुष्य तेरी (स्तुवतां) प्रशंसा करे ॥ १ ॥ (स्तुवानः अयं) प्रशंसा करनेवाला यह डाकु (आगमत्) आया है, (इमं) इसका (स्म प्रति हर्यत) अवश्य स्वागत करो। हे (बृहस्पते) ज्ञानी उपदेशक ! इस को (वशे लब्ध्वा) वशमें रखकर, हे (अग्नी-षोमौ) अग्नि और सोम ! (वि विध्यतं) इसका विशेष निरीक्षण करो ॥ २ ॥ हे (सोमप) सोमपान करनेवाले ! (यातुधानस्य प्रजां) दुष्टकी सन्तान के प्रति (जहि) जा, पहुंच और (च नयस्व) उन्हें लेजा अर्थात् सन्मार्गसे चला। तथा (स्तुवानस्य) प्रशंसा करनेवालेका (परं उत अवरं) श्रेष्ठ और कनिष्ठ (अक्षि) आंखें (नि पातय) नीचे कर दो ॥ ३ ॥ हे (अग्ने जातवेदः) तेजस्वी ज्ञानी पुरुष ! (यत्र गुहा) जहां कहीं गुफामें (एषां) इन (अत्रिणां सतां) भक्षण करनेवाले सज्जनों के (जनिमानि) कुलों और संतानों को (वेत्थ) तू जानता है (तान् ब्रह्मणा वावृधानः) उनको ज्ञानसे बढाता हुआ (एषां शततर्हं जहि) इनके सैकडों कष्टोंका नाश कर ॥ ४ ॥

यह सूक्त भी पूर्वसूक्त का ही उपदेश विशेष रीतिसे बताता है। दुष्ट लोगोंको किस रीतिसे सुधारना योग्य है इसका विचार इस सूक्तमें देखने योग्य है। इस सूक्तमें ब्राह्मण उपदेशक का एक और विशेषण आगया है वह "बृहस्पतिः" है। इसका अर्थ ज्ञानपति प्रसिद्ध है, बृहस्पति देवोंका गुरु ब्राह्मण ही है; इस-लिये इस विषयमें शंका ही नहीं है। "सोम" शब्द इसीका वाचक इस सूक्त में है। "सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा।" ब्राह्मणोंका मुखिया सोम है, उसी प्रकार बृहस्पति भी श्रेष्ठ ज्ञानी ब्राह्मण ही है। पाठक इन शब्दोंको पूर्वोक्त सूक्तके ब्राह्मण वाचक शब्दोंके साथ मिलाकर देखें और सबका मिलकर मनन करें, तो उनको पता लग जायगा कि धर्मोपदेशक ब्राह्मण किन गुणोंसे युक्त होना चाहिये। अब क्रमशः मन्त्रोंका आशय देखिये—

हों या पुरुष हों, जो कोई उनमें पापाचरण करनेवाला हो, वह उपदेश सुनते ही धर्म भावसे प्रेरित होकर तथा धर्ममें आनेके लिये उत्सुक होकर, धर्मकी प्रशंसा करे और अधर्माचरण की निंदा करे। पाठक ध्यान रखें, कि हृदयके भाव परिवर्तित होनेका यह पहिला लक्षण है। धर्ममें प्रविष्ट होनेके पश्चात् धर्म-संघके लोग उससे किस प्रकार आचरण करें इस विषयका उप-देश द्वितीय मंत्रमें देखिये—

नवप्रविष्टका आदर।

द्वितीय मंत्र–"यह स्तुति करता हुआ आगया है, इसका स्वागत करो। हे ज्ञानी पुरुष ! इसको अपने वशमें रख कर, ब्राह्मण और उनका मुखिया ये उस पर ध्यान रखें ॥ २ ॥"

वर्चःप्राप्ति-सूक्त ।

यह सूक्त "वर्चस्य-गण" का प्रथम सूक्त है। वर्चस्यगणके सूक्तोंमें "तेज संवर्धन, बलसंवर्धन, धनकी प्राप्ति, शरीरकी पुष्टि, समाज या राष्ट्रमें सम्मानप्राप्ति" आदि अनेक विषय होते हैं। वर्चस्यगणमें कई सूक्त हैं, उनका निर्देश आगे उसी उसी स्थानपर किया जायगा —

(९)

[ऋषिः— अथर्वा। देवता-वस्वादयो नानादेवताः]

अस्मिन्वसु वसवो धारयन्त्विन्द्रः पूषा वरुणो मित्रो अग्निः।
इममादित्या उत विश्वे च देवा उत्तरस्मिन् ज्योतिषि धारयन्तु ॥ १ ॥
अस्य देवाः प्रदिशि ज्योतिरस्तु सूर्यो अग्निरुत वा हिरण्यम्।
सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ २ ॥
येनेन्द्राय समभरः पयांस्युत्तमेन ब्रह्मणा जातवेदः।
तेन त्वमग्न इह वर्धयेमं सजातानां श्रैष्ठ्य आ धेह्येनम् ॥ ३ ॥
एषां यज्ञमुत वर्चो ददेऽहं रायस्पोषमुत चित्तान्यग्ने।
सपत्ना अस्मदधरे भवन्तूत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥ ४ ॥

अर्थ — (अस्मिन्) इस पुरुषमें (वसवः) वसु देवता तथा इन्द्र, पूषा, वरुण, मित्र, अग्नि ये देव (वसु) धनको (धारयन्तु) धारण करें। आदित्य और विश्वे देव (इमं) इस पुरुषको (उत्तरस्मिन् ज्योतिषि) अति उत्तम तेजमें धारण करें ॥ १ ॥ हे (देवाः) देवो ! (अस्य) इस पुरुषके (प्रदिशि) आदेशमें ज्योति, सूर्य, अग्नि और हिरण्य (अस्तु) होवे। (सपत्नाः) शत्रु (अस्मत् अधरे) हमारे नीचे (भवन्तु) होवें और (इमं) इसको (उत्तमं नाकं) उत्तम सुखमें (अधि रोहय) तुम चढाओ ॥ २ ॥ हे (जातवेदः) ज्ञानी उपदेशक ! (येन उत्तमेन ब्रह्मणा) जिस उत्तम ज्ञानसे इन्द्रके लिये (पयांसि समभरः) दुग्धादि रस दिये जाते हैं (तेन) उस उत्तम ज्ञानसे, हे (अग्ने) तेजस्वी पुरुष ! (इमं) इसको (इह) यहां (वर्धय) बढाओ और (एनं) इसको (सजातानां श्रैष्ठ्ये) अपनी जातिमें श्रेष्ठ स्थानमें (आ धेहि) स्थापित कर ॥ ३ ॥ हे (अग्ने) तेजस्वी पुरुष ! (एषां) इनके यश, (वर्चः) तेज, (रायः पोषं) धनकी वृद्धि और चित्त आदिको (अहं आ ददे) मैं प्राप्त करता हूं। (सपत्ना) शत्रु हमारे नीचेके स्थानमें रहें और (इम) इस मनुष्यको उत्तम सुखमें (अधि रोहय) पहुंचा दो ॥ ४ ॥

व्यक्तिमें देवतांश	समाजमें देवता	विश्वमें देवता
निवासक शक्तियां	समाजस्थितिकी आठ शक्तियां	वसवः (अष्ट)
स्थूलशरीर	मातृभूमि	पृथ्वी
रक्तादि धातु	जल नदी नद आदि	आप्
शरीरका तेज	अग्नि विद्युत् आदि	तेजः ज्योतिः
प्राण	शुद्ध वायु	वायुः
कान	स्थान	आकाशः
अन्नजल	औषधि, वनस्पति धान्यादि	सोमः
प्रकाश	प्रकाश	अहः
इन्द्रिय गण	साधारण जनता	नक्षत्राणि, देवाः
ज्ञान	ब्राह्मण, ज्ञानी मनुष्य	ब्रह्मन्
क्षात्रतेज	क्षत्रिय वीर	इन्द्रः
पुष्टि	राष्ट्रपोषक अधिकारी	पूषा
शांतभाव	जलाधिकारी	वरुणः
मित्रभाव	मित्र जन	मित्रः
वाणी	ज्ञानी उपदेशक	अग्निः
स्वातंत्र्य	स्वतंत्र विचारके लोग	आदित्याः
नेत्र, दर्शनशक्ति	दार्शनिक विद्वान्	सूर्यः
सब दिव्य गुण	सब विद्वान्, कारीगर	विश्वे देवाः
तेज	धन	हिरण्यं
दुष्ट विचार	शत्रु	सपत्नाः
आनंद	स्वाधीनता	नाक (स्वर्ग)
तेजो	,,	उत्तमं ज्योतिः
मध्य	,,	मध्यमं ,,
		अधमं ,,

"[illegible]" पुस्तकमें अंशावतारका वैदिक भाव वर्णन किया है वह इस समय अवश्य पढिये। (स्वाध्याय मंडलद्वारा प्रकाशित। मूल्य १॥)

इस सूक्तमें प्रारंभमें ही "अस्मिन्" पद है इसका अर्थ "इस मनुष्यमें" ऐसा है। प्रश्न होता है कि किस मनुष्यके उद्देश्यसे यह शब्द यहां आया है? पूर्व सूक्तके साथ इस सूक्तका संबंध देखनेसे स्पष्टतापूर्वक पता लगता है कि इस शब्दका संबंध पूर्व सूक्तमें वर्णित "नवप्रविष्ट शुद्ध हुए" मनुष्यके साथ ही है। जो मनुष्य मनकी वृत्ति बदलनेके कारण अपने धर्ममें प्रविष्ट हुआ है, उसकी सबसे अधिक उन्नति करनेकी इच्छा करना प्रत्येक मनुष्यका आवश्यक कर्तव्य ही है। अपने धर्ममें जो श्रेष्ठसे श्रेष्ठ प्राप्तव्य है, वह उसको शीघ्र प्राप्त हो, इस विषयकी इच्छा मनमें धारण करनी चाहिये, अर्थात् उसको विशेष तेज प्राप्त हो ऐसी इच्छा धरना चाहिये। यद्यपि इस सूक्तका पूर्वापर संबंध देखनेसे यह सूक्त नव प्रविष्टकी तेजवृद्धिके लिये है ऐसा प्रतीत होता है; तथापि हरएक मनुष्यकी तेज वृद्धिके सामान्य निर्देश भी इसमें हैं और इस दृष्टिसे यह सामान्य सूक्त सब मनुष्योंके उपयोगी भी है। पाठक इसका दोनों प्रकारसे विचार करें।

अब यहां पूर्वोक्त मंत्रोंका भावार्थ दिया जाता है और यह भावार्थ देनेके समय व्यक्तिमें जो देवतांश है उनको लेकरही दिया जाता है। पाठक इसकी तुलना पूर्वोक्त कोष्टकसे करें-

उन्नतिका मूलमन्त्र।

प्रथम मंत्र "इस मनुष्यमें जो निवासक शक्तियां हैं तथा क्षात्र बल, पुष्टि, शांति, मित्रता तथा वाणी आदिकी शक्तियां हैं, ये सब शक्तियां इसमें धन्यता स्थापित करें। इसके स्वतंत्र विचार और इसकी सब इंद्रियां इसको उत्तम तेजमें धारण करें ॥ १ ॥"

अंदर समता और शांति रखना, (५) मनमें मित्रभाव बढाना और हिंसक भाव कम करना, तथा (६) वाणीकी शक्ति विकसित करना। इन छः शक्तियोंके बढ जानेसे मनुष्य हरएक प्रकारका धन प्राप्त कर सकता है और उससे अपने आपको धन्य बना सकता है। यहां का " वसु " शब्द धनवाचक है परंतु यह धन केवल पैसाही नहीं, परंतु यह वह धन है, कि जिससे मनुष्य अपने आपको श्रेष्ठ पुरुषोंमें धन्य मान सकता है। इस वसुमें सब निवासक शक्तियोंके विकाससे प्राप्त होनेवाली धन्यता आ जाती है। (१) " निवासक शक्ति, (२) क्षात्रतेज, (३) पुष्टि, (४) समता, (५) मित्रभाव, (६) वक्तृत्व," इन छः गुणोंकी वृद्धि करनेकी सूचना इस प्रकार प्रथम मंत्रके प्रथमार्धमें दी है और दूसरे अर्धमें कहा है कि (७) इसके स्वतंत्र विचार और (८) इसकी इंद्रिय शक्तियां इसको उत्तमोत्तम तेजस्वी स्थानमें पहुंचायें। मनुष्यके स्वतन्त्र विचारही मनुष्यको उठाते या गिराते हैं, उसी प्रकार इंद्रिया स्वाधीन रहीं तो ही वह संयमी मनुष्य श्रेष्ठ बनता है अन्यथा इंद्रियोंके आधीन बनकर दुर्व्यसनी बना हुआ मनुष्य प्रतिदिन हीन होता जाता है। मनुष्यकी निःसंदेह उन्नति करनेका यह अष्टविध साधन प्रथम मंत्रने दिया है। वह हरएक मनुष्यको देखने-योग्य है। अब दूसरा मंत्र देखिये-

विजयके लिये संयम।

द्वितीय मंत्र-" हे देवो! इस मनुष्यकी आज्ञामें तेज, नेत्र, वाणी और धन रहे। हमारे शत्रु नीचे हो जांय और इसको सुखकी उत्तम अवस्था प्राप्त हो॥ २॥ "

इस मंत्रमें " (अस्य प्रदिशि सूर्यः अस्तु) इसकी आज्ञामें सूर्य रहे " यह वाक्य है। पाठक जान सकते हैं कि किसी भी मनुष्यकी आज्ञामें सूर्य रह ही नहीं सकता, क्यों कि वह मनुष्यकी शक्तिसे बाहर है, परन्तु सूर्यका अंश जो शरीरमें नेत्र स्थानमें रहता है और जिसको नेत्र इन्द्रिय कहते हैं वह तो संयमी पुरुषके आधीन रह सकता है। इससे पूर्व दृष्टिकी बात सिद्ध होती है कि व्यक्तिके विषयमें विचार करनेके समय देवताओंके शरीरस्थानीय अंशही लेने चाहिये जैसा कि पहले मंत्रमें किया है और इस मंत्रमें भी करना है।

तात्पर्य-मनुष्य इन्द्रिय-संयम और मनोनिग्रह करके अपनी शक्तियोंको अपने आधीन रखे। अपनी इन्द्रियोंको अपने आधीन रखना आत्मविजय प्राप्त करना है। इस प्रकारका आत्मविजयी मनुष्यही शत्रुओंको दबा सकता और उत्तम सुख प्राप्त कर सकता है। यदि जगत्में विजय पाना है, शत्रुओंको दबाना है, तथा उत्तम सुख कमाना है, तो अपनी शक्तियोंका सबसे प्रथम स्वाधीन करना चाहिये, यह महत्त्वपूर्ण उपदेश यहां मिलता है। अब तृतीय मंत्र देखिये-

ज्ञानसे जातिमें श्रेष्ठताकी प्राप्ति।

तृतीय मंत्र-" जिस उत्तम ज्ञानसे क्षत्रियको उत्तमोत्तम रस प्राप्त होते हैं, हे धर्मोपदेशक! उसी उत्तम ज्ञानसे यहां इस मनुष्यकी वृद्धि कर और अपनी जातिमें इसे श्रेष्ठता प्राप्त हो॥ ३॥

क्षत्रियको, इन्द्रको अथवा राजाको जिस ज्ञानसे उत्तम भोग प्राप्त होते हैं और जिस ज्ञानसे वह सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है, वह ज्ञान इस मनुष्यको प्राप्त हो और यह मनुष्य भी वैसाही अपनी जातिमें अथवा अपने राष्ट्रमें श्रेष्ठ बने। राष्ट्रके हरएक पुरुषको श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करनेके सब साधन खुले रहने चाहियें। यह मनुष्य नूतन प्रविष्ट हो वा उसी जातिमें उत्पन्न हुआ हो। तथा हरएक मनुष्यमें यह महत्वाकांक्षा होनी चाहिये कि मैं भी उस ज्ञानको प्राप्त करके वैसाही श्रेष्ठ बनूंगा, मैं अपनी जातिका नेता बनूंगा और अपने देशमें श्रेष्ठता प्राप्त करूंगा। यह मंत्रका आशय हरएकको नित्य स्मरणमें रखना उचित है। अब अगला मंत्र देखिये-

असत्यभाषणादि पापोंसे छुटकारा।

(१०)

(ऋषिः-अथर्वा। देवताः १ असुरः, २-४ वरुणः।)

अयं देवानामसुरो वि राजति वशा हि सत्या वरुणस्य राज्ञः।
ततस्परि ब्रह्मणा शाशदान उग्रस्य मन्योरुदिमं नयामि ॥ १ ॥
नमस्ते राजन्वरुणास्तु मन्यवे विश्वं ह्युग्र निचिकेषि द्रुग्धम्।
सहस्रमन्यान्प्र सुवामि साकं शतं जीवाति शरदस्तवायम् ॥ २ ॥
यदुवक्थानृतं जिह्वया वृजिनं बहु। राज्ञस्त्वा सत्यधर्मणो मुञ्चामि वरुणादहम् ॥ ३ ॥
मुञ्चामि त्वा वैश्वानरादर्णवान्महतस्परि। सजातानुग्रेहा वद ब्रह्म चाप चिकीहि नः ॥ ४ ॥

अर्थ- (अयं) यह (देवानां असुरः) देवोंको भी जीवन देनेवाला ईश्वर (वि राजति) प्रकाशता है। (हि) क्योंकि (राज्ञः वरुणस्य) राजा वरुण देव अर्थात् ईश्वर की (वशा) इच्छा (सत्या) सत्य है। (ततः परि) इतना होनेपर भी (ब्रह्मणा) ज्ञानसे (शाशदानः) तीक्ष्ण बना हुआ मैं (उग्रस्य मन्योः) प्रचंड ईश्वरके क्रोधसे (इमं) इस मनुष्यको (उत् नयामि) ऊपर उठाता हूं ॥ १ ॥ हे (वरुण राजन्) ईश्वर! (ते मन्यवे) तेरे क्रोधको (नमः अस्तु) नमस्कार होवे। हे (उग्र) प्रचंड ईश्वर! तू (विश्वं द्रुग्धं) सब द्रोहादि पापोंको (निचिकेषि) ठीक प्रकार जानता है। (सहस्रं अन्यान्) हजारों अन्योंको (साकं) साथ साथ मैं (प्रसुवामि) प्रेरणा करता हूं। (अयं) यह मनुष्य (तव) तेरा बनकर ही (शतं शरदः) सौ वर्ष (जीवाति) जीता रह सकता है ॥ २ ॥ हे मनुष्य! (यत्) जो (अनृतं वृजिनं) असत्य और पाप वचन (जिह्वया) जिह्वासे (बहु उवक्थ) बहुतसा तू बोला है, उससे तथा (सत्यधर्मा) सत्य न्यायी (राज्ञः वरुणात्) राजा वरुण देव ईश्वरसे (अहं) मैं (त्वा) तुझको (मुञ्चामि) छुडाता हूं ॥ ३ ॥ हे मनुष्य! त्वा तुझको (महतः वैश्वानरात् अर्णवात्) बडे समुद्रके समान गंभीर विश्वनायक देवसे (परि मुञ्चामि) छुडाता हूं। हे (उग्र) वीर! (इह) यहां (सजातान्) अपनी जातिवालोंको (आ वद) तू कह दे और (नः) हमारा (ब्रह्म) ज्ञान (अप चिकीहि) तू जान ॥ ४ ॥

पापसे छुटकारा पानेका मार्ग।

यद्यपि यह सूक्त अति सरल है तथापि पाठकोंके विशेष सरल बोधके लिये यहां थोडासा स्पष्टीकरण किया जाता है।

इस सूक्तमें पापसे छुटकारा पानेका जो मार्ग बताया है वह निम्नलिखित है—

एक शासक ईश्वर।

(१) " देवानां असुरो विराजति "-सूर्यचंद्रादि देवोंको विविध शक्ति देनेवाला एक प्रभु ईश्वरही सब जगत्का परम शासक है। इससे अधिक शक्तिशाली दूसरा कोई नहीं है। (मंत्र १)

(२) " राज्ञो वरुणस्य वशा हि सत्या "-उस प्रभु ईश्वरका सत्य शासन है। उसी की इच्छा सर्वोपरि है। उसके अपूर्व शासनका कोई उल्लंघन कर नहीं सकता। (मंत्र १)

(३) " विश्वं हयुग्र निचिकेषि दुग्धम् "-हे प्रभु ईश्वर! तू हम सबके पापोंको यथावत् जानता है। अर्थात् कोई मनुष्य अपने पाप उससे छिपा नहीं सकता। क्योंकि वह सर्वज्ञ है इसलिये हम सबके बुरे भले कर्म वह यथावत् उसी समय जानता है। (मंत्र २)

ईश्वरको सर्वोपरि मानना, सबसे सामर्थ्यशाली वह है यह स्मरण रखना और उससे छिपाकर कोई मनुष्य कुछ कर नहीं सकता, यह निश्चित रीतिसे समझना, पापसे बचनेके लिये आवश्यक है। पापसे बचानेवाले ये तीन महत्त्वपूर्ण विश्वास इस सूक्तमें कहे हैं, पाठक इनका मनन करें और इनको अपने अंदर स्थिर करें। येही तीन भाव मनुष्यका पापसे बचाव कर सकते हैं।

ज्ञान और भक्ति।

मनुष्यको पापसे बचानेवाले ज्ञान और भक्ति ये दो ही हैं। इनका वर्णन इस सूक्तमें निम्नलिखित रीतिसे किया है—

(१) " ब्रह्मणा शाशदानः। " ज्ञानसे तीक्ष्ण बना हुआ मनुष्य पापसे बच जाता है और दूसरोंको भी बचाता है। सृष्टिके तथा आत्माके यथार्थ विज्ञानको " ब्रह्म " कहते हैं। यह ब्रह्म अर्थात् सृष्टिविद्या और आत्मविद्याका उत्तम ज्ञान मनुष्यको तीक्ष्ण बनाता है। अर्थात् तेज बनाता है। जिस प्रकार तेज शस्त्र शत्रुका नाश करता है उसी प्रकार ज्ञानका तेज शस्त्र भी अज्ञान पाप आदि शत्रुओंका नाश करता है। मनुष्यकी सच्ची उन्नतिका यही साधन है। (मंत्र १)

(२) " नमस्ते राजन् वरुणास्तु मन्यवे। "— हे ईश्वर! तेरे क्रोधके सामने हम नमन करते हैं, तेरे शासनके सामने हम अपना सिर झुकाते हैं। अर्थात् हम तेरी शरणमें आकर रहते हैं, हम अपने आपको तेरी इच्छामें समर्पित करते हैं। तू ही हमारा तारनेवाला है। तेरे विना हम किसी अन्यको शरण जानेयोग्य समझते नहीं। (मंत्र २)

(३) " शतं जीवाति शरदस्तवायम्। "-सौ वर्ष जीवित रहेगा जो तेरा बनेगा। जो परमेश्वरका भक्त बनकर रहेगा उसका नाश कौन कर सकता है? (मंत्र २)

पाठक इन तीन मंत्रभागोंमें ज्ञान और ईशभक्तिसे पापमोचनकी संभावना देख सकते हैं। सृष्टिविद्याके नियमोंको जानकर तदनुकूल आचरण करना, आत्मविद्याको जानकर परमात्माको सार्वभौम सत्ताधारी मानना, भक्तिसे ईश्वरके सन्मुख नम्र बनना और ईश्वरका भक्त बनकर आनन्दसे उसका होकर रहना यही पापमोचनका सीधा और निश्चित मार्ग है। पाठक इस सूक्तमें यह मार्ग देखें। इस सूक्तमें जिस मार्गसे पापमोचनकी संभावना कही है वह यही मार्ग है और यही निश्चित और सीधा मार्ग है।

प्रायश्चित्त।

पापसे बचनेके लिये प्रायश्चित भी यहां कहा है और वह यहां देखनेयोग्य है—

(१) " ब्रह्म अपचिकीहि। "-पूर्वोक्त ज्ञान जानकर अपना उत्तम ज्ञान प्राप्त करना, तथा संक्षेपसे जो नियम ऊपर बताये हैं उनको जानना यह उन्नतिका निश्चित साधन है। जब इस ज्ञानसे अपने अवगुणोंका पता लगेगा, अपने दुराचारका ज्ञान होगा तब पश्चात्तापसे शुद्धि करनेका मार्ग है, वह इस प्रकार है-(मंत्र ४)

(२) " सजातानुग्रेदा वद। " — हे वीर! तू अपनी जातिके पुरुषोंके सामने अपने सब अपराध कह दे। यही प्रायश्चित है। अपनी जातिके स्त्री पुरुषोंके सम्मुख अपने अपराधोंको न छिपाते हुए कहना, यह बडा भारी प्रायश्चित है और इससे मनुष्यके मनकी शुद्धि होती है। (मंत्र ४)

ज्ञान प्राप्त करनेके पश्चात् या जिस समय पश्चात्ताप हो उस समय अपने सब अपराध अपनी जातिके सम्मुख कहना बडा धैर्यका तथा मनकी पवित्रताका ही कार्य है। हरएक मनुष्य इस प्रकार प्रायश्चित्त नहीं कर सकता। प्रायः मनुष्य अपने अपराधोंको छिपानेका ही यत्न करते हैं परंतु जो लोग अपने दोषोंको जनताके सम्मुख कह देते हैं वे शुद्ध बनकर शीघ्रही बडे महात्मा बन जाते हैं।

इस सूक्तमें "वरुण" आदि शब्दों द्वारा परमात्माका वर्णन हुआ है, " मुञ्चामि " आदि शब्दोंसे पापियोंको पापसे

छुडानेवाला महोपदेशक का वर्णन है और "इमं" आदि शब्दोंसे पापी मनुष्योंका भी वर्णन हुआ है। धर्मोपदेशक पापियोंको पापसे बचानेका उपदेश परमेश्वरभक्तिका मार्ग बताकर कर रहा है, यह बात इस सूक्तके शब्दोंमें स्पष्ट होती है। अर्थात् धर्मोपदेशक इसी मार्गसे स्वयं पापसे बचें और दूसरोंको पापसे बचावें।

पापी मनुष्य।

पापी मनुष्य सहस्रों प्रकारके पाप करता है, परंतु इस सूक्तमें कुछ मुख्य पापोंकाही उल्लेख किया है, वह भी यहां देखनेयोग्य है—

(१) "विश्वं द्रुग्धं।" — सब द्रोह अर्थात् सब प्रकारका धोखा। धोखा देना, काया-वाचा-मनसे विश्वासघात करना, बड़ा पाप है। इसमें बहुतसे पाप आ जाते हैं। (मं० २)

(२) "यदुवक्थानृतं जिह्वया वृजिनं बहु।" — जिह्वासे असत्य तथा पापभावसे युक्त वचन बोलना भी बड़ा पापका कर्म है (मं० ३)

द्रोह करना और असत्य बोलना, इन दोनोंमें प्रायः सब पाप समा जाते हैं। इन पापी मनुष्योंका सुधार पूर्वोक्त रीतिसे ही होना संभव है। धर्मोपदेशक तथा साधारण जन यदि इस सूक्तका विचार करेंगे तो उनको पापमोचनके विषयमें बहुतही योग्य बोध मिल सकता है।

यह पापमोचन-प्रकरण समाप्त।

सुख-प्रसूति-सूक्त।

(११)

[ऋषिः—अथर्वा। देवता-पूषादयो नाना देवताः]

वषट् ते पूषन्नस्मिन्त्सूतावर्यमा होता कृणोतु वेधाः।
सिस्रतां नार्यृतप्रजाता वि पर्वाणि जिहतां सूतवा उ ॥ ॥
चतस्रो दिवः प्रदिशश्चतस्रो भूम्या उत। देवा गर्भं समैरयन् तं व्यूर्णुवन्तु सूतवे ॥ २ ॥
सूषा व्यूर्णोतु वि योनिं हापयामसि। श्रथया सूषणे त्वमव त्वं बिष्कले सृज ॥ ३ ॥
नेव मांसे न पीवसि नेव मज्जस्वाहतम्।
अवैतु पृश्नि शेवलं शुने जराय्वत्तवेऽव जरायु पद्यताम् ॥ ४ ॥
वि ते भिनद्मि मेहनं वि योनिं वि गवीनिके।
वि मातरं च पुत्रं च वि कुमारं जरायुणाव जरायु पद्यताम् ॥ ५ ॥
यथा वातो यथा मनो यथा पतन्ति पक्षिणः।
एवा त्वं दशमास्य साकं जरायुणा पतावं जरायु पद्यताम् ॥ ६ ॥

अर्थ-हे (पूषन्) पोषक ईश्वर! (ते वषट्) तेरे लिये हम अपना अर्पण करते हैं। (अस्मिन् सूतौ) इस प्रसूतिके कार्यमें (अर्यमा होता वेधाः) आर्य मनवाला दाता विधाता ईश्वर सहायता (कृणोतु) करे। (ऋतप्रजाता) नियमपूर्वक जननेवाली

जन्म देनेवाली (नारी) स्त्री (सिस्रता) दक्षतासे रहे । तथा अपने (पर्वाणि) अंगोंको (सूतवै उ) सुखप्रसूतिके लिये (विजिहतां) ढाले करें ॥ १ ॥ (दिवः) आकाशकी (उत) तथा (भूम्याः) भूमिकी (चतस्रः प्रदिशः) चारों दिशाओंमें रहनवाले (देवाः) देवोंने (गर्भं समैरयन्) गर्भ को बनाया, इसलिये वेही (सूतये) उसकी सुखप्रसूतिके लिये (तं वि ऊर्णुवन्तु) उसको प्रकट करें, उसको बाहर खुला करें ॥ २ ॥ (सूषा) उत्तम संतान उत्पन्न करनेवाली माता (व्यूर्णोतु) अपने अंगोंको खुला करे। हम (योनिं) योनिको (विहापयामसि) खोलते हैं। हे (सूषणे) प्रसूत होनेवाली स्त्री ! (त्वं) तू भी (श्रथय) अंदरसे प्रेरणा कर। और हे (बिष्कले) वीर स्त्री ! (त्वं) तू (अवसृज) बालकको उत्पन्न कर ॥ ३ ॥ (न इव मांसे) नहीं तो मांसमें, (न पीवसि) न चर्बीमें, और (न इव मज्जसु) न तो मज्जामें यह (आहतं) लिपटा है। (पृश्नि शेवलं) नरम सेवारके समान (जरायु) जेली (शुने अत्तवे) कुत्तेके लिये खानेको (अवैतु) नीचे आवे, (जरायु) जेली (अवपद्यताम्) नीचे गिर जावे ॥ ४ ॥ (ते मेहनं) तेरे गर्भके मार्गको, (योनिं) योनिको तथा (गवीनिके) दोनों नाडियोंको (वि वि वि भिनद्मि) विशेष रीतिसे खुला करता हूं। (मातरं पुत्रं च) माता और पुत्रको (वि) अलग करता हूँ तथा (कुमारं जरायुणा वि) बच्चेको जेरीसे अलग करता हूं। (जरायु) जेरी (अव पद्यताम्) नीचे गिर जावे ॥ ५ ॥ जैसे वायु, जैसे मन और जैसे पक्षी (पतन्ति) चलते हैं (एव) इसी प्रकार हे (दशमास्य) दश महिनेवाले गर्भ ! तू (जरायुणा साकं) जेरीके साथ (पत) नीचे आ तथा (जरायु अवपद्यताम्) जेरी नीचे गिर जावे ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे सबके पोषण करनेवाले जगदीश ! तेरे लिये हम अपना अर्पण करते हैं। इस प्रसूतिके समय सब जगत्का निर्माता तूही हमारा सहायक बन। यह स्त्री भी दक्षतासे रहे और इस समय अपने अंगोंको ढीला करे ॥ १ ॥ आकाश और भूमिकी चारों दिशाओंमें रहनेवाले सूर्यादि सम्पूर्ण देवोंने इस गर्भको बनाया है। और वे ही इस समय अपनी सहायतासे इसको सुखपूर्वक गर्भस्थानसे बाहर लावें ॥ २ ॥ स्त्री अब अपने अंग खुले करें, सहाय करनेवाली धाई योनिको खोले। हे स्त्री ! तूही मनसे अंदरसे प्रेरणा कर और सुखसे बालकको उत्पन्न कर ॥ ३ ॥ यह गर्भ मास, चर्बी या मज्जामें चिपका नहीं होता है। वह पानीमें पत्थरोंपर बननेवाले नरम सेवारके समान अति कोमल थैलीमें लिपटा हुआ होता है, वह सब थैलीकी थैली एकदम बाहर आवे और वह नालके साथ जेली कुत्तोंको खानेके लिये दी जावे ॥ ४ ॥ योनि, गर्भस्थान और पिछली नाडियोंको ढीला किया जावे, प्रसूति होतेही मातासे बच्चा अलग किया जावे और बच्चेसे जेरी नाल समेत अलग की जावे। नाल समेत सब जेली पूर्णतासे बाहर निकल आवे ॥ ५ ॥ जिस प्रकार मन वेगसे विषयोंमें गिरता है, जैसे वायु और पक्षी वेगसे आकाशमें चलते हैं उसी प्रकार दसवें महिनेमें गर्भ जेरीके साथ गर्भस्थानसे बाहर आवे और जेरी आदि सब नीचे गिर जावे अर्थात् माताके गर्भस्थानमें उसका कुछ भाग अवशिष्ट न रहे ॥ ६ ॥

प्रसूति प्रकरण।

इस सूक्तसे नया प्रकरण प्रारंभ हुआ है। यह प्रकरण विशेषतः स्त्रियोंके लिये और सामान्यतः सबके लिये विशेष लाभकारी है। स्त्रियोंको प्रसूतिके जितने कष्ट सहने पडते हैं उनका दुःख स्त्रियांही जानती हैं। प्रसूतिके समय न्यून कष्ट होना प्रयत्नसे साध्य है। गर्भधारणासे लेकर प्रसूतिके समयतक अथवा गर्भधारणासे भी पूर्व समयमें भी जो नियम पालन करनेयोग्य होते हैं, उनका योग्य रीतिसे पालन करनेसे प्रसूतिके कष्ट बहुतसे दूर होना संभव है। इस विषयमें आगे बहुत उपदेश आनेवाला है। यहां इस सूक्तमें जितना विषय आया है, उसको अब यहां देखिये—

ईशभक्ति।

परमेश्वरकी भक्तिही मनुष्यको दुःखोंसे पार कर सकती है। गृहस्थी स्त्रीपुरुष यदि परमेश्वरके उत्तम भक्त होंगे तो उस परिवारकी स्त्रियोंको प्रसूतिके कष्ट न होंगे, यह बतानेके लिये इस सूक्तके प्रथम मन्त्रके पूर्वार्धमें ही सबसे पहिले ईश्वरकी मानस-पूजाका वर्णन किया है।

" वषट् " शब्द " स्वाहा " अर्थमें अर्थात् " आत्मसमर्पण " के अर्थमें प्रयुक्त होता है। (हे पूषन् ! ते वषट्) हे ईश्वर ! तेरे लिये हम अपने आपको समर्पण कर रहे हैं। तू ही (अर्यमा) श्रेष्ठ सज्जनोंका मान करनेवाला अर्थात् हितकर्ता है, तू ही (वेधा) सब जगत्का रचयिता और निर्माता है

और तूही (होता) सब सुखोंका दाता है। इसलिये हम तेरे आश्रयसे रहते हैं और तेरे लियेही पूर्णतया समर्पित होते हैं।

यहां पूर्व सूक्तमें वर्णन किये ईश्वरके गुण अनुसंधानसे देखने योग्य हैं। "सब सूर्यादि देवताओंको शक्ति देनेवाला एक ईश्वर है और उसका शासनही सर्वोपरि है।" इत्यादि भाव जो पूर्व सूक्तमें कहे हैं, यहां देखिये। "सबसे समर्थ प्रभु ईश्वर मेरा सहायकारी है, और मैं उसकी गोदमें हूं" इत्यादि भक्तिके भाव जिसके हृदयमें अकृत्रिम प्रेमके साथ रहते हैं, वह मनुष्य विशेष शक्तिसे और आरोग्यसे युक्त होता है और प्राय ऐसा मनुष्य सदा आनंदमें रहता है।

काम विकारका संयम करनेके लिये परमेश्वर भक्तिही एक दिव्य औषधि है। कामविकारका नियमन हुआ तो स्त्रियोंके प्रसूतिके दुःख बहुतसे नौब्वे कम होंगे, क्योंकि कामकी अति होनेसेही स्त्रियां अशक्त बनती हैं और अशक्तताके कारण प्रसूतिके कष्ट अधिक होते हैं तथा प्रसूतिके पश्चात्के क्षयादि रोग भी कष्ट देते हैं। इसलिये कामभोगका नियमन परमेश्वर भक्तिसे करनेका उपदेश हरएक स्त्रीपुरुषको यहां अवश्य ध्यानमें धरना चाहिये।

देवोंका गर्भमें विकास।

सूर्यादि देवताएं अपना अपना अंश गर्भमें रखते हैं, सब देवताओंका अंशावतार गर्भमें होनेके पश्चात् आत्मा उसमें आता है। इत्यादि विषय वेदमें स्थान स्थानपर आया है। [इस विषयमें स्वाध्यायमंडल द्वारा प्रकाशित "ब्रह्मचर्य" पुस्तकमें "देवोंका अंशावतार" शीर्षक विस्तृत लेख अवश्य पढिये। वहां विविध वेदमंत्रों द्वारा यह विषय स्पष्ट कर दिया है।] तात्पर्य गर्भमें अंशरूपसे अनेक देवताएं रहती हैं और उनका संबंध बाह्य देवताओंके साथ है। भूमि और आकाशकी चारों दिशाओंमें रहनेवाली सब देवताएं अपने गर्भमें अंशरूपसे आगई हैं, मानो उनका संमेलन (समेरदन्) ही गर्भमें हुआ है और उनका अधिष्ठाता आत्मा भी उसी गर्भमें है। यह दृढविश्वास गर्भ धारण करनेवाली माताका होना चाहिये। अर्थात् जो गर्भ अपने अंदर है वह अपने केवल कामोपभोगका ही फल नहीं है, परंतु उसमें और विशेष महत्त्वपूर्ण आत्म-शक्तिका और दैवी शक्तिका संबंध है। ऐसा भाव गर्भवती स्त्रीके मनमें स्थिर रहनेसे गर्भवतीका स्वास्थ्य तथा गर्भका पोषण भी उत्तम होता है। गर्भाधानके समयमें भी देवताओंका आह्वान किया जाता है। उस समयके मंत्र इस दृष्टिसे पाठक देखेंगे तो उनको पता लगेगा कि गर्भाधान कामविकारके पोषणके लिये नहीं है परंतु उच्च शक्तियोंकी धारणा के लिये ही है। अस्तु! गर्भिणी स्त्री अपने गर्भके विषयमें इतना उच्च भाव मनमें धारण करे और समझे कि जिन देवताओंके अंश गर्भमें इकट्ठे हुए हैं वेही देवताएं गर्भका पोषण और सुख प्रसूतिमें अवश्य सहायता देंगी। अर्थात् इस प्रकार देवताओंकी सहायता और परमात्माका आधार मुझे है इसलिये मुझे कोई कष्ट नहीं होंगे। पाठक इस दृष्टिसे इस सूक्तका द्वितीय मंत्र पढें।

१ (अ. ३ भा. का. १)

गर्भवती स्त्री।

पूर्वोक्त भाव गर्भवती अपने अंदर दृढतासे धारण करें। अब गर्भवती स्त्री अथवा गृहस्थाश्रममें रहनेवाली स्त्री निम्न बातोंका विचार करें—

१ नारी-जो धर्मनीतिसे (नृगाति) चलती है अर्थात् धर्म नियमोंसे अपना आचरण करती है, तथा (नर) पुरुषके साथ रहती है, वह नारी कहलाती है। अर्थात् विशेष गृहस्थधर्मके नियमोंका पालन करनेका भाव इस शब्दसे सूचित होता है। (मंत्र १)

२ ऋत-प्रजाता—(ऋत) सत्यनियमानुकूल (प्रजाता) प्रजनन कर्मसे युक्त। अर्थात् गर्भ-धारण, गर्भ-पोषण और प्रसूति आदि सब कर्म जिसके सत्य धर्मनियमोंके अनुकूल होते हैं। ऋतुगामी होना, गर्भ धारणके पश्चात् तीन वर्षके उपरान्त अथवा बालक दूध पीना छोड दे तत्पश्चात् ऋतुगामी होना, इत्यादि सब नियमोंका पालन करनेवाली स्त्री सुखसे प्रसूत होती है। (मंत्र १)

३ सूषा, सुषणा-जिस स्त्रीको प्रसूतिके कष्ट नहीं होते, अर्थात् जो सुखसे प्रसूत होती है। स्त्रियोंको योग्य नियमोंके पालन द्वारा यह गुण अपनेमें लाना चाहिये। (मंत्र १)

४ विष्कला-धीर स्त्री अर्थात् धैर्यवती स्त्री। स्त्रियोंको अपने अंदर धैर्य बढाना आवश्यक है। थोडेसे कष्ट होने लगे तो घबराना नहीं चाहिये। धैर्यसे उनको सहना चाहिये। (मंत्र ३)

गर्भवती स्त्रियोंको इन शब्दों द्वारा प्राप्त होनेवाला बोध अपने अंदर धारण करना उचित है, क्योंकि सुखप्रसूतिके लिये इन गुणोंकी आवश्यकता है।

गर्भ।

इस सूक्तमें गर्भका नाम "दश मास्य" आया है। इसका अर्थ "दस मासकी [illegible]" होता है। यह [illegible]

गर्भका समय चल रहा है। दसवें महिनेमें प्रसूतिका ठीक समय है। दसवें महिनेसे पूर्व जो प्रसूति होती है, वह गर्भकी अपक्व अवस्थामें होनेके कारण माताके कष्ट बढाती है। योग्य समयके पूर्व होनेवाले गर्भपात और गर्भस्राव ये सब माताके कष्ट बढानेवाले हैं और ये सब दुष्ट गृहस्थाश्रमी स्त्रियोंके नियमरहित वर्तावसे ही होते हैं। जो गृहस्थाश्रमी स्त्रियां योग्य नियमोंका पालन करते हैं, उनकी स्त्रियोंकी सुखसे प्रसूति होती है।

सुख प्रसूतिके लिये आदेश।

१ स्त्री परमेश्वरकी भक्ति करे। (मंत्र १)

२ अपने गर्भमें देवताओंका अवतार हुआ है ऐसा भाव मनमें धारण करे। (मंत्र २)

३ (सिस्रता) दक्षतासे अपना व्यवहार करे। (मंत्र १)

४ प्रसूतिके समय (पर्वाणि विजिहता) अपने अंगोंको ढीला करे। (मंत्र १)

५ (सूता व्यूर्णोतु) सुखप्रसूति चाहनेवाली स्त्री अपने अंगोंको ढीला अथवा खुला करे अर्थात् सख्त न बनावे। (मंत्र ३)

६ (सूषणे ! वि ऋथय) सुख-प्रसूति चाहनेवाली स्त्री मनकी इच्छा शक्तिसे मानो अंदरसे प्रेरणा करे, तथा मनसे प्रसूतिके अंगोंको प्रेरित करे। यह प्रेरणा स्वयं उस स्त्रीको ही अंदरसे करनी चाहिये। (मंत्र ३)

धाईकी सहायता।

१ प्रसूतिके समय धाईकी सहायता आवश्यक होती है। यह धाई भी प्रसूत होनेवाली स्त्रीको उत्तम सूचनाएं देती रहे और धीरज देती रहे। " परमेश्वर तेरा सहायक है और सब देवता तुम्हारे गर्भमें हैं अतः उनकी भी सहायता तुम्हें है " इत्यादि वाक्योंसे उसका धीरज बढावे।

२ आवश्यकता होनेपर योनिस्थान उचित रीतिसे खुला करे। (मंत्र ३)

३ जेरीके अंदर गर्भ होता है। गर्भके साथ जेरी नाल आदि सब बाहर आजाय और कोई उसका पदार्थ माताके गर्भाशयमें न रह जाय इस विषयमें धाई दक्षतासे अपना कार्य करे। वह पदार्थ अंदर रहनेसे बहुतही दुःख होना संभव है। (मंत्र ४)

४ प्रसूतिके समय गर्भमार्ग, योनि और पिछले अवयव खुले करने चाहिये। उनको यथायोग्य रीतिसे खुले करे, ताकि प्रसूति सुखसे होवे। (मंत्र ५)

५ प्रसूति होतेही माताके पाससे पुत्रको अलग करके उसपरका जेरीका वेष्टन हटाकर जो आवश्यक कार्य करना हो वह सब योग्य रीतिसे करे। (मंत्र ५)

सूचना।

यह विषय शारीरशास्त्रका है, केवल पाण्डित्यका नहीं है। इस सूक्तके शब्दोंका अर्थ भी शारीरशास्त्रके प्रसूति प्रकरणके अनुकूलही समझना उचित है। इसलिये जो वैद्य या डाक्टर हैं, जिन्होंने सुख-प्रसूति शास्त्रका विचार किया है, तथा जिन स्त्रियोंको इस शास्त्रके ज्ञानके साथ अच्छा अनुभव भी है, उनको इस सूक्तका अधिक विचार करना चाहिये। वेही इस सूक्तके " सिस्रतां, विजिहता, व्यूर्णोतु " आदि शब्दोंको ठीक प्रकार समझते हैं और वेही इस सूक्तकी ठीक व्याख्या कर सकते हैं।

आशा है कि प्रसूति-शास्त्रके अभ्यासी इसका अभ्यास करेंगे और अधिक निर्दोष व्याख्या कर सकेंगे।

[इति द्वितीय अनुवाक समाप्त।]

श्वासादि-रोग-निवारण-सूक्त।

(१२)

[ऋषिः—भृग्वंगिराः । देवता—यक्ष्मनाशनम्]

जरायुजः प्रथम उस्रियो वृषा वातभ्रजा स्तनयन्नेति वृष्ट्या ।
स नो मृडाति तन्व ऋजुगो रुजन् य एकमोजस्त्रेधा विचक्रमे ॥ १ ॥
अङ्गे-अङ्गे शोचिषा शिश्रियाणं नमस्यन्तस्त्वा हविषा विधेम ।
अङ्कान्त्समङ्कान् हविषा विधेम यो अग्रभीत्पर्वास्या ग्रभीता ॥ २ ॥
मुञ्च शीर्षक्त्या उत कास एनं परुष्परुराविवेशा यो अस्य ।
यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मो वनस्पतीन्त्सचतां पर्वतांश्च ॥ ३ ॥
शं मे परस्मै गात्राय शमस्त्ववराय मे। शं मे चतुर्भ्यो अङ्गेभ्यः शमस्तु तन्वे३ मम॥ ४ ॥

यह भावार्थ मंत्रोंके अर्थोंके अनुसंधानसे पाठक पढेंगे तो उनके ध्यानमें सूक्तका तात्पर्य आजायगा क्योंकि यह सूक्त सरल और सुगम हो है। तथापि पाठकोंके विशेष बोधके लिये यहां विशेष बातोंका स्पष्टीकरण किया जाता है। यह " तक्मनाशन गण " का सूक्त है अर्थात् रोगादिनाशक भाव इसमें है।

महत्त्वपूर्ण रूपक।

सबसे पहले प्रथम मत्रमें वर्णित महत्त्वपूर्ण रूपक विचार करनेयोग्य है। पूर्वसूक्तमें " (जरायुजः दशमास्य पुत्रः) जेरसे वेष्टित उत्पन्न होनेवाले दशमासतक गर्भमें रहनेवाले पुत्र" का वर्णन है। उसके साथ इस सूक्तका सबंध बतानेके लिये इस सूक्त के प्रारंभमें ही "जरायुज प्रथमः" ये शब्द आगये हैं। यहां सूर्यका वर्णन बडे महत्त्वपूर्ण रूपकसे किया है। इस रूपकमें सूर्य ही " पुत्र " है सूर्यके पुत्र होनेका वर्णन वेदमें अनेक स्थानमें आगया है। यहांका यह वर्णन समझमें आनेके लिये कुछ निसर्गकी ओर ध्यान देनेकी आवश्यकता है।

परंतु यहां नूतनोत्पन्न बालकका वर्णनही करना नहीं है, किंतु जीवनदाता सूर्यकाही वर्णन अर्थात् सूर्यके जीवन-पोषक रश्मि-रसायन का वर्णन करना है। यह करनेका प्रस्ताव इस प्रकार इस सूक्त के प्रारंभमे किया है। और इस प्रस्तावसे पूर्व सूक्त के साथ इस सूक्तका संबंध जोड दिया है।

प्रायः प्रसूतिके समय तथा पश्चात् स्त्रियोंमें अशक्तता आ जाती है और नाना रोगोंकी संभावना उत्पन्न होती है। इसलिये इस कष्टको दूर करना सुगमतासे किस रीतिसे साध्य होता है, यही बताना सूक्तका मुख्यतया विषय है। मानो इस मिषसे आरोग्य का विषय इस सूक्तमें प्रदर्शित किया है।

आरोग्यका दाता।

सूर्य ही आरोग्यका दाता है यह बात इस सूक्तके प्रथम मंत्रके उत्तरार्धमें स्पष्ट कही है

स नो मृडाति तन्व ऋजुगो रुजन्। (मंत्र १)

"वह (सूर्य) हमारे शरीरोंको आरोग्य देता है, सीधा जाने-

संक्षेपसे सूर्यका हमारे आरोग्यसे संबंध। पाठक विचार करें और अधिक ज्ञान प्राप्त करें।

इस रीतिसे प्रथम मंत्रमें आरोग्यका मूलमंत्र बताया है और उपमासे यह भी कहा है कि जिस प्रकार घरमें बालकरूपी सूर्यका उदय होता है उसी प्रकार विश्वमें दिवस्पुत्र सूर्यका उदय होता है। घर छोटा विश्व है तथा विश्वही बडा घर है। इसलिये इस घरके सूर्यका और विश्वके सूर्यका संबंध देखना चाहिये। आरोग्यके लिये तो इस घरके सूर्यका विश्वके साथ संबंध करना चाहिये अर्थात् जहांतक हो सके वहांतक बालकको घरमें बंद न रखते हुए विश्वसूर्यके खुले प्रकाशमें शनैः शनैः लानेका यत्न करना चाहिये, जिससे घरका सूर्य भी नीरोग और बलवान बन सके।

सूर्यकिरणोंसे चिकित्सा।

आगे द्वितीय मंत्रमें कहा है कि (अंगे अंगे शोचिषा शिश्रियाणं) शरीरके प्रत्येक अंगमें तेजके अंशसे यह सूर्य रहता है, उनको (नमस्यन्तः)नमन करना चाहिये, अर्थात् उनका आदर करना चाहिये, सूर्यके तेजसे अपने तेजको बढाना चाहिये। जो लोग घरके अंधेरे कमरोंमें अपने आपको बंद रखते हैं वे निस्तेज होते हैं, परंतु जो खुली हवामें घूमते हुए सूर्यप्रकाशसे अपना तेज बढाते हैं वे तेजस्वी होते जाते हैं।

शरीरके प्रत्येक (पर्व) जोडमें यह अंश रहता है, इस सूर्यके अंशने इस स्थानपर (प्रभीता) अपना अधिकार जमाया है। हरएक अवयवमें इसके (अंकान्) चिन्होंको पहचानना चाहिये और (समंकान्) मिले जुले चिन्होंको भी पहचानना चाहिये। जैसा आत्मा तेजरूपसे सूर्यका निवास है, अन्य स्थानोंमें अन्य अंशोंसे है। यह सब जानना चाहिये। और जिस स्थानमें अनारोग्य या बीमारी हुई हो उस स्थानका आरोग्य सूर्य-प्रकाशका उचित रीतिसे प्रयोग करके प्राप्त करना चाहिये। सबेरेके मंद सूर्यके प्रकाशमें खुली आंखसे सूर्य बिंब देखते रहनेसे प्रायः नेत्ररोग दूर होजाते हैं। विशेष नेत्ररोगोंके लिये विशेष युक्तिसे सूर्य-किरणका प्रयोग करना चाहिये। विशेष अंगके लिये भी विशेष युक्तिसे ही सूर्यकिरणका प्रयोग करना होता है। साधारण आरोग्यके लिये यह विशेष आवश्यक सूर्यकिरणोंसे तपानेसे भी बहुतसा कार्य हो जाता है। इस युक्तिसे केवल सूर्य किरणचिकित्सासे बहुतसे रोग दूर करना संभव है। यदि सहन हो सके इतने उष्ण सूर्य प्रकाशमें नंगा शरीर कुछ देरतक तपाया जाय तो भी सर्वसाधारण शरीर की नीरोगता बढती है। शीतकालमें यह करना उत्तम है, परंतु गर्मीके दिनों और उष्ण देशोंमें विचारसे और युक्तिसे ही इसका प्रयोग करना चाहिये। नहीं तो आरोग्यके स्थानपर अनारोग्य भी होगा इसलिये यह सब अभ्यास युक्तिसे ही बढाना चाहिये।

तृतीय मंत्रमें (शीर्षक्त्याः) सिरदर्द, (कासः) खांसी, (परुः) संधिस्थानके रोग उक्त प्रकार हटानेकी सूचना दी है। (वातजाः) वात, (शुष्मः) पित्त, (अभ्रजाः) कफके प्रकोपके कारण उत्पन्न हुए ये तथा अन्य रोग भी उसी युक्तिसे दूर करनेकी सूचना तृतीय मंत्रमें है। (पर्वतान् सचतां) तथा पर्वतों पर रहकर (वनस्पतीन् सचतां) उचित वनौषधियोंका सेवन करनेका भी उपदेश इसी मंत्रमें है। वनौषधियोंका सेवन दो प्रकारसे होता है, एक वृक्षादिकोंके नीचे रहना और दूसरा योग्य औषधियोंके रसादिका उपयोग करना। पर्वतोंके उच्च शिखरोंपर निवास और वृक्षोंके नीचे बैठना उठना बडा आरोग्यदायक है, यह बातें हमने कई रोगियोंपर युक्तिसे अजमाई हैं और हमारे अनुभवसे बडी लाभदायक सिद्ध हुई हैं। पाठक भी इससे लाभ उठावें।

चतुर्थ मंत्रमें सिर आदि उत्तमांग तथा पाद आदि अधरांग, तात्पर्य सब शरीरका स्वास्थ्य-पूर्वोक्त रीतिसे प्राप्त करनेकी सूचना प्रार्थना मंत्रद्वारा दी है।

सर्वसाधारण उपाय।

इस सूक्तसे सर्व साधारणके लिये भी बडा बोध प्राप्त हो सकता है। मुख्य बात यह है कि जो नंगे शरीर सूर्यके किरणोंमें घूमते हैं अर्थात् अपने शरीरको सूर्यकिरणोंसे तपाते हैं उनको चर्म रोग, खांसी, दमा तथा क्षय आदि रोग होनेही नहीं। ये सब रोग उनको होते हैं कि जो अंगे शरीरपर सूर्य-किरण नहीं लेते, अर्थात् सदा कपडोंसे वेष्टित होकर बंद मकानोंमें बैठते हैं। जो इससे बोध लेंगे वे इस सूक्तसे बहुत लाभ प्राप्त कर सकते हैं। वेदमें इसीलिये परमात्माकी "सूर" कहा है। यदि पाठक अपने घरको "सूर" का कारण समझेंगे तो वे उससे बाहर अधिक देरतक रहेंगे और सूर्यकिरणसे मिलनेवाला आरोग्य प्राप्त कर सकेंगे।

अन्तर्यामी ईश्वरको नमन।

(१३)

[ऋषिः- भृग्वङ्गिराः । देवता-विद्युत्]

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे । नमस्ते अस्त्वश्मने येना दूडाशे अस्यसि ॥१॥
नमस्ते प्रवतो नपाद्यतस्तपः समूहसि । मृडया नस्तनूभ्यो मयस्तोकेभ्यस्कृधि ॥२॥
प्रवतो नपान्नम एवास्तु तुभ्यं नमस्ते हेतये तपुषे च कृण्मः ।
विद्म ते धाम परमं गुहा यत्समुद्रे अन्तर्निहितासि नाभिः ॥३॥
यां त्वा देवा असृजन्त विश्व इषुं कृण्वाना असनाय धृष्णुम् ।
सा नो मृड विदथे गृणाना तस्यै ते नमो अस्तु देवि ॥४॥

अर्थ- (विद्युते ते) विशेष प्रकाशमान तुझको (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे। (स्तनयित्नवे ते नमः) गडगडानेवाले तुझको नमस्कार होवे। (अश्मने ते नमः अस्तु) ओलेके रूप तुझको नमस्कार होवे। (येन) जिससे तू (दूडाशे अस्यसि) दुःखदायीको दूर फेंकता है ॥१॥ हे (प्रवतः नपात्) उच्चतासे न गिरानेवाले! (ते नमः) तेरे लिये नमस्कार होवे। (यतः) क्यों कि तू (तपः समूहसि) तपको इकट्ठा करता है। (नः तनूभ्यः मृडय) हमारे शरीरोंको सुख दे और (तोकेभ्यः मयः कृधि), बच्चोंके लिये सुख प्रदान कर ॥२॥ हे (प्रवतः नपात्) उच्चतासे न गिरानेवाले! (तुभ्यं एव नमः अस्तु) तुम्हारे लिये ही नमस्कार होवे। (ते हेतये तपुषे च नमः कृण्मः) तेरे वज्र और तेजके लिये नमस्कार करते हैं। (यत् ते धाम) जो तेरा स्थान (परमं गुहा) परम गुहा अर्थात् हृदयरूपी गुहामें है वह हम (विद्म) जानते हैं। उस (समुद्रे अंतः) समुद्रके अंदर (नाभिः निहिता असि) तू नाभिरूप रहा है ॥३॥ हे (देवि) देवी! (असनाय) शत्रुपर फेंकनेके लिये (धृष्णुं इषुं कृण्वानाः) बलवान सुदृढ बाण करनेवाले (विश्वे देवाः) सब देव (यां त्वा) जिस तुझको (असृजन्त) प्रकट करते हैं, (तस्यै ते नमः अस्तु) उस तेरे लिये नमस्कार होवे। (सा) वह तू (विदथे गृणाना) युद्धमें प्रशंसित होनेवाली (नः मृड) हमें सुख दे ॥४॥

भावार्थ- हे देवि! ईश्वरी! तू बिजली आदिमें अपना तेज प्रकट करती है, मेघोंमें गर्जना कराती है और अपनी शक्तिसे ओले भी बरसाती है, इन सब बातोंसे तू हमारे सब दुःखोंको दूर करती है, इसलिये तुझे हम सब प्रणाम करते हैं ॥१॥ हे उच्चतासे न गिरानेवाली देवी ईश्वरी! तू तपोमय जीवनको हमारे अंदर इकट्ठा करती है अर्थात् हमारेमें तपःशक्ति बढाती है, उस तपसे हमें तथा हमारी संतानोंको सुखी कर. तेरे लिये प्रणाम करते हैं ॥२॥ हे उच्चतासे न गिरानेवाली देवी ईश्वरी! हम जानते हैं कि तेरा स्थान हृदयरूपी श्रेष्ठ गुफामें है, वहांके समुद्रके अंदर तू मध्य आधाररूप होकर रहती है, इसलिये तेरा तेज और तेरे दुष्ट विघातक शस्त्रास्त्र अथवा तेरी शक्तिके सन्मुख हम सिर झुकाते हैं ॥३॥ हे देवी ईश्वरी! शत्रुको दूर करनेके लिये शस्त्रास्त्र बनानेवाले सब विजयेच्छु लोग सदा तेरी भक्ति करते हैं इस कारण युद्धोंमें प्रशंसित होनेवाली तू हमें सुख दे। हम सब तुझे प्रणाम करते हैं ॥४॥

सूक्त की देवता।

इस सूक्तकी देवता " विद्युत् " है। यद्यपि विद्युत्का अर्थ बिजली है, और इस सूक्तका प्रारंभ मेघस्थानीय विद्युतके वर्णनसे ही हुआ है, तथापि विद्युत् का वर्णन करना मुख्य उद्देश्य इस सूक्तमें नहीं है। जिस प्रकार अन्यान्य सूक्तोंमें अग्नि आदि देवताओंके मिषसे परमात्माका वर्णन होता है, उसी प्रकार विद्युत् रूप ही देवताके मिषसे ईश्वरका, जगन्माता, आदिमाता

देवोंके रूपमें, परमात्माका ही वर्णन यहां हुआ है, इस बातको स्पष्ट व्यक्त करनेवाले इसी सूक्तके निम्न मंत्रभाग यहां देखने योग्य हैं —

१ "प्रवतः न-पात्" —"प्रवत्" शब्दका अर्थ उच्च स्थान है। उच्च अवस्था, उच्चता आदि भाव इस शब्दसे प्रकट होते हैं। उच्चतासे न गिरानेवाला यह "प्रवतो न-पात्"का भावार्थ है। परमात्मा ही मनुष्यमात्रको उच्च अवस्थामें रखनेवाला और वहांसे न गिरानेवाला है। (मंत्र २, ३)

२ "ते परमं धाम गुहा" —तेरा परम धाम हृदय की गुफामें है। हृदयमें आत्माका निवास है, वही उसका परम पवित्र निवास-स्थान है, यह उपनिषदादिमें अनेक बार आगया है।

३ "समुद्रे अन्तः नाभिः निहितासि।" —उसी समुद्रमें मध्यभाग तू है। हृदय गुफामें मानस सरोवर है, समुद्र है, विचारोंका अथवा भावनाओंका महासागर है। उसकी नाभी उसका आधार स्थान, वही आत्मा है। क्योंकि इस समुद्रकी सब लहरें उसकी ही प्रेरणासे अथवा शक्तिसे उठती हैं और उसीकी शक्तिसे इस समुद्रमें शांति स्थापित होती है।

४ "यो त्वां देवा असृजन्त विश्वे।" — जिस तुझको सब देव प्रकट करते हैं। आत्माका देवोंद्वारा प्रकाशित होना वेदमें अनंत स्थानोंमें स्पष्ट हुआ है। शरीरमें नेत्रादि सब इंद्रियोंद्वारा आत्माका प्रकाशन हो रहा है। यदि नेत्रादि इंद्रियाँ न हों, तो आत्माका अस्तित्व भी ज्ञात नहीं हो सकता। इस प्रकार सब इंद्रियादि देव शरीरमें आत्माको प्रकट करते हैं। विश्वमें सूर्यचंद्रादि देव परमात्माकी महिमा प्रकट कर रहे हैं। मनुष्य समाजमें सब विद्वान परमेश्वरकी प्रशंसा कर रहे हैं। इस प्रकार सर्वत्र देवोंद्वारा आत्मा प्रकाशित होता है।

इस सूक्तको परमात्माकी तैजस शक्तिकाही मुख्यतया वर्णन करना है। और वह वर्णन अग्निरूप देवोंके वर्णनद्वारा यहां किया है।

जिस प्रकार मनुष्यका नेत्र देखता है, परंतु अपनी शक्तिसे वह देख नहीं सकता, किंतु हृदयस्थानीय आत्माकी शक्तिसे ही देख सकता है; इसी प्रकार अन्यान्य इंद्रियाँ आत्माकी शक्तिसे प्रेरित होकर ही अपना कार्य करती हैं। जैसी यह बात शरीरमें है, उसी प्रकार जगत्की सूर्यादि देवताएँ तेज फैलाना आदि कार्य अपनी शक्तिसे नहीं कर सकतीं। विश्वव्यापी परमात्माकी शक्ति लेकर ही सूर्य प्रकाशता, विद्युत् चमकती और वायु बहता है। इसलिये सूर्यप्रकाशसे, विद्युत्की चमचमाहटसे अथवा वायुके वेगसे न केवल इन देवताओंकी शक्तियां प्रकट हो रही हैं, परंतु परमात्माकी ही विविध शक्तियां प्रकट हो रही हैं। यह भाव ध्यानमें रखकर यदि पाठक इस सूक्तका विचार करेंगे, तो उनको इस सूक्तमें विद्युत्की चमचमाहटसे परमात्माका तेज फैल रहा है यही भाव विदित होगा। इसी रीतिसे इस सूक्तका विचार करना चाहिये।

प्रथम मंत्रमें विद्युत्की चमचमाहट, मेघोंकी प्रचंड गर्जना, मेघोंसे वर्षाकी वृष्टि अथवा जलकी वृष्टि आदि द्वारा परमात्माका प्रचंड कार्य देखना उचित है। इससे परमात्मा प्राणिमात्रके दुःख दूर करता है। वृष्टिसे अन्न और जल प्राप्त होनेके कारण प्राणियोंके अनंत क्लेश दूर हो रहे हैं। यही परमात्माकी कृपा है।

परमधाम।

तृतीय मंत्रमें परमेश्वरके परम धामका पता दिया है। परमेश्वरका परम धाम हरएक के हृदयमें है, विशेषतः भक्तके हृदयमें ही है। परमेश्वरके भक्तही उस धामको जानते हैं और वर्णन करते हैं। कौन दूसरा उसको जान सकता है और वर्णन कर सकता है? यही स्थान जानना और इसका अनुभव लेना मनुष्यका साध्य है।

मनुष्य समुद्रके अंदर गिर पडा है, इस समुद्र की लहरें बडी भारी लहरा रही हैं, प्रचंड वायु चल रहा है, धूवाधार मेघ बरस रहे हैं, बिजलियां चमक रही हैं, और यह मनुष्य ऐसे प्रक्षुब्ध समुद्रमें सहायताके लिये पुकार रहा है। उसका ख्याल है, कि सहायता बाहरसे आनेवाली है। यही मनुष्यका भ्रम है, यही अज्ञान है और यही कमजोरी है।

यह तृतीय मंत्र स्पष्ट शब्दोंसे कह रहा है, कि उस प्रक्षुब्ध समुद्रका केन्द्र वही परमात्मा है और वह भक्तके हृदयमें विराजता है। हे भक्त! यदि तू सचमुच उसकी सहायताके लिये पुकार रहा है तो अपने हृदयमेंही उसे ढूंढनेका यत्न कर, वही उसका परम धाम है। और वहांही वह अपने वैभवसे प्रकाश रहा है।

पाठको! आप यह ध्यानमें रखिये कि आपमेंसे हरएक के हृदयमें वह आत्मज्योति है। वही सब उन्नति की सहायक शक्ति है। आप उसे पकड लीजिये, तो आपकी उन्नति निःसंदेह हो जायगी। सब जगत् अंदरसे बढ रहा है, बाहरसे नहीं। आपकी उन्नतिका भी यही नियम है।

युद्धमें सहायता।

युद्धके समय, शत्रुका हमला होनेके प्रसंगमें, डरके समयमें इस परमात्माकी सहायता सब चाहते हैं। मरण, दुःख आदिके कारण मनुष्य परमात्माकी खोज करते हैं। इसीलिये बडे सत्पुरुष दुःखको स्वीकारते हैं और अन्योंको सुख देते हैं। यही दुःखका महत्त्व है।

चतुर्थ मंत्रमें कहा है, कि " सब देव उसको प्रकट करते हैं। " इसीका स्पष्टीकरण इसने पूर्व किया जा चुका है। "युद्धमें उसकी प्रशंसा या स्तुति प्रार्थना होती है" इसका भी कारण स्पष्टतापूर्वक हमने देखा है। यह सब इसलिये करते हैं कि " शत्रुको दूर भगानेके लिये प्रबल शक्ति प्राप्त हो। " जो परमात्माके सच्चे भक्त होते हैं, या तो उनके सन्मुख कोई शत्रु नहीं ठहर सकता, अथवा जो उनकी शत्रुता करता है, वह स्वयं नष्ट हो जाता है। अर्थात् परमेश्वर भक्तिही एक बडी भारी शक्ति है, जो संपूर्ण शत्रुओंका नाश कर सकती है।

नमन।

इस चार मंत्रोंके सूक्तमें परमेश्वरको सात बार नमन किया है, अर्थात् यहांका अनेक बारका नमन सिद्ध कर रहा है, कि परमेश्वरकी सार्वभौम सत्ताके सामने सिर झुकाना, उसको सर्वत्र उपस्थित समझना, उसीको सर्वोपरि समझना मनुष्यकी उन्नतिके लिये अत्यावश्यक है। उसको छोडकर किसी दूसरेको नमन न करनेके संबंधमें " तुभ्यं एव नमोऽस्तु " (मंत्र १) यह मंत्रभाग देखने योग्य है। "मैं तुझे ही नमन करता हूं।" तेरेसे भिन्न किसी अन्यकी उपासना मैं नहीं करता, हे ईश्वर! तेरे सामने ही मैं सिर झुकाता हूं। मुझे अनुग्रहीत कर और कृतार्थ कर। इस सूक्तमें सर्वोत्कृष्ट उपासना कही है, पाठक इसका उपयोग उपासनाके समय कर सकते हैं।



कुलवधू-सूक्त

[ऋषिः— भृग्वङ्गिराः। देवता-यमः]

(१४)

भगमस्या वर्च आदिष्यधि वृक्षादिव स्रजम्। महाबुध्न इव पर्वतो ज्योक् पितृष्वास्ताम् ॥१॥
एषा ते राजन्कन्या वधूर्नि धूयतां यम। सा मातुर्बध्यतां गृहेऽथो भ्रातुरथो पितुः ॥२॥
एषा ते कुलपा राजन्तामु ते परि दद्मसि। ज्योक् पितृष्वासाता आ शीर्ष्णः समोप्यात् ॥३॥
असितस्य ते ब्रह्मणा कश्यपस्य गयस्य च। अन्तःकोशमिव जामयोऽपि नह्यामि ते भगम् ॥४॥

अर्थ—(वृक्षात् अधि स्रजं इव) वृक्षसे जिस प्रकार फूलोंकी माला लेते हैं, उस प्रकार (अस्याः भगं वर्चः आदिपि) इस कन्याका ऐश्वर्य और तेज मैं स्वीकारता हूं। (महाबुध्नः पर्वतः इव) बडे जडवाले पर्वतके समान स्थिरतासे यह कन्या (पितृषु ज्योक् आस्तां) मातापिताके घर बहुत समयतक रहे ॥ १ ॥ हे (यम राजन्) नियमपालन करनेवाले स्वामिन् ! (एषा कन्या) यह कन्या (ते वधूः) तेरी वधू होकर (निधूयतां) व्यवहार करे। (अथो) अथवा (सा) वह माताके, भाईके (अथो) किंवा पिताके (गृहे बध्यताम्) घरमें रहे ॥ २ ॥ हे (राजन्) हे स्वामिन् ! (एषा) यह कन्या (ते कुल-पा) तेरे कुलका पालन करनेवाली है। (तां) उसको (उ ते परिदद्मसि) तेरे लिये देते हैं। यह (ज्योक्) उस समयतक (पितृषु आसातै) मातापिताके घरमें निवास करे (आ शीर्ष्णः समोप्यात्) जबतक सिर न सजाया जावे ॥ ३ ॥ (असितस्य) बंधन रहित, (कश्यपस्य) द्रष्टा (च) और (गयस्य) प्राण साधन करनेवाले (ते) तेरे (ब्रह्मणा) ज्ञानके साथ मैं [ते भगं अपि नह्यामि] तेरे ऐश्वर्यको बांधता हूं, [जामयः अंतः कोशं इव] स्त्रियां अपनी पिटारीको जैसे बांधती हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ [१] वृक्षसे फूल और पत्ते निकाल कर जैसी माला बनाकर लोग पहनते हैं उसी प्रकार इस कन्याका सौंदर्य और तेज मैं स्वीकारता हूं और उससे अपने आपको सजाना चाहता हूं। जिस प्रकार बडी जडवाला पर्वत अपने ही आधारपर स्थिर रहता है; उस प्रकार कन्या भी अपने मातापिताओंके घरमें निडर होकर देरतक सुरक्षित रहे ॥ १ ॥ [२] हे नियमपालक पति ! यह हमारी कन्या तेरी वधू होकर नियमपूर्वक व्यवहार करे। जिस समय वह आपके घर न रहेगी उस समय वह पिता, माता अथवा भाईके घर रहे, परंतु किसी अन्यके घर जाकर न रहे ॥ २ ॥ हे पति ! यह हमारी कन्या तेरे कुलका पालन करनेवाली है, इसको तेरे लिये हम समर्पण करते हैं। जबतक इसका सिर सजाने का समय न आवे तबतक यह मातापिताके घरमें रहे ॥ ३ ॥ बंधनरहित, द्रष्टा और प्राणोंको स्वाधीन करनेवाले तेरे ज्ञानके साथ इस कन्याके भाग्यका संबंध मैं करता हूं। जिस प्रकार स्त्रियाँ अपने जेवर संदूकमें बंद रखती हैं, उस प्रकार इसका भाग्य सुरक्षित रहे ॥ ४ ॥

पहला प्रस्ताव।

इस सूक्तमें चार मंत्र हैं। पहले मंत्रमें भावी पतिका प्रस्तावरूप भाषण है। पति कन्याके रूपको और तेजको पसंद करता है और उस तेजका स्वीकार करना चाहता है। इस विषयमें मंत्रका रूपक अतिस्पष्ट है—

"वृक्षवनस्पतियोंसे पत्ते फूल और मंजरियां लेकर लोग माला बनाते हैं, और उस मालाको गलेमें धारण करते हैं। इस प्रकार यह कन्या सुगंधित फूलोंवाली वल्ली है, इसके फूल और पत्ते (मुखकमल और हस्तपल्लव) अथवा इसका सौंदर्य और तेज मैं लेता हूं और उससे मैं सुशोभित होना चाहता हूं। अर्थात् मैं इस कन्याके साथ गृहस्थाश्रम करनेकी इच्छा करता हूं। जैसा पर्वत अपने विशाल आधारपर रहता है, उस प्रकार यह कन्या अपने मातापिताओंके सुदृढ आधार-पर रहे। अर्थात् मातापिताओंसे सुशिक्षा पाकर यह कन्या सुयोग्य बने और पश्चात् मेरे (पतिके) घर आजावे।"

यह भाव प्रथम मंत्रका है। इसमें भावी पतिका प्रथम प्रस्ताव है। भावी पति कन्याका सौंदर्य और तेज पसंद करता है और उसके साथ विवाह करनेकी इच्छा प्रकट करता है। अर्थात् भावी पति कन्याकी प्रार्थना उसके माता पिताके पास करता है। और साथ यह भी कहता है कि, कन्या कुछ समयतक माता-पिताके घर ही रहे अर्थात् योग्य समय आनेतक कन्या माता-पिताके घर रहे, तत्पश्चात् पतिके घर आवे। योग्य समय की मर्यादा आगे तृतीय मंत्रमें कही जायगी।

इस मंत्रके विचारसे पता लगता है कि, पुरुष अपनी सहधर्मचारिणी को पसंद करता है। पुरुष अपनी रुचि के अनुसार कन्याको चुनता है और अपना मानस कन्याके मातापिताओंसे निवेदन करता है। कन्याके मातापिता इस प्रस्ताव का विचार करते हैं और भावी पतिको योग्य उत्तर देते हैं।

परंतु भावी पति और कन्याके मातापिता या पालकोंका ही भाषण है। इससे अनुमान होता है कि, कन्याको उतना अधिकार नहीं है, कि जितना पतिको है।

तीसरे मंत्रमें कन्याके पालक कहते हैं कि, हम [ते तां परि दद्मसि] तेरेलिये इस कन्याको समर्पण करते हैं।" यह मंत्रभाग स्पष्ट बता रहा है कि, कन्या इस विषयमें परतंत्र है। मंत्रमें दो बार आया है कि 'कन्या पिता माता अथवा भाईके घरमें रहे" अथवा आगे जाकर हम कह सकते हैं कि विवाह होनेपर वह पतिके घर रहे। परन्तु वह कभी स्वतन्त्रतासे न रहे।

जिस प्रकार वृक्षका आधार उसकी जड है, अथवा पर्वतका आधार उसकी अति विस्तृत बुनियाद है, उसी प्रकार कन्याका पहला आधार मात पिता अथवा भाई है, और पश्चात्का आधार पति ही है। इससे भिन्न किसी अन्यका आधार स्त्रीको लेना उचित नहीं है।

अर्थ यह लेना योग्य है।) राजा शब्दका अर्थ " प्रकृतिका रंजन करनेवाला।" गृहस्थधर्ममें धर्मपत्नी पुरुष की प्रकृति ही है। उस धर्मपत्नीका संतोष बढानेवाला।

३ असित — (अ-सितः अबद्धः) बंधनरहित। अर्थात् जिसका मन स्वतंत्रताका चाहनेवाला है। गुलामोंके भाव जिसके मनमें नहीं हैं।

४ कश्यपः-(पश्यकः) देखनेवाला। अपनी परिस्थितिको उत्तम रीतिसे जाननेवाला और अपने कर्तव्यको ठीक प्रकार समझनेवाला।

५गय.— (प्राणबलयुक्तः) प्राणायामादि योगसाधनद्वारा जिसने अपने प्राणोंका बल बढाया है।

६ ब्रह्मणा युक्तः— ज्ञानसे युक्त। ज्ञानी।

ये छः शब्द इस सूक्तमें पतिके गुणधर्म बता रहे हैं।

पाठक वर परीक्षाके विषयमें इन बातोंका ध्यान रखें । अब वधू परीक्षा करनेके नियम देखिये—

वधू-परीक्षा ।

इस सूक्तमें वधूपरीक्षाके निम्नलिखित मंत्र भाग हैं—

१ कन्या— [कमनीया] कन्या ऐसी हो, कि जिसको देखनेसे मनमें प्रेम उत्पन्न हो । रूप तेज, अवयवोंकी सुंदरता, स्वच्छता, ज्ञान आदि सब बातें, जिससे देखनेवालेके मनमें प्रेम उत्पन्न होता हो, इस शब्दसे ज्ञात हो जाती हैं ।

२ वधू— [उह्यते पतिगृहं] जो पतिके घर जाकर रहना पसंद करती है । जो पतिके घरको ही अपना सच्चा घर मानती है ।

३ कुलपा—कुलका पालन करनेवाली । पिताके तथा पतिके कुलोंकी मर्यादाओंका पालन करनेवाली । जो अपने सदाचारसे दोनों कुलोंका यश बढाती है ।

४ से [पत्युः] भगम् —धर्मपत्नी ऐसी होनी चाहिये, कि जो पतिका भाग्य बढावे । जिससे पतिको धन्यता अनुभव हो ।

५ पितृषु आस्ताम्- विवाहके पूर्व अथवा आपत्कालमें मातापिता अथवा माँ, इनके घरमें रहनेवाली और विवाहके पश्चात् पतिके घर रहनेवाली । किसी अन्यके घर जाकर रहनेकी इच्छा न करनेवाली कन्या होनी चाहिये ।

६ वृक्षात् स्रक्-वृक्षसे पुष्पमालाके समान कन्या हो, पिताके कुलरूपी वृक्षको पुष्पमालारूप कन्या सुगंधित करे ।

ये छ. मंत्रभाग कन्याकी परीक्षा करनेके नियम बता रहे हैं । पाठक इनका उत्तम विचार करें और इन उपदेशोंके अनुकूल कन्याकी परीक्षा करें ।

कन्याके गुणधर्म ।

कन्या सुरूप तथा तेजस्विनी हो, पतिके घर प्रेमपूर्वक रहनेवाली हो, दोनों कुलोंका यश अपने सदाचरणसे बढानेवाली हो, पतिका भाग्य बढानेवाली, यौवनके पूर्व पिताके घरमें तथा यौवन प्राप्त होनेके पश्चात् पतिके घर रहनेवाली, तथा पुष्पमालाके समान अपने कुलकी शोभा बढानेवाली हो । इस प्रकारकी जो सुलक्षणी कन्या हो उसकोही पसंद करना योग्य है ।

परंतु जो क्रोधी, निस्तेज, दुर्मुखी, पतिके घर जानेकी इच्छा न करनेवाली, दुराचारिणी, पतिके भाग्यको घटानेवाली, तथा दोषयुक्त हो, वह कन्या विवाहके लिये योग्य नहीं है ।

मंगनीका समय ।

इस सूक्तसे विवाहके समयका ठीक ज्ञान नहीं होता, क्योंकि उसका ज्ञापक कोई प्रमाण यहां नहीं है । "कन्या सिर सजानेके समयके पूर्व मातापिताके घर देरतक रहे" इस तृतीय मंत्रके कथनसे मंगनीका समय ऋतुप्राप्ति होनेके पूर्व कुछ वर्ष-अधिकसे अधिक एक दो वर्ष- ऐसा संभव है । तथापि वधूपरीक्षाके जो छः लक्षण ऊपर बताये हैं, वे लक्षण स्पष्टतया व्यक्त होनेके लिये प्रौढ दशाकी प्राप्तिकी अत्यंत आवश्यकता है । "पतिके घर जानेकी कल्पना" जिस अवस्थामें कन्याके मनमें आती है वह अवस्था मंगनीकी प्रतीत होती है । ये छ शब्द अच्छी, प्रौढ, प्रबुद्ध, करीब उपवर, कन्याकी अवस्था बता रहे हैं । पाठक सब शब्दोंका विचार अच्छी प्रकार करेंगे, तो उनको कन्याकी किस आयुमें मंगनी होनी चाहिये इस विषयका निश्चय हो सकता है ।

भावी पति मंगनी करे और कन्याके माता पिता पूर्वोक्त लक्षणोंका खूब विचार करके भावी पतिके प्रस्तावका स्वीकार या अस्वीकार करें । इस सूक्तमें वरके मातापिताको तथा कन्याको अपना मत देनेका अधिकार है ऐसा माननेके लिये एक भी प्रमाण नहीं है । यह बात यदि किसी अन्य सूक्तमें आगे मिल जायगी, तो उस समय कही जायगी ।

सिरकी सजावट ।

तृतीय मंत्रमें कहा है "ज्योक् पितृष्वासाता आ शीर्ष्णः समोप्यात् ।" (देरतक मातापिताके घरमें कन्या रहे, जबतक सिर सजानेका समय आजावे ।) यहां एक बात कहना आवश्यक है, कि जिस समय स्त्री ऋतुमती होती है, उस समय उसको "पुष्पवती" कहते हैं । पुष्पवतीका अर्थ फूलोंसे अपने शिरको सजाने योग्य । प्रथम रजोदर्शन अथवा ऋतुप्राप्ति अथवा प्रथम पुष्पवती होते ही उसका फूलोंद्वारा सजानेकी प्रथा विशेषतः उसका सिर फूलोंसे सजानेकी प्रथा भारतवर्षमें इस समय भी है । मैसूर और मद्रासकी ओरतो पहले गर्भाधानके प्रसंगके लिये सैकडों रुपयोंके फूल इस पुष्पवती स्त्रीको सजाने के लिये लाये जाते हैं । मुंबईमें भी कई जातियोंमें यह प्रथा है । अन्य जातियोंमें कम है, परंतु सिरमें फूल पहननेका रिवाज इस ऋतुप्राप्तिके समयके लिये विशेष है । यह रिवाज प्रतिदिन कम हो रहा है । एक धनाभावके कारण और दूसरा रसिकताके अभाव के कारण यह रिवाज न्यून हो रहा है ।

धनी लोग इस प्रसंगके लिये सोने और रत्नोंके भी फूल बनाते हैं और पुष्पवती स्त्रीके चतुर्थ दिनमें उसका सिर बहुत सजाते हैं । जिन प्रांतोंमें घूंगट निकालनेका रिवाज है, उन प्रांतोंमें यह रिवाज कम है ऐसा हमारा ख्याल है, परंतु सच्ची बात वहां के लोग ही जान सकते हैं । इससे हम अनुमान कर सकते हैं कि घूंगटकी प्रथा अवैदिक कारणोंसे हमारे समाजमें घुस गई है ।

मंगनीके पश्चात् विवाह ।

इस सूक्तके देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि, मंगनीके पश्चात् विवाह का समय बहुत दूर का नहीं है । प्रथम मंत्रमें वरसे पहला प्रस्ताव अर्थात् मंगनीका प्रस्ताव हुआ है । और द्वितीय तथा तृतीय मंत्रमें ही कन्याके अर्पण का विषय आगया है । देखिये--

१ एषा कन्या ते वधूः निधूयताम्=यह हमारी कन्या तेरी पत्नी बनकर निःशेष व्यवहार करे । तथा--

२ एषा [कन्या] ते कुलपा, तां उ ते परिदद्मसि=-यह हमारी कन्या तेरे कुलका पालन करनेवाली है, इसलिये उसको तेरे लिये हम प्रदान करते हैं ।

३ ते भगं अपिनह्यामि= तेरा भाग्य [इस कन्या के साथ] बांधता हूं, अर्थात् इससे तू अलग न हो ।

ये मंत्रभाग स्पष्ट बता रहे हैं कि मंगनीका स्वीकार होनेके पश्चात् शीघ्र ही विवाहका समय होता है । यद्यपि इसमें समय का साक्षात् उल्लेख नहीं है, तथापि [१] मंगनी, [२] कन्या-दान की संमति, [३] सिर सजानेके समयतक अर्थात् पुष्पवती होनेतक कन्याके पितृघरमें निवास का विधान स्पष्ट बता रहा है, कि मंगनी के पश्चात् विवाह होनेके बाद ऋतुमती और पुष्पवती होनेके नंतर कन्याका पतिके घर निवास होनेका क्रम दिखाई देता है। पाठक इस विषयमें अधिक विचार करें । यह विषय अन्यान्य सूक्तोंके साथ संबंधित है, इसलिये इस विवाह-प्रकरणके सूक्त जहां जहां आवेंगे वहां वहां इसके साथ संबंध देखकर ही सब बातोंका निर्णय होगा । पाठक भी इस विषयमें अपने विचारों की सहायता देंगे, तो अधिक निर्दोष निश्चय होना संभव है

संगठन-महायज्ञ-सूक्त ।

[ऋषिः- अथर्वा । देवता-सिंधुः]

(१५)

सं सं स्रवन्तु सिन्धवः सं वाताः सं पतत्रिणः ।
इमं यज्ञं प्रदिवो मे जुषन्तां संस्राव्येण हविषा जुहोमि ॥१॥
इहैव हवमा यात म इह संस्रावणा उतेमं वर्धयता गिरः ।
इहैतु सर्वो यः पशुरस्मिन् तिष्ठतु या रयिः ॥२॥
ये नदीनां संस्रवन्त्युत्सासः सदमक्षिताः । तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि ॥३॥
ये सर्पिषः संस्रवन्ति क्षीरस्य चोदकस्य च । तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि ॥४॥

अर्थ— [सिंधवः] नदियां [सं स्रवन्तु] उत्तम रीति से मिलकर बहती रहें, [वाताः सं] वायु उत्तम रीतिसे मिलकर बहते रहें, [पतत्रिणः सं] पक्षी भी उत्तम गतिसे मिलकर उडते रहें। इसी प्रकार (प्रदिवः) उत्तम दिव्य जन (मे इमं यज्ञं) मेरे इस यज्ञको (जुषन्तां) सेवन करें, क्योंकि मैं (संस्राव्येण हविषा) संगठनके अर्पणसे (जुहोमि) दान कर रहा हूं ॥ १ ॥ (इह एव) यहां ही [मे हवं] मेरे यज्ञके प्रति (आयात) आओ

(उत) और हे (संस्रावणाः) संगठन करनेवाले [गिरः] वक्ताओ ! [इमं वर्धयत] इस संगठनको बढाओ । [यः पशुः] जो सब पशुभाव है वह (इह एतु) यहां आवे और (अस्मिन्) इसमें (या रयिः) जो संपत्ति है, वह (तिष्ठतु) रहे ॥ २ ॥ (नदीनां) नदियोंके जो (अक्षिताः उत्साः) अक्षय स्रोत इस (सदं) संगठन स्थानमें (संस्रवन्ति) बह रहे हैं, (तेभिः मे सर्वैः संस्रावैः) उन मेरे सब स्रोतोंसे हम सब (धनं) धन (संस्रावयामसि) इकट्ठा करते हैं ॥ ३ ॥ (ये) जो (सर्पिषः) घीकी (क्षीरस्य) दूधकी (च उदकस्य) और जलकी धाराएं(संस्रवन्ति) बह रही हैं, (तेभिःमे सर्वैः संस्रावैः) उन सब धाराओंसे हम (धनं संस्रावयामसि) धन इकट्ठा करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—नदियां मिलकर बहती हैं, वायु मिलकर बहते हैं, पक्षी भी मिलकर उडते हैं, उस प्रकार दिव्य जन भी इस मेरे यज्ञमें मिल जुलकर संमिलित हों, क्योंकि मैं संगठनके बढानेवाले अर्पणसे ही यह संगठनका महायज्ञ कर रहा हूं ॥ १ ॥ सीधे मेरे इस संगठनके महायज्ञमें आजाओ और हे संगठनके साधक वक्ता लोगो ! तुम अपने उत्तम संगठन बढानेवाले वक्तृत्वोंसे इस संगठन महायज्ञको फैला दो । जो हम सबमें पशुभाव हो, वह यहां इस यज्ञमें आवे और हम सबमें धन्यताका भाव चिरकालतक निवास करे ॥ २ ॥ जो नदियोंके अक्षय स्रोत इस संगठन महायज्ञमें बह रहे हैं उन सब स्रोतोंसे हम अपना धन संगठन-द्वारा बढाते हैं ॥ ३ ॥ क्या घी, क्या दूध और क्या जलकी जो धाराएं हमारे पास बह रहीं हैं, उन सब धाराओंसे हम अपना धन इस संगठनद्वारा बढाते हैं ॥ ४ ॥

संगठनसे शक्तिकी वृद्धि ।

यह संगठन महायज्ञका सूक्त है । इसके प्रथम मंत्रमें संगठनसे शक्ति बढनेका वर्णन है, वह संगठन करनेवालोंको देखना और उसपर खूब विचार करना चाहिये । देखिये—

१ सिंधवः—नदियां । जो जल बहती हैं उसको स्रोत कहते हैं । इस प्रकारके सैकडों और हजारों स्रोत जब इकट्ठे होते हैं और अपना भेदभाव छोडकर एकरूप होकर बहते हैं, तब उसका नाम "नदी" होता है । नदी भी जिस समय महा-पूरसे बहती है,उस समय विविध छोटे स्रोतोंके एकरूप होकर बहनेके कारण जो महाशक्ति प्रकट होती है, वह अपूर्व ही शक्ति है । यह नदी इस समय बडे बडे वृक्षोंको उखाड देती है, जो उसके सामने आजाते हैं उनको भी अपने साथ बहा देती है । बडे वृक्ष, बडे मकान, बडे पहाड भी महानदीके वेगके सामने तुच्छ हो जाते हैं । यह वेग कहांसे आता है ?

पाठक विचार करेंगे तो पता लग जायगा कि यह वेग छोटे स्रोतमें नहीं होता, परंतु जब अनंत छोटे स्रोत एकरूप होकर और अपना भेदभाव नष्टकर एकरूपसे बहने लगते हैं; अर्थात् अनंत छोटे स्रोत अपना संगठन करते हैं, तभी उनमें यह अभुतपूर्व शक्ति उत्पन्न होती है। इस प्रकार नदियां मनुष्यको "संगठन द्वारा अपनी शक्ति बढानेका उपदेश" दे रही हैं।

२ वातः-वायु भी इसी प्रकार मनुष्योंको संगठनका उपदेश दे रहे हैं । छोटे छोटे वायु जिस समय बहते हैं उस समय वृक्षके पत्ते भी नहीं हिलते, परंतु वही सब एक होकर प्रचंड वेगसे जब बहने लगते हैं तब महावृक्ष टूट जाते हैं और मनुष्य भी डर जाते हैं । पाठक इन झंझावातोंसे भी संगठन-के बलका उपदेश ले सकते हैं । इस प्रकार वायु भी संगठनका उपदेश मनुष्योंको दे रहा है ।

३ पक्षी—पक्षी भी संगठन करते हैं । जब एकएक पक्षी होता है तो उसको दूसरा कोई भी मार सकता है, परंतु जब सैकडों और हजारों चिडियां एक कलापमें रहकर अपना संगठन करती हैं, तब उनकी शक्ति बडी भारी होती है । इस प्रकारके पक्षियोंके कलाप बडे बडे खेतोंका धान अल्प समयमें प्राप्त करके खा जाते हैं । यह संगठनका सामर्थ्य पाठक देखें और अपना संघ बनाकर अपना ऐश्वर्य बढावें । पक्षी यह उपदेश मनुष्योंको अपने आचरणसे दे रहे हैं ।

इस प्रकार पहिले मंत्रमें ये तीन उदाहरण मनुष्योंके संमुख रखकर संगठनका महत्व बताया है । यदि पाठक इन उदाहरणोंका उत्तम मनन करेंगे, तो उनको पता लग जायगा कि अपना संगठन किस प्रकार किया जाय ।

यज्ञमें संगतिकरण ।

"यज्ञमें संगठन होता ही है । कोई यज्ञ ऐसा नहीं है कि जिसमें संगतिकरण न हो । यज्ञका मुख्य अर्थ संगठन ही है । प्रथम मंत्रके द्वितीयार्धमें इसीलिये कहा है, कि नदियोंने, वायुओंने और पक्षियोंने संगठनकी शक्ति अनुभव करके उस प्रकार अपने संगठन बनानेके उद्देश्यसे हमारे समाजके अन्दर

हमारे देश, जाति या राष्ट्रके लोग, इस संगठन महायज्ञमें संमिलित हों। एक स्थानपर जमा होना पहिली सीढी है। इसके पश्चात् परस्पर समर्पण करनेसे संगठनकी शक्ति बढने लगती है। हवनमें सात प्रकारकी समिधाएं एकत्रित होती हैं और अग्निद्वारा प्रकाश करती हैं। यदि एक एक समिधा अलग होगी तो अग्नि बुझ जायगा। इसी प्रकार जातिके सब लोग संगठित होनेसे उस जातिका यश चारों दिशाओंमें फैलता है, परंतु जिस जातिमें एकता नहीं होती, उसकी दिन प्रति दिन गिरावट होती जाती है। इससे यहां स्पष्ट हुआ कि संगठन करनेवाले लोगोंमें परस्परके लिये आत्मसमर्पणका भाव अवश्य चाहिये।

इस प्रकार प्रथम मंत्रने संगठन करनेके मूल सिद्धान्तोंका उत्तम उपदेश दिया है।

संगठनका प्रचार।

" सब लोग यहां आजांय, उनकी एक परिषद् बने और संगठन बढानेवाले उत्तम वक्ता अपने ऐक्यभाव बढानेवाले वक्तृत्वसे इस संगठन महायज्ञका फैलाव करें। " यह द्वितीय मंत्रके पूर्वार्धका भाव है।

सभा, परिषद्, महासभा आदि द्वारा जातियोंका संगठन करनेकी रीति इस मंत्रार्धमें कही है। सब लोग इसका महत्त्व जानते ही हैं। आगे जाकर इसी द्वितीय मंत्रमें एक महत्त्वपूर्ण बात कही है वह अवश्य ध्यानसे देखने योग्य है—

पशुभावका यज्ञ।

" जो सब पशुभाव हम सबमें हों वह इस यज्ञमें आजावे, और यहीं रहे अर्थात् फिर हमारे साथ वह पशुभाव न रहे।" पशुभावकी प्रधानता जिन मनुष्योंमें होती है, उनमें ही आपसके झगडे होते हैं। यदि पशुभाव संगठनके लिये दूर किया जाय और मनुष्यत्वका भाव बढाया जाय, तो आपसके झगडे नहीं होंगे। इसलिये पशुभाव की यज्ञमें समाप्ति करनेकी सूचना इस द्वितीय मन्त्रके तृतीय चरणमें दी है और संगठनके लिये वह अत्यंत आवश्यक है। इसके विना कोई संगठन हो ही नहीं सकता।

पशुभाव छोडनेका फल।

पशुभाव छोडने और मनुष्यत्वका विकास करनेसे तथा संगठनसे अपनी शक्ति बढानेसे जो फल होता है उसका वर्णन द्वितीय मंत्रके चतुर्थ चरणमें किया है—

" जो धन है वह इस हमारे समाजमें स्थिर रहे।" संगठनका यही परिणाम होना है। जिससे मनुष्य धन्य होता है उसका नाम धन है। मनुष्यको धन्य बनानेवाले सब धन मनुष्यको अपने संगठन करनेके पश्चात् ही प्राप्त हो सकते हैं। इस द्वितीय मंत्रमें संगठनके नियम बताये हैं, वे ये हैं—

१ एक स्थानपर संमिलित होना, सभा करना,
२ उत्तम वक्ता जनताको संगठनका महत्त्व समझा देवे;
३ अपने अंदरका पशुभाव छोडकर, पशुभावसे मुक्त होकर, लोग वापस जांय, सब लोग मनुष्य बनकर परस्पर बर्ताव करें।

इन बातोंके करनेसे संगठन होना संभवनीय है। इस प्रकार जो लोग संगठन करेंगे, वे जगत्में धन्य हो जायगे।

तृतीय और चतुर्थ मन्त्रमें फिर नदियोंके और जलोंके स्रोतों का वर्णन आया है, जो पूर्वोक्त रीतिसे एकताका उपदेश पुनः पुनः कर रहा है। संगठन करनेवालोंको घी, दूध दही आदि पदार्थ भरपूर मिल सकते हैं, मानो उनमें इन पदार्थोंकी नदियां ही बहेंगी। इसलिये संगठन करना मनुष्योंकी उन्नतिका एकमात्र प्रधान साधन है।

इस कारण तृतीय और चतुर्थ मंत्रोंके उत्तरार्धमें कहा है, कि " इन संघटित प्रयत्नोंसे हम अपना धन बढाते हैं। " संघटित प्रयत्नोंसे ही यश, धन और नाम बढता है।

आशा है कि पाठक इस सूक्तका अधिक विचार करेंगे और संगठनद्वारा अपनी पुरुषार्थ शक्ति बढाकर अपना यश चारों दिशाओंमें फैलायेंगे।

चोर-नाशन-सूक्त ।

[ऋषि-चातनः । देवताः अग्निः, इन्द्रः, वरुणः]

(१६)

येऽमावास्यां३ रात्रिमुदस्थुर्व्राजमत्त्रिणः । अग्निस्तुरीयो यातुहा सो अस्मभ्यमधि ब्रवत् ॥१॥

सीसायाध्याह वरुणः सीसायाग्निरुपावति । सीसं म इन्द्रः प्रायच्छत्तदङ्ग यातुचातनम् ॥२॥

इदं विष्कन्धं सहत इदं बाधते अत्त्रिणः । अनेन विश्वा ससहे या जातानि पिशाच्याः ॥३॥

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम् । तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा ॥४॥

अर्थ-(ये अत्रिणः) जो डाकू चोर (अमावास्यां रात्रीं) अमावसकी रात्रिके समय हमारे (व्राजं) समूहपर (उदस्थुः) हमला करते हैं, उस विषयमें (यातुहा सः तुरीयः अग्निः) चोरों का नाशक वह चतुर्थ अग्नि (अस्मभ्यं) हमें (अधि ब्रवत्) सूचना दें ॥ १ ॥ वरुणने सीसेके विषयमें (अध्याह) कहा है । अग्नि सीसेको (उपावति) रक्षक कहता है । इन्द्रने तो (मे) मुझे सीसा (प्रायच्छत्) दिया है । हे (अंग) प्रिय ! (तत् यातुचातनम्) वह डाकू हटानेवाला है ॥ २ ॥ (इदं) यह सीसा (विष्कंध) रुकावट करनेवालोंको (सहते) हटाता है । यह सीसा (अत्रिणः) डाकुओंको (बाधते) पीडा देता है । (अनेन) इससे (पिशाच्या या विश्वा जातानि) पिशाचों की जो जातियां हैं, उनको (ससहे) मैं हटाता हूं ॥ ३ ॥ (यदि नः गां हंसि) यदि हमारी गायको तू मारता है, (यदि अश्वं) यदि घोडेको और (यदि पूरुषं) यदि मनुष्यको मारता है (तं त्वा) तो उस तुझको (सीसेन विध्यामः) सीसेसे हम वेधते हैं, (यथा) जिससे तू (नः अ-वीर-हा असः) हमारे वीरोंका नाश करनेवाला न होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—अमावास्या की अंधेरी रात्रिके समय जो डाकू हमारे समूहपर हमला करते हैं, उस विषयमें हमें ज्ञानीसे उपदेश मिला है ॥ १ ॥ जलके रक्षक तथा उपदेशक सीसेकी गोली का प्रयोग करनेको प्रेरणा देते हैं । शूर वीरने तो सीसेकी गोली हमें दे रखी है । हे बंधुओ ! यह डाकुओंको हटानेवाली है ॥ २ ॥ यह सीसेकी गोली डाकुओंको हटाती है और प्रतिबंध करनेवालोंको दूर करती है । इससे खून पीनेवाली सब जातियोंको दूर भगाया जाता है ॥ ३ ॥ हे चोर ! यदि तू हमारी गाय, हमारा घोडा अथवा मनुष्यका वध करेगा, तो तुझपर हम गोली चलावेंगे, जिससे तू हमारा नाश करनेके लिये फिर जीवित न रह सकेगा ॥ ४ ॥

सीसेकी गोली ।

इस सूक्तमें सीसेकी गोली का प्रयोग डाकुओंपर करनेको कहा है । सूक्तमें केवल "सीस" शब्द है, गोली का वाचक शब्द नहीं है । तथापि "सीसेन विध्यामः" (सीसेके द्वारा वेध करेंगे) इस प्रयोगसे सीस शब्दसे सीसेकी गोली का भाव समझना उचित है । केवल सीसेका उपयोग डाकुओंके नाशमें किसी अन्य प्रकार संभवनीय नहीं दीखता है । (विध्यामः) वेध करनेका भाव दूरसे चांदमारीके समान निशाना मारना है । आजकल सीसेकी गोली बंदूककी नलीमें रखकर दूरसे शत्रुको वेधते हैं । बाण भी धनुष्यसे दूरसे ही निशाने पर फेंका जाता है । तात्पर्य इन मंत्रोंके शब्द बता रहे हैं कि सीसेकी गोलीसे दूरसे ही डाकुओंका वेध करना चाहिये । लाठी सोटीके समान यह पाससे नहीं प्रयोग होता है इतना ही यहां बताना है ।

शत्रु ।

"अत्रिन्, यातु" आदि शब्दोंके अर्थ समय-सूक्तके विवरणमें दिये हैं, पाठक वहां ही देखें । ये सब शब्द डाकू चोर लुटेरे अर्थात् समाजके शत्रुओंके वाचक हैं । इनसे भिन्न भिन्न शब्दोंका इससे पूर्व विचार नहीं हुआ उनका विचार यहां करते हैं—

१ विष्कन्ध- प्रतिबंध करनेवाला, रुकावट उत्पन्न करनेवाला, हरएक कार्यमें विघ्न डालनेवाला ।

२ पिशाच, पिशाची-रक्त पीनेवाले और कच्चा मांस खानेवाले क्रूर लोग, जो मनुष्यका मांस भी खाते हैं।

ये सब तथा (अत्रिन्) भूके डाकू, (यातु) चोर ये सब समाजके शत्रु हैं। इनको उपदेशद्वारा सुधारनेका विषय पूर्व आये हुए (कां० १, सू० ७, ८) धर्मप्रचारके सूक्तोंमें आचुका है। जो नहीं सुधरते उनको दंडके लिये क्षत्रियोंके आधीन करनेकी आज्ञा भी सप्तम सूक्तके अंतमें दी है। उपदेश और दण्ड इन दो उपायोंसे जो नहीं सुधरते उनपर सीसेकी गोलीका प्रयोग करनेका विधान इस सूक्तमें आया है। अपने संगठन करनेका उपदेश पूर्व सूक्तमें करनेके पश्चात् इस सूक्तमें शत्रुपर गोली चलानेकी आज्ञा है यह विशेष ध्यानसे देखना चाहिये। जिनका आपसमें उत्तम संगठन नहीं है यदि ऐसे लोग शत्रुपर हमला करेंगे, तो संभव है कि वे स्वयं ही नष्टभ्रष्ट हो जायगे। इसलिये " प्रथम अपना संगठन और पश्चात् शत्रुपर चढाई " यह नियम ध्यानमें रखना चाहिये।

आर्य वीर।

अग्नि इन्द्र आदिके विषयमें सूक्त सातके प्रसंगमें वर्णन आया ही है। (अग्निः) ज्ञानी उपदेशक, (इन्द्रः) शूरवीर ये आर्यवीर हैं यह पहिले बताया है। इन दो शब्दोंसे ब्राह्मण और क्षत्रियोंका बोध होता है यह बात पहिले बतायी जाचुकी है।

इस सूक्तमें "वरुण" शब्द आया है। वरुण समुद्र अथवा जलका आधिपति वेदमें तथा पुराणोंमें प्रसिद्ध है। जलस्थान, नदी आदि तथा समुद्र परसे जो शत्रुओंके हमले होते हैं उनसे रक्षा करनेका यह ओहदेदार है। जिस प्रकार " अग्नि " शब्द ब्राह्मणत्ववाचक, " इन्द्र " शब्द क्षात्रधर्मका बोधक है उसी प्रकार " वरुण " शब्द जलमार्गसे आनेजानेवाले और देशांतरोंमें व्यापार करनेवाले वैश्योंका अथवा वैश्यत्वका सूचक यहां प्रतीत होता है। इसलिये गोली चलानेके विषयमें (अग्नि) ब्राह्मण, (इन्द्र) क्षत्रिय और (वरुण) वैश्यने भी संमति दी है और (इन्द्र) क्षत्रिय ने तो सीसेकी गोलियां हमारेपास दे रखी हैं, इत्यादि द्वितीय मंत्रका भाव इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है। सप्तम सूक्तमें दिये उपदेशानुसार ब्राह्मण प्रचारकोंने प्रयत्न किया और उन्होंने कहा कि ये डाकू सुधरते नहीं हैं, क्षत्रियोंने भी कहा कि अनेक वार देहदंड देनेपर भी इन दुष्टोंमें सुधार नहीं हुआ, वैश्य तो लूटे जानेके कारण कहते ही रहे, इस प्रकार तीनों वर्णोंकी परिषद्ने जब गोली चलानेकी आज्ञा दी, तब इस सूक्तके आधारपर गोली चलायी जा सकती है। पाठक यह पूर्वापर संबंध अवश्य ध्यानमें रखें।

सूक्तकी शेष बातें स्पष्ट हैं। इसलिये अधिक विवरणकी आवश्यकता नहीं है।

(यहां तृतीय अनुवाक और पहिला प्रपाठक भी समाप्त हुआ।)

रक्तस्राव बंद करना।

[ऋषिः ब्रह्मा । देवता-योषित्]

(१७)

अमूर्या यन्ति योषितो हिरा लोहितवाससः। अभ्रातर इव जामयस्तिष्ठन्तु हतवर्चसः ॥१॥
तिष्ठावरे तिष्ठ पर उत त्वं तिष्ठ मध्यमे। कनिष्ठिका च तिष्ठति तिष्ठादिद्धमनिर्मही ॥२॥
शतस्य धमनीनां सहस्रस्य हिराणाम्। अस्थुरिन्मध्यमा इमाः साकमन्ता अरंसत ॥३॥
परि वः सिकतावती धनूर्बृहत्यक्रमीत्। तिष्ठतेलयता सु कम् ॥४॥

अर्थ - (अमूः याः) यह जो (लोहित-वाससः) रक्त स्राव करके पहनी हुई (योषितः) स्त्रियां हैं अर्थात् लाल रंगका रक्त धारण करनेवाली (हिराः) धमनियां शरीरमें हैं वे (तिष्ठन्तु) ठहर जांय अर्थात् अपना चलना बंद करें, (इव) जिस

प्रकार (अ-भ्रातरः) बिना भाईके (हत वर्चसः) निस्तेज बनी (जामयः) बहिनें ठहर जाती हैं ॥ १ ॥ (अवरे तिष्ठ) हे नीचेकी नाडी ! तू ठहर । (परे तिष्ठ) हे ऊपरवाली नाडी ! तू ठहर । (उत मध्यमे) और बीच वाली (त्वं तिष्ठ) तू भी ठहर । (कनिष्ठिका च तिष्ठति) छोटी नाडी भी ठहरती है तथा (धमनिः इत् तिष्ठात्) बडी नाडी भी ठहर जावे ॥ २ ॥ (धमनीनां शतस्य) सैकडों धमनियोंके और (हिराणां सहस्रस्य) हजारों नाडियोंके बीचमें (इमाः मध्यमाः अस्थुः) ये मध्यम नाडियां ठहर गई हैं । (साकं) साथ साथ (अंताः) अंत भाग भी (अरंसत) ठीक हुए हैं ॥ ३ ॥ (बृहती धनुः) बडे धनुष्यने (वः परि अक्रमीत्) तुमपर हमला किया है, अतः (सिकतावतीः तिष्ठत) रेतवाली अथवा शर्करावाली बनकर ठहर जाओ, जिससे (कं) सुख (सु इलयत) प्राप्त करोगे ॥ ४ ॥

भावार्थ—शरीरमें लाल रंगका रक्त शरीरभर पहुंचानेवाली धमनियां हैं । जब घाव लग जावे तब उनकी गति रोकनी चाहिये, जिस प्रकार दुर्भाग्यको प्राप्त हुई भाई रहित बहिनोंकी गति रुक जाती है ॥ १ ॥ नीचेवाली, ऊपरवाली, तथा बीचवाली छोटी और बडी सब नाडियोंको बंद करना चाहिये ॥ २ ॥ सैकडों और हजारों नाडियोंमेंसे आवश्यक नाडियां ही बंद की जावें अर्थात् उनके कटे हुए अंतिम भाग ठीक किये जावें ॥ ३ ॥ बडे मनुष्यके बडे बाणोंसे धमनियोंपर हमला होकर नाडियां कट गई हैं, उनको शर्कराके साथ संबंध करनेसे शीघ्र आरोग्य प्राप्त हो सकता है ॥ ४ ॥

घाव और रक्तस्राव ।

शरीरमें शस्त्रादिसे घाव होनेपर घावके ऊपरकी और नीचेकी नाडियोंको बंदसे बांधनेसे रक्तका स्राव बंद हो जाता है । घाव देखकर ही निश्चय करना चाहिये, कि कौनसे भागपर बंद लगाना चाहिये । यदि रक्तस्राव इस प्रकार बंद किया जाय तो ही रोगीको शीघ्र आरोग्य प्राप्त हो सकता है, अन्यथा रक्तके बहुत स्राव होनेके कारण ही मनुष्य मर सकता है । इसलिये इस विषयमें सावधानता रखनी चाहिये ।

इससे पूर्व सूक्तमें शत्रुको गोलीसे मारनेकी सूचना दी है । इस लडाईमें शरीरपर घाव होना संभव है, इसलिये इस रक्तस्रावके बंद करनेके विषयमें इस सूक्तमें उपदेश दिया है " सिकतावती " अर्थात् रेतवाली अथवा शर्करावाली धमनी करनेसे रक्तस्राव बंद होता है । बारीक मिश्रीका बारीक चूर्ण लगानेसे स्राव बंद होता है, यह कथन विचार करनेयोग्य है ।

पति जीवित रहनेपर स्त्रियां बडे बडे समारंभोंमें और उत्सवोंमें जा सकती हैं, उस प्रकार पति मर जानेके पश्चात् वे जा नहीं सकतीं अर्थात् उनकी गति रुक जाती है । पहले उनकी गति सर्वत्र होती थी, परंतु दुर्भाग्य-वश होनेके पश्चात उनका भ्रमण नहीं हो सकता ।

यहां स्त्रीविषयक एक वैदिक मर्यादाका पता लगता है, कि पति मरनेके पश्चात् स्त्री उस प्रकार नहीं घूम सकती कि जैसी पतिके होनेके समय घूम सकती है । घरमें रहना, उत्सवोंके आनंद प्रसंगोंमें न जाना, मंगलोत्सवोंमें भाग न लेना इत्यादि मृतपति स्त्रीके व्यवहार की रीति यहां प्रतीत होती है ।

मृतपतिकी स्त्री भाई होनेपर भाईके घर जा सकती है, भाई न रहनेपर किंवा पिता माता न रहनेपर उनको दुःखमें ही रहना होता है । इस समय वह दुर्भाग्यवती स्त्री परमेश्वर भक्तिसे अपना समय गुजारे और परोपकार का कार्य करे ॥

अन्यान्य रंग मिले जुले हों तो वैसे सब रंगके कपडे पहनती हैं। केवल श्वेत वस्त्र भी विधवा स्त्रियां पहनती हैं, यह श्वेत वस्त्रका रिवाज संपूर्ण भारतवर्षमें एक जैसा ही है।

पाठक इस विषयमें अधिक विचार करें, क्योंकि इस विषयका निश्चय होनेके लिये कई अन्य प्रमाणोंकी आवश्यकता है।

सौभाग्य-वर्धन-सूक्त ।

(१८)

(ऋषिः—द्रविणोदाः । देवता—वैनायकं सौभगम्)

निर्लक्ष्म्यं॑ ललाम्यं१ निरराति सुवामसि ।
अथ या भद्रा तानि नः प्रजाया अरातिं नयामसि ॥ १ ॥
निररणिं सविता साविषक् पदोर्निर्हस्तयोर्वरुणो मित्रो अर्यमा ।
निरस्मभ्यमनुमती रराणा प्रेमां देवा असाविषुः सौभगाय ॥ २ ॥
यत्त आत्मनि तन्वां घोरमस्ति यद्वा केशेषु प्रतिचक्षणे वा ।
सर्वं तद्वाचाप हन्मो वयं देवस्त्वा सविता सूदयतु ॥ ३ ॥
रिश्यपदीं वृषदतीं गोषेधां विधमामुत ।
विलीढ्यं ललाम्यं१ ता अस्मन्नाशयामसि ॥ ४ ॥

अर्थ-(ललाम्यं) सिरपर होनेवाले (लक्ष्म्यं) बुरे चिन्हको (निः) निःशेषतासे दूर करते हैं; तथा (अ-रातिं) कंजूसी आदि (नि सुवामसि) निःशेष दूर करते हैं। (अथ या भद्रा) और जो कल्याणकारक चिन्ह हैं (तानि नः प्रजायै) वे सब हमारी संतानके लिये हम प्राप्त करते हैं और (अरातिं) कंजूसी आदिको (नयामसि) दूर भगाते हैं ॥ १ ॥ सविता, वरुण, मित्र और अर्यमा (पदोः हस्तयोः) पावों और हाथोंकी। (अरणिं) पीडाको (निः नि साविषक्) दूर करें। (रराणा अनुमति) दानशील अनुमतिने (अस्मभ्यं निः) हमारे लिये निःशेष प्रेरणा की है। तथा (देवाः) देवोंने (इमां) इस स्त्रीको (सौभगाय) सौभाग्यके लिये (प्र असाविषुः) प्रेरित किया है ॥ २ ॥ (यत् ते आत्मनि) जो तेरी आत्मामें तथा (तन्वां) शरीरमें (वा यत् केशेषु) अथवा जो केशोंमें (वा प्रतिचक्षणे) अथवा जो दृष्टिमें (घोरं अस्ति) भयानक चिन्ह है (तत् सर्वं) वह सब (वयं वाचा हन्मः) हम वाणीसे हटा देते हैं। (सविता देवः) सविता देव (त्वा सूदयतु) तुझे सिद्ध करे अर्थात् परिपक्व बनावे ॥ ३ ॥ (रिश्यपदीं) हरणके समान पाववाली, (वृषदतीं) बैलके समान दांतवाली, (गोषेधां) गायके समान चलनेवाली, (विधमां) विरुद्ध शब्द बोलनेवाली, जिसका शब्द कठोर है ऐसी स्त्री (उत ललाम्यं विलीढ्यं) और सिरपरका कुलक्षण यह सब हम (अस्मत् नाशयामसि) अपनेसे नाश करते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ-सिरपर तथा शरीरपर जो कुलक्षण होंगे उनको दूर करना चाहिये तथा अंतःकरणमें कंजूसी आदि जो दुर्गुण हैं उनको भी दूर करना चाहिये, और जो सुलक्षण हैं उनको अपने तथा अपने संतानोंके पास स्थिर करना अथवा बढाना चाहिये। तथा कंजूसी आदि मनके बुरे भावोंको हटाना चाहिये ॥ १ ॥ सविता, वरुण, मित्र, अर्यमा, अनुमति आदि सब देव और देवता हाथों और पावोंकी पीडाको दूर करें, इस विषयमें वे हमें उपदेश दें। क्योंकि देवोंने स्त्री और पुरुषको उत्तम भाग्यके लिये ही बनाया है ॥ २ ॥ तुम्हारे आत्मा अथवा मनमें, शरीरमें, केशोंमें तथा दृष्टिमें जो कुछ कुलक्षण हों, जो कुछ भी दुर्गुण हों उनको हम

वचनसे हटाते हैं। परमेश्वर तुम्हें उत्तम लक्षणोंसे युक्त बनावे ॥ ३ ॥ हरिणके समान पांव, बैलके समान दांत, गायकेसमान चलनेकी आदत, कठोर बुरा आवाज होना तथा सिरपरके अन्य कुलक्षण यह सब हमसे दूर हों ॥ ४ ॥

कुलक्षण और सुलक्षण।

इस सूक्तमें शरीरके तथा मन, बुद्धि, आत्मा आदिके भी जो कुलक्षण हों उनको दूर करना तथा अपने आपको पूर्ण सुलक्षणयुक्त बनानेका उपदेश किया है। इस सूक्तमें वर्णित कुलक्षण ये हैं-

(१) ललाम्यं लक्ष्म्यं-सिरपरका लक्षण, कपाल छोटा होना, भालपर बाल होने, बुद्धिहीन दर्शन आदि कुलक्षण। (मंत्र १)

(२) ललाम्यं विलीढ्यं-सिरपर बालोंके गुच्छे रहने और उससे सिरकी शोभाका बिगाड आदि कुलक्षण। (मंत्र ४)

(३) रिश्यपदी—हरिणके समान कृश पांव। (मंत्र ४)

(४) वृषदती-बैलके समान बडे दांत। (मंत्र ४)

(५) गोषेधा—गायके समान चलना। (मंत्र ४)

(६) वि-धमा-कानोंको बुरा लगनेवाला आवाज, जिसका मीठा मंजुल आवाज नहीं। (मंत्र ४)

ये अंतिम (३-६) चार कुलक्षण स्त्रीलिंग निर्देशसे स्त्रियोंके लिये बहुत बुरे हैं अर्थात् स्त्रियोंमें ये न हों। वधू पसंद करनेके समय इन लक्षणोंका विचार करना योग्य है।

(७) केशेषु घोरं—बालोंमें क्रूरता अथवा भयानकता दिखाई देना अर्थात् बालोंके कारण मुख क्रूरसा दीखना। (मंत्र ३)

(८) प्रतिचक्षणे क्रूरं-नेत्रोंमें क्रूरता, भयानक नेत्र, भयानक दृष्टि। (मंत्र ३)

(९) तन्वां क्रूरं-शरीरमें भयानकता, अर्थात् शरीरके अवयवके टेढामेढा होनेके कारण भयानक रूप। (मं. ३)

(१०) आत्मनि क्रूरं-मन, बुद्धि, चित्त, आत्मामें क्रूरताके भाव होना। (मंत्र ३)

(११) अ-राति—कंजूसी, उदारभावका अभाव। (मं १)

(१२) पदो हस्तयो अ-रातिः—पांव और हाथोंकी

इसलिये पाठक इन दोनों सूक्तोंका साथ साथ विचार करें। इन कुलक्षणोंमेंसे कई लक्षण केवल स्त्रियोंमें और कई पुरुषों तथा कई दोनोंमें होंगे। अथवा सब लक्षण न्यूनाधिक भेदसे स्त्रीपुरुषोंमें दिखाई देना भी संभव है।

ये कुलक्षण दूर करना और इनके विरोधी सुलक्षण अपनेमें बढाना हरएकका कर्तव्य है। इन कुलक्षणोंका विचार करनेसे सुलक्षणोंका भी ज्ञान हो सकता है। जिससे शरीर सुडौल दिखाई देता है वे शरीरके सुलक्षण समझने चाहिये। इसी प्रकार इंद्रियों, मन, बुद्धि आत्मा आदिके भी सुलक्षण हैं। इन सबका निश्चित ज्ञान प्राप्त करके अपनेमेंसे कुलक्षण दूर करना और सुलक्षण अपनेमें बढाना हरएकका आवश्यक कर्तव्य है।

वाणीसे कुलक्षणोंको हटाना।

मंत्र ३ में " सर्वं तद्वाचाप हन्मो वयं। " अर्थात् हम ये सब कुलक्षण वाणीसे दूर करते हैं, अथवा वाणीसे इन कुलक्षणोंका नाश करते हैं, कहा है, तथा साथ साथ " देवस्त्वा सविता सुवयतु " अर्थात् सविता देव तुम्हें पूर्ण सुलक्षणयुक्त बनावे, कहा है। परमेश्वर कृपासे मनुष्य सुलक्षणोंसे युक्त हो सकता है, इसमें किसीको संदेह नहीं हो सकता, परंतु वाणीसे कुलक्षणोंको दूर करनेके विषयमें बहुत लोगोंको संदेह होना संभव है, अतः इस विषयमें कुछ स्पष्टीकरणकी आवश्यकता है। वेदमें यह विषय कई सूक्तोंमें आचुका है। इसलिये पाठक इसका खूब विचार करें।

करने योग्य है। "मैं हीन हूं, दीन हूं" आदि विचार जो लोग आज कल बोलते हैं, वे विचार मनमें प्रतिबिंबित होनेसे मनपर कुसंस्कार होनेके कारण हमारी गिरावटके कारण हो रहे हैं। इसलिये शुद्ध वाणीका उच्चारही हमेशा करना चाहिये, कभी भी अशुद्ध गिरे हुए भावोंसे युक्त शब्दोंका उच्चार नहीं करना चाहिये। वाणीकी शुद्ध प्रेरणाके विषयमें साक्षात् उपदेश देनेवाले कई सूक्त आगे आनेवाले हैं, इसलिये इस विषयमें यहां इतना ही लेख पर्याप्त है। अस्तु इस प्रकार शुद्ध वाणीद्वारा और परमेश्वर भक्तिद्वारा अपने कुलक्षणोंको दूर करना और अपने अंदर सुलक्षणोंको बढाना हरएक मनुष्यको योग्य है।

हाथों और पांवोंका दर्द।

द्वितीय मंत्रमें कहा है कि सविता (सूर्य), वरुण (जल), मित्र (प्राणवायु), अर्यमा (आकका पौधा) ये हाथों और पावोंके दर्दको तथा शरीरके दर्दको दूर करें। सूर्यप्रकाश, समुद्र आदिका जल, शुद्ध वायु, आकके पत्तोंका सेक आदिसे बहुतसे रोग दूर हो जाते हैं। इस विषयमें इससे पूर्व बहुत कुछ कहा गया है और आगे भी यह विषय वारंवार आनेवाला है। आरोग्य तो इनसे ही प्राप्त होता है।

सौभाग्यके लिये।

"इमां देवा असाविषुः सौभगाय।" इसको देवोंने सौभाग्यके लिये बनाया है। विशेष करके स्त्रीके उद्देश्यसे यह मंत्रभाग है, परंतु सबके लिये भी यह माना जा सकता है। अर्थात् मनुष्य मात्र स्त्री हो या पुरुष हो वह अपना कल्याण साधन करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ है और वह यदि परमेश्वर भक्ति करेगा तथा शुद्ध वाणीकी सूचनासे अपने मनको प्रभावित करेगा तो अवश्यमेव सौभाग्यका भागी बनेगा। हरएक मनुष्य इस वैदिक धर्मके सिद्धांतको मनमें स्थिर करे। अपनी उन्नतिको सिद्ध करना हरएकके पुरुषार्थपर अवलंबित है। यदि अपनी अवनति हुई है तो निश्चय जानना चाहिये कि पुरुषार्थमें त्रुटी हुई है।

सन्तानका कल्याण

यदि अपनेमें कुछ कुलक्षण रहे भी, तथापि अपनी संतानोंमें सब सुलक्षण आजांय (या भद्रा तानि नः प्रजायै) यह प्रथम मंत्रका उपदेश हरएक गृहस्थीको ध्यानमें धरना चाहिए। अपनी संतान निर्दोष और सुलक्षणोंसे तथा सद्गुणोंसे युक्त बने यह भाव यदि हरएक गृहस्थीमें रहेगा, तो प्रति पुश्तमें मनुष्योंका सुधार होता जायगा और राष्ट्र प्रतिदिन उन्नतिकी सीढीपर चढेगा। यह उपदेश हरएक प्रकारसे कल्याण करनेवाला है इसलिये इसको कोई गृहस्थी न भूले।

इस प्रकार पाठक इस सूक्तका विचार करें और अपने कुलक्षणोंको दूर करके अपने अंदर सुलक्षण बढानेका प्रयत्न करें।

शत्रु-नाशन-सूक्त।

(१९)

(ऋषिः-ब्रह्मा। देवता-ईश्वरः, ब्रह्म)

वाले बाण समूहोंको (अस्मत् आरात् पातय) हमसे दूर गिरा ॥ १ ॥ (ये अस्ताः) जो फेंके हुए और (ये च अस्याः) जो फेंके जायगे, वे सब (विष्वञ्चः शरवः) चारों ओर फैले हुए बाण आदि शस्त्र (अस्मत् पतन्तु) हमसे दूर जाकर गिरें (दैवीः मनुष्येषवः) हे मनुष्योंके दिव्य बाणो ! (मम अमित्रान्) मेरे शत्रुओंको (विविध्यत) वेध कर डालो ॥ २ ॥ (यः नः स्वः) जो हमारा अपना अथवा (यः अरणः) जो दूसरा परकीय हो, किंवा जो (स-जातः) समान उच्च जातिका कुलीन (उत) अथवा जो (निष्टयः) भिन्न जातिवाला या संकर जातिका हीन (अस्मान् अभिदासति) हमपर चढाई करके हमें दास बनानेकी चेष्टा करे, [एतान् मम अमित्रान्] इन मेरे शत्रुओंको [रुद्रः] रुलानेवाला वीर [शरव्यया विविध्यतु] बाणोंसे वेध करे ॥ ३ ॥ [यः] जो [सपत्नः] विरोधी और [यः अ-सपत्नः] जो प्रकट विरोधी नहीं है । [च यः द्विषन्] और जो द्वेष करता हुआ [नः शपाति] हमको शापता है [तं] उसका [सर्वे देवाः] सब देव [धूर्वन्तु] नाश करें । [मम अन्तर वर्म] मेरा आंतरिक कवच [ब्रह्म] ब्रह्मज्ञान ही है ॥ ४ ॥

भावार्थ-हमारे वीरोंका शौर्य ऐसा हो कि हमारा नाश करनेकी इच्छा करनेवाले सब शत्रु हमसे सदा दूर रहें और हमतक वे कभी न पहुंच सकें । उनके शस्त्र भी हमसे दूर रहें ॥ १ ॥ सब शस्त्र हमसे दूर गिरें । और हमारे शत्रुओंपर ही सब शस्त्र गिरते रहें ॥ २ ॥ कोई हमारा मित्र या शत्रु, हमारी जातिवाला या परजातीका, कुलीन या हीन, कोई भी क्यों न हो, यदि वह हमें दास बनाने या हमारा नाश करनेकी चेष्टा करता है तो उसका नाश शस्त्रोंसे करना योग्य है ॥ ३ ॥ जो प्रकट या छिपा हुआ शत्रु हमारा नाश करना चाहता है या हमें बुरे शब्द बोलता है सब सज्जन उसको दूर करें । मेरा आंतरिक कवच सत्य ज्ञान ही है ॥ ४ ॥

यह "सांग्रामिक गण" का सूक्त है, इस कारण "अपराजित गण" के सूक्तोंके साथ भी इसका संबंध है, अतः पाठक इस गणके सूक्तोंके साथ इसका भी विचार करें ।

आन्तरिक कवच ।

इस सूक्तमें जो सबसे महत्व पूर्ण बात कही है वह आंतरिक कवचकी है । देशके कवच पर्वत, दुर्ग और समुद्र होते हैं, इनके होनेके कारण बाहरके शत्रु देशमें घुस नहीं सकते । ग्रामके कवच किले होते हैं इनके कारण शत्रु ग्राममें घुस नहीं सकते । शरीरके कवच लोहेके अथवा तारके बनाये जाते हैं जिनके कारण शत्रुके शस्त्र शरीरपर लगते नहीं और शरीर सुरक्षित रहता है । शरीरके अंदर आत्मा और अंतःकरण है, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार मिलकर अंतःकरण होता है, इनकी साथ आत्माके लिये रहती है । इस "अन्तःकरण" के लिये "अंतः कवच" अवश्य चाहिये, जो इस शत्रुनाशन सूक्तने "ब्रह्म वर्म ममान्तरम्" शब्दोंद्वारा बताया है । "ज्ञानरूप कवच ही मेरा आंतरिक कवच" है । जिसके आत्मा विषयक आस्तिक्य बुद्धियुक्त ज्ञान" इतना अर्थ इस शब्दसे समझना योग्य है ।

इस सूक्तके दो विभाग ।

इस सूक्तके दो विभाग होते हैं, प्रथम विभागमें प्रारंभसे चतुर्थ मंत्रके तृतीय चरणतकके सब मंत्र आते हैं और द्वितीय विभागमें चतुर्थ मंत्रके चतुर्थ चरणका ही समावेश होता है । इन विभागोंको देखकर इस सूक्तका विचार करनेसे बडा बोध मिलता है ।

वैदिकधर्मका साध्य । ब्राह्म कवच ।

शक्तिका ही आश्रय करते हैं।। अतः हम कहते हैं प्रथम विभागके मंत्र पाशवी शक्तिका विचार करते हुए साधारण जनोंका मार्ग बता रहे हैं और द्वितीय विभागका मंत्रभाग आत्मिक दिव्य शक्तिका मानवी अंतिम ध्येय बता रहा है।

"आत्मिक शक्ति या आत्मिक ज्ञान ही मेरा सबसे बडा कवच है, जिससे मैं सब प्रकारके शत्रुओंसे सुरक्षित रह सकता हूं, मेरे अंदर अहिंसाका भाव पूर्ण रूपसे स्थिर रहा, तो जो जो मेरे पास आवेंगे उनके अंदरसे भी शत्रुताका भाव दूर हो जायगा"

इत्यादि वैदिक धर्मकी शिक्षा अन्तिम साध्य है, मनुष्यको यही बात अंतमें स्वीकारनी है, परंतु यह स्वीकार बाह्य दबावसे नहीं होना चाहिये, परंतु अंतःस्फूर्तिसेही होना चाहिये, अपना स्वभाव ही ऐसा बनाना चाहिये। इसी भावसे मनुष्यका सबसे अधिक कल्याण है।

अन्य कवच । क्षात्र कवच ।

शरीरके, नगरोंके तथा देशोंके अन्यान्य कवच उक्त विश्वासके अभावमें आवश्यक होते हैं। स्वसंरक्षणके शस्त्रास्त्र आदि सब इस अवस्थामें ही सहायक हैं। अर्थात् जबतक जनता पूर्वोक्त अधिकारके लिये योग्य नहीं होती, तबतक शूरवीर क्षत्रियगण राष्ट्रका संरक्षण इन शस्त्रास्त्रोंसे करें। ये क्षात्र साधन हैं। ज्ञान कवचसे सुरक्षित होना ब्राह्म साधन है और लोहेके कवचों तथा शस्त्रास्त्रोंसे सुरक्षित होना क्षात्र-साधन है। ब्राह्मसाधन स्वीकारने योग्य जनताकी उन्नति धर्मसाधनसे करनी चाहिये और जबतक उतनी उन्नति नहीं होती, तबतक क्षात्रसाधनसे शत्रुओंका प्रतिकार करना योग्य है। क्षात्रसाधनोंसे युद्धोंके बहुत होनेसे ही मनुष्य इन साधनोंकी क्रूरताका अनुभव करता है और ब्राह्मसाधनको स्वीकारनेका यत्न करता है।

इस प्रकार युद्ध भी मनुष्यको ब्राह्मसाधनतक पहुंचानेवाले मार्गदर्शक बनते हैं।

दासभावका नाश ।

तृतीय मंत्रमें कहा है कि "जो अपना या पराया हमें दास बनाने की चेष्टा करता है उसका नाश करना चाहिये।" राष्ट्रीय पारतंत्र्य शारीरिक दास भावका द्योतक है, इसके अतिरिक्त मानसिक, बौद्धिक तथा वाचिक, पारतंत्र्य भी है और ये सबसे अधिक घातक हैं। किसी प्रकारका भी पारतंत्र्य जो अपने नाशका कारण हो वह स्वीकारना नहीं चाहिये, परंतु उसके कारणको दूर करना चाहिये। आर्योंको दास कभी नहीं बनना चाहिये। स्वाधीनता ही मनुष्यका साध्य है। ज्ञान और पुरुषार्थसे स्वाधीनता-बंधनसे मुक्ति-प्राप्त होती है, इसका भी आशय यही है। मनुष्यके सब दुःख दासत्वके कारण हैं। इसलिये कोई मनुष्य या कोई राष्ट्र दूसरे मनुष्यको या राष्ट्रको दासत्वमें दबानेका यत्न न करे और यदि किसीसे ऐसा प्रयत्न हुआ तो सब मनुष्य उसका विरोध करें।

दासभावको हटानेका उपदेश पाठक इस सूक्तमें विशेष प्रकारसे देखें और उसको अपने जीवनमें घटावें। पाठक इस सूक्तके इस प्रकार विचार करनेसे बहुत ही बोध प्राप्त कर सकते हैं।

महान् शासक ।

(२०)

(ऋषिः—अथर्वा । देवता—सोमः)

अदा॑रसृद् भवतु देव सोमा॒स्मिन्य॒ज्ञे म॑रुतो मृ॒डता॑ नः ।
मा नो॑ विददभि॒भा मो अश॑स्ति॒र्मा नो॑ विदद् वृजि॒ना द्वेष्या॒ या ॥ १ ॥
यो अ॒द्य सेन्यो॑ व॒धोऽघायू॒नामु॒दीर॑ते । यु॒वं तं मि॑त्रावरुणाव॒स्मद्या॑वयतं॒ परि॑ ॥ २ ॥
इ॒तश्च॒ यद॒मुत॑श्च॒ यद्व॒धं व॑रुण यावय । वि म॒हच्छर्म॑ यच्छ॒ वरी॑यो यावया व॒धम् ॥ ३ ॥
शा॒स इ॒त्था म॒हाँ अ॑स्यमित्रसा॒हो अ॑स्तृ॒तः । न यस्य॑ ह॒न्यते॑ सखा॒ न जी॒यते॑ क॒दा च॒न ॥ ४ ॥

अर्थ—हे (देव सोम) सोम देव ! (अ-दार-सृत् भवतु) आपसकी फूट उत्पन्न करनेका कार्य न हो। हे (मरुतः) मरुतो ! (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञमें (नः मृडत) हमें सुखी करो। (अभि-भाः नः मा विदत्) पराभव हमारे पास न आवे, (अशस्तिः मो) अकीर्ति हमें प्राप्त न हो, (या द्वेष्या वृजिना) जो द्वेष बढानेवाले कुटिल कृत्य हैं वे भी (नः मा विदत्) हमारे पास न हों ॥ १ ॥ (अघायूनां) पापमय जीवनवालोंका (यः सेन्यः वधः) जो सेनाके शूर वीरोंसे वध (अद्य उदीरते) आज हो रहा है। हे मित्र और वरुणो ! (युवं) तुम (तं अस्मत् परि यावयतं) उसको हमसे सर्वथा हटा दो ॥ २ ॥ हे (वरुण) सर्व श्रेष्ठ ईश्वर ! (यत् इतः च यत् अमुतः) जो यहांसे और जो वहांसे वध होगा उस (वधं यावय) उसको भी दूर कर दे। (महत् शर्म यिवच्छ) बडा सुख अथवा आश्रय हमें दे और (वधं वरीयः यावय) वधको अतिदूर कर दे ॥ ३ ॥ (इत्था महान् शास) इस प्रकार सत्य और महान् शासक ईश्वर (अ-मित्र-साह अस्तृतः) शत्रुका पराजय करनेवाला और कभी न हारनेवाला (असि) तू है। (यस्य सखा) जिसका मित्र (कदाचन न हन्यते) कभी भी नहीं मारा जाता और (न जीयते) न पराजित होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर ! आपसकी फूट बढानेवाला कोई कार्य हमसे न हो। इस सत्कर्मसे हमें सुख प्राप्त हो। पराजय, अपकीर्ति, अयश, द्वेष और कुटिलता हमारे पास न आवें ॥ १ ॥ हे देव ! शूरवीरोंके द्वारा जो पापियोंके वध हो रहे हैं, वैसे वधोंके प्रसंग भी हमारे अंदर न उत्पन्न हों ॥ २ ॥ हे प्रभु ! हमारे अंदर अथवा दूसरेके अंदर वध करनेका भाव न रहे। वधका भाव ही हम सबसे दूर कर और तेरा बडा आश्रय—सुखपूर्ण आश्रय—हमें दो ॥ ३ ॥ इस रीतिसे तेराही महान् सत्य शासन सबके ऊपर है, तूही सच्चा शत्रुओंका दूर करनेवाला और सर्वदा अपराजित है, तेरा मित्र बनकर जो रहता है न उसका वध कभी होगा और नही उसका कभी पराजय होगा ॥ ४ ॥

पूर्व सूक्तसे संबंध।

पूर्व सूक्तके अंतमें "ईश्वरभक्तियुक्त सत्यज्ञान ही मेरा सच्चा कवच है" यह विशेष बात कही है, उसीका विशेष वर्णन इस सूक्तमें हो रहा है। सबसे पहिले आपसकी फूटको दूर करनेकी सूचना दी है।

आपसकी फूट हटा दो।

"अ-दार-सृत् भवतु" हमारा आचरण फूट हटानेवाला हो, यह इस उपदेशका तात्पर्य है। देखिये—

दार=फूट (दृ=फटना धातु)
दार+सृत=फूटका प्रयत्न, फूटका कार्य।
अ+दार+सृत=फूट हटानेवाला कार्य।

"अ+दार+सृत् भवतु" अर्थात् "आपसकी फूट हटानेवाला कार्य हम सबसे होता रहे।" आपस की फूटके कारण शत्रु हमला करते हैं और शत्रुओंके हमले हो जानेपर हमें शत्रुओंको भगानेका यत्न करना पडता है। इसलिये युद्धका कारण आपस की फूट है। यदि आपसकी फूट न होगी और सब लोग एक मतसे रहेंगे तो दूसरे लोग हमला करनेके लिये भी डरेंगे। जहां आपसमें फूट होती है वहीं शत्रुओंका हमला होता है। इसलिये युद्धोंका कारण आपसकी फूटमें देखना और आपस की फूटको दूर करना चाहिये। राष्ट्रीय सुखकी यही बुनियाद है।

आपसकी फूट हट जानेके पश्चात् ही (मृडत) सुख होनेकी संभावना है। अन्यथा सुखकी आशा नहीं है। आपसकी फूट हटानेसे जो लाभ होगा वह निम्नलिखित प्रकारसे प्रथम मंत्रके उतरार्धमें वर्णन किया है।

१ अभिभा नः मा विदत्=पराजय हमारे पास न आवे,
२ अशस्तिः मो=दुष्कीर्ति हमारे पास न आवे,
३ वृजिना नः मा=कुटिल कृत्य हमसे न हों,
४ द्वेष्या नः मा विदत्=द्वेष भाव हमारे पास न आवें।

जिस समय हम आपसकी फूट हटायेंगे, उस समय हमें किसीके द्वेष करनेका कोई कारण नहीं रहेगा, किसीसे कपटयुक्त कुटिल व्यवहार करनेकी आवश्यकता नहीं पडेगी, हमारा कभी पराभव न होगा अथवा हमपर कोई आपत्ति नहीं आवेगी और हमारी अपकीर्ति भी नहीं होगी, अर्थात् जब हम आपसकी फूट हटाकर अपना उत्तम संगठन करेंगे और एकता के बलसे आगे बढेंगे, उस समय सब लोग हमारे मित्र बनकर हमारे साथ मित्रभावसे व्यवहार करेंगे, हम भी सबके साथ सरल व्यवहार करते जायगे, एकताके कारण हमारा बल बढेगा और उस हेतुसे कभी पराभव नहीं होगा तथा हमारा यश फैलता जायगा। (मंत्र १)

द्वितीय और तृतीय मंत्रमें जो सैनिक वीरोंसे होनेवाले दुष्टोंके संहारका वर्णन है, वह वर्णन भी हमारी आपसकी फूटके कारण ही दुष्ट लोग हमें सताते हैं और उनका वध करनेका प्रयोजन उत्पन्न होता है, अर्थात् यदि हमारा समाज सुसंगठित होगा तो उस वधकी जडही नष्ट होनेसे वह वध भी नहीं होंगे और हमें (महत् शर्म) बडा सुख प्राप्त होगा। "शर्म" शब्दका अर्थ "सुख और आश्रय" है। पूर्वापर संबंधसे यहां परमेश्वरका आश्रय अभीष्ट है। क्योंकि सच्चा सुख भी परमात्माके आश्रयसे ही होता है। (मंत्र. २, ३)

बडा शासक।

एक ईश्वर ही सबसे बडा शासनकर्ता है, उसके ऊपर किसी अन्यका अधिकार नहीं है, सब उसीके शासनमें कार्य करते हैं. वही सर्वोपरि है। वह शत्रुनाशक सच्चा नायक और कभी पराजित न होनेवाला है। यदि ऐसे समर्थ प्रभुका मित्र बनकर कोई रहे तो उसका कभी नाश न होगा, और कभी पराजय भी न होगा। अर्थात् प्रभुका मित्र बनकर व्यवहार करनेवालेका यश सर्वत्र फैलेगा और उसका ही मान सर्वत्र होगा। (मंत्र ४)

पूर्व सूक्तमें जिस "ज्ञान-कवच, ब्रह्म-वर्म" का वर्णन किया है वह ब्रह्म-कवच यही है कि "परमेश्वरका शासन सर्वोपरि मानना और उसका सखा बनकर व्यवहार करना।"

आशा है कि पाठक इस प्रकार प्रभुके मित्र बननेका यत्न करेंगे,

प्रजा-पालक-सूक्त।

(२१)

(ऋषिः-अथर्वा। देवता-इन्द्रः)

स्वस्तिदा विशां पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी। वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयंकरः ॥ १ ॥
वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः। अधमं गमया तमो यो अस्माँ अभिदासति ॥ २ ॥
वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज। वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥ ३ ॥
अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम्। वि महच्छर्म यच्छ वरीयो यावया वधम् ॥ ४ ॥

अर्थ-(स्वस्ति-दा) मंगल देनेवाला, (विशां पतिः) प्रजाओंका पालक, (वृत्र हा) घेरनेवाले शत्रुका नाश करनेवाला, (वि-मृधः वशी) विशेष हिंसकोंको वशमें करनेवाला, (वृषा) बलवान् (सोम पाः) सोमका पान करनेवाला, (अभयं-करः) अभय देनेवाला (इन्द्रः) प्रभु राजा (नः) हमारे (पुरः एतु) आगे चले, हमारा नेता बने ॥ १ ॥ हे इन्द्र! (नः मृधः) हमारे शत्रुओंको (विजहि) मार डाल। (पृतन्यतः) सेनाके द्वारा हमपर हमला चढानेवालोंको (नीचा यच्छ) नीचेही प्रतिबंध कर। (यः अस्मान् अभिदासति) जो हमें दास बनाना चाहता है, या हमारा घात करना चाहता है, उसको (अधमं तमः गमय) हीन अंधकारमें पहुंचा दे ॥ २ ॥ (रक्षः मृधः वि जहि) राक्षसों और हिंसकोंको मार डाल, [वृत्रस्य हनू विरुज] घेरकर हमला करनेवाले शत्रुके दोनों जबडोंको तोड दे। हे (वृत्रहन् इन्द्र) शत्रुनाशक प्रभो! (अभिदासतः अमित्रस्य) हमारा नाश करनेवाले शत्रुके (मन्युं विरुज) उत्साहको तोड दे ॥ ३ ॥ हे (इन्द्र) प्रभो! राजन्! (द्विषतः मनः अप) द्वेषीका मन बदल दे। [जिज्यासतः वधं अप] हमारी आयुका नाश करनेवालेको दूर कर (महत् शर्म वियच्छ) बडा सुख हमें दे और (वधं वरीयः यावय) वधको दूर कर ॥ ४ ॥

भावार्थ—प्रजाजनोंका हित और मंगल करनेवाला, प्रजाओंका उत्तम पालन करनेवाला, घेरकर नाश करनेवाले शत्रुको दूर करनेवाला, बलिष्ठ, सोमपान करनेवाला, प्रजाको अभय देनेवाला राजा ही हमारा अग्रगामी बने ॥ १ ॥ हे राजन्! प्रजाके शत्रुका नाश

कर, सेना लेकर हमला करनेवाले शत्रुको दबा दे, जो घातपात और नाश करना चाहता है उसको भगा दे ॥ २ ॥ हिंसक क्रूर शत्रुओंको मारडाल, वैर कर सतानेवाले दुष्टोंको काट दो, सब प्रकारके शत्रुओंका उत्साह नाश कर दे ॥ ३ ॥ शत्रुओंके मन ही बदल दे अर्थात् वे हमला करनेका विचार छोड दें, नाश करनेवालोंको दूर कर दे, घातपात आदिको दूर कर और सब प्रजाको सुखी कर ॥ ४ ॥

क्षात्रधर्म ।

यह " अभयगण " का सूक्त है। इस सूक्तमें क्षात्रधर्मका उपदेश और राजाके कर्तव्योंका वर्णन है उसका मनन पाठक करें। उत्तम राजाके गुण प्रथम मंत्रमें वर्णन किये हैं। इस मंत्रकी कसौटीसे राजा उत्तम है या नहीं इसकी परीक्षा हो सकती है। अन्य तीन मंत्रोंमें विविध प्रकारके शत्रुओंका वर्णन है और उनका प्रतिकार करनेका उपदेश है। सब प्रकारके अंतर्बाह्य शत्रुओंका प्रतिकार करके प्रजाको अधिकसे अधिक सुखी करना राजाका मुख्य कर्तव्य है। यह सूक्त अति सरल है इसलिये इसका अधिक स्पष्टीकरण आवश्यक नहीं है।

[चतुर्थ अनुवाक समाप्त]

हृदयरोग तथा कामिलारोग

की चिकित्सा

(२२)

(ऋषिः-ब्रह्मा । देवता-सूर्यः, हरिमा, हृद्रोगः)

अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते । गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि ॥ १ ॥
परि त्वा रोहितैर्वर्णैर्दीर्घायुत्वाय दध्मसि । यथाऽयमरपा असदथो अहरितो भुवत् ॥ २ ॥
या रोहिणीर्देवत्याऽ३ गावो या उत रोहिणीः । रूपं-रूपं वयो-वयस्ताभिष्ट्वा परि दध्मसि ॥ ३ ॥
शुकेषु ते हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि । अथो हारिद्रवेषु ते हरिमाणं नि दध्मसि ॥ ४ ॥

अर्थ-(ते हृद्द्योतः च हरिमा) तेरे हृदयकी जलन (और पीलापन सूर्यं अनु उदयताम्) सूर्यके पीछे चला जावे। गौके अथवा सूर्यके (रोहितस्य तेन वर्णेन) उस लाल रंगसे (त्वा परि दध्मसि) तुझे सब प्रकारसे हृष्ट पुष्ट करते हैं ॥ १ ॥ (रोहितैः वर्णैः) लाल रंगोंसे (त्वा) तुझको (दीर्घायुत्वाय परि दध्मसि) दीर्घ आयुके लिये घेरते हैं। (यथा) जिससे (अयं) यह (अ-रपाः असत्) नीरोग हो जाय और (अ-हरितः भुवत्) पीलक रोगसे मुक्त हो जाय ॥ २ ॥ (याः देवत्याः रोहिणीः गावः) जो दिव्य लाल रंगकी गौवें हैं (उत याः रोहिणीः) और जो लाल रंगकी किरणें हैं (ताभिः) उनसे (रूपं रूपं) सुंदरता और (वयः वयः) बलके अनुसार (त्वा परि दध्मसि) तुझे घेरते हैं ॥ ३ ॥ (ते हरिमाणं) पीलक रोगको (शुकेषु रोपणाकासु च) तोते और पौधोंके रंगोंमें (दध्मसि) धारण करते हैं (अथो) और ते (हरिमाणं) तेरा पीलापन हम (हारिद्रवेषु) हरी वनस्पतियोंमें (नि दध्मसि) रख देते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ—यह हृदरोग और पीलक रोग सूर्यकिरणोंके साथ संबंध करनेसे चला जायगा। लाल रंगकी गौ और सूर्यकी लाल किरणें होती हैं, इनके द्वारा नीरोगता हो सकती है ॥ १ ॥ लाल रंगके प्रयोगसे दीर्घ आयुष्य प्राप्त होता है, पीलक रोग

दूर होता है और नीरोगता प्राप्त होती है ॥ २ ॥ लाल रंगकी गौवें और लाल रंगकी सूर्यकिरणें दिव्य गुणोंसे युक्त होती हैं। रूप और बलके अनुसार उनके द्वारा रोगी घेरा जावे ॥ ३ ॥ इस लाल रंगकी चिकित्सासे रोगीका पीलापन तथा फीकापन दूर होगा और वह दूर पक्षी और हरी वनस्पतियोंमें जाकर निवास करेगा, अर्थात् रोगीके पास फिर नहीं आवेगा ॥ ४ ॥

वर्णचिकित्सा।

यह सूक्त " वर्ण चिकित्सा " के महत्त्वपूर्ण विषयका उपदेश दे रहा है। मनुष्यको हृदयका रोग और कामिला नामक पीला रोग कष्ट देते हैं। अपचन, पेटके विकार, तमाखू, मद्यप्राशन आदि अनेक कारण हैं, जिनके कारण हृदयके दोष उत्पन्न होते हैं। तरुण अवस्थामें वीर्यदोष होनेके कारण भी हृदयके विकार उत्पन्न होते हैं। कामिला रोग पित्तके दूषित होनेके कारण उत्पन्न होता है। इन रोगोंके कारण मनुष्य कृश, निस्तेज, पीला दुर्बल और दीन होता है। इसलिये इन रोगोंको हटानेका उपाय इस सूक्तमें वेद बता रहा है। सूर्यकिरणों द्वारा चिकित्सा तथा लाल रंगवाली गौओंके द्वारा चिकित्सा करनेसे उक्त दोष दूर होते हैं और उत्तम स्वास्थ्य मिलता है। सूर्यकिरणें कमरेमें लेकर उसमें नंगे शरीर रहना और शरीरको उलट पुलट करके सब शरीरके साथ लाल रंगके सूर्यकिरणोंका संबंध करना परिधारण विधिका तात्पर्य है।

१ रोहितेन वर्णेन परिदध्मसि। (मंत्र २)
२ दीर्घायुत्वाय परिदध्मसि। (")
३ गो रोहितस्य वर्णेन त्वा परिदध्मसि। (मंत्र १)
४ ताभिष्ट्वा परिदध्मसि। (मंत्र. ३)

ये सब मंत्रभाग रक्त वर्णके सूर्यकिरणोंका स्नान अर्थात् " परिधारण " करनेका विधान कर रहे हैं। रोगीको नंगे शरीर पूर्वोक्त रक्त वर्णके शीशेवाले कमरेमें रखने और उसके शरीरका संबंध रक्त वर्णकी सूर्यकिरणोंके साथ करनेसे यह परिधारण हो सकता है और इससे नीरोगता, दीर्घ आयुष्य-प्राप्ति तथा बलप्राप्ति भी हो सकती है। अन्यान्य रोगोंके निवारणके लिये अन्यान्य वर्णोंके किरणोंकी स्नानोंकी योजना करना चतुर वैद्योंका बुद्धिमत्तापर निर्भर है।

स्थानपर अनारोग्य होगा। अथवा कठोर प्रकृतिवालेको अल्प प्रमाणमें देनेसे उसपर कुछ भी परिणाम न होगा। इस दृष्टिसे तृतीय मंत्रका उत्तरार्ध बहुत मनन करने योग्य है।

रंगीन गौके दूधसे चिकित्सा।

इसी सूक्तमें रंगीन गौके दूधसे रोगीकी चिकित्सा करनेकी विधि भी बता दी है। गौवें सफेद, काली, लाल, भूरी, तमवारी, बादामी तथा विविध रंगके धब्बोंवाली होती हैं। सूर्यकिरणें गौकी पीठपर गिरती हैं और उस कारण रंगके भेदके अनुसार दूधपर भिन्न परिणाम होता है। श्वेत गौके दूधका गुणधर्म भिन्न होगा, काले रंगकी गौका दूध भिन्न गुणधर्मवाला होगा, लाल गौका दूध भिन्न गुणधर्मवाला होगा, उसी प्रकार अन्यान्य रंगवाली गौओंके दूधके गुणधर्म भिन्न होंगे। एक बार वर्ण चिकित्सा का तत्त्व मान्नेपर यह परिणाम मानना ही पडता है। इसीलिये इस सूक्तके मंत्र १ में " रोहिणीः गावः " अर्थात् लाल गौवोंके दूधका तथा अन्यान्य गौरसोंका उपयोग हृदय विकार और कामिला रोगकी निवृत्तिके लिये करनेका विधान है। यह विधान मनन करनेसे बडा बोधप्रद प्रतीत होता है। और इसके मनन करनेसे अन्यान्य रोगोंके लिये अन्यान्य गौवोंके गोरसोंका उपयोग करनेका उपदेश भी प्राप्त होगा वर्ण-चिकित्सा का ही तत्त्व गोदुग्ध चिकित्साके लिये बर्ता जायगा। दोनोंके बीचमें तत्त्व एक ही है।

पथ्य।

वर्ण चिकित्साके साथ साथ गोरस सेवनका पथ्य रखनेसे अत्यधिक लाभ होना संभवनीय है। अर्थात् लालरंगके किरणोंके परिधारण करनेके दिन लाल गौके दूधका सेवन करना, इत्यादि प्रकार यह पथ्य समझना उचित है।

इस प्रकार इस सूक्तका विचार करके पाठक बहुत लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

श्वेतकुष्ठ-नाशन-सूक्त।

(२३)

(ऋषिः-अथर्वा। देवता-ओषधिः)

नक्तंजातास्योषधे रामे कृष्णे असिक्नि च। इदं रजनि रजय किलासं पलितं च यत् ॥ १ ॥
किलासं च पलितं च निरितो नाशया पृषत्। आ त्वा स्वो विशतां वर्णः परा शुक्लानि पातय॥ २ ॥
असितं ते प्रलयनमास्थानमसितं तव। असिक्न्यस्योषधे निरितो नाशया पृषत् ॥ ३ ॥
अस्थिजस्य किलासस्य तनूजस्य च यत्त्वचि। दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा लक्ष्म श्वेतमनीनशम् ॥ ४ ॥

अर्थ- हे रामा कृष्णा और असिक्नि औषधि ! तू (नक्तं जाता असि) रात्रिके समय उत्पन्न हुई है। हे (रजनि) रंग देनेवाली ! (यत् किलासं पलितं च) जो कुष्ठ और श्वेत कुष्ठ है (इदं रजय) उसको रंग दे ॥ १ ॥ (इतः) इसके शरीरसे (किलासं पलितं) कुष्ठ और श्वेत कुष्ठ तथा (पृषत्) धब्बे आदि सब (निः नाशय) नष्ट कर दे। (शुक्लानि परा पातय) श्वेत धब्बे दूर कर दे (स्वः वर्णः) अपना रंग (त्वा) तुझे (आविशतां) प्राप्त हो ॥ २ ॥ (ते प्रलयनं) तेरा लयस्थान (असितं) कृष्ण वर्ण है तथा (तव आस्थानं) तेरा स्थान भी (असितं) काला है, हे औषधे ! तू स्वयं (असिक्नी असि) काले रंगवाली है इसलिये (इतः) यहांसे (पृषत्) धब्बे (निः नाशय) नष्ट कर दे ॥ ३ ॥ (दूष्या कृतस्य) दोषके कारण उत्पन्न हुए (अस्थिजस्य तनूजस्य च) हड्डीसे तथा शरीरसे उत्पन्न हुए (किलासस्य यत् त्वचि श्वेत लक्ष्म) कुष्ठका जो त्वचापर श्वेत चिन्ह है उसको (ब्रह्मणा अनीनशम्) इस ज्ञानसे मैंने नाश किया है ॥ ४ ॥

भावार्थ—रामा कृष्णा असिक्नी ये औषधियां हैं, इनका पोषण रात्रिके समय होता है, इनमें रंग बढानेका सामर्थ्य है।

इसलिये इनके लेपनसे श्वेत कुष्ठ दूर होता है ॥ १ ॥ शरीरपर जो श्वेत कुष्ठके धब्बे होते हैं, उन श्वेत धब्बोंको इस औषधिके लेपनसे दूर कर दे और अपनी चमडीका असली रंग शरीरपर आने दें ॥ २ ॥ यह वनस्पति नष्ट होनेपर भी काला रंग बनता है, उसका स्थान काले रंगका होता है और वनस्पति भी स्वयं काले रंगवाली है, इसी कारण यह वनस्पति श्वेत धब्बोंको दूर कर देती है ॥ ३ ॥ दुराचारके दोषोंसे उत्पन्न, हड्डीसे उत्पन्न, मांससे उत्पन्न हुए सब प्रकारके श्वेत कुष्ठके धब्बोंको इस ज्ञानसे दूर किया जाता है ॥ ४ ॥

श्वेतकुष्ठ।

शरीरका रंग मखमी सा होता है। गोरे कालेका भेद होनेपर भी चमडी का एक विलक्षण रंग होता है। जो रंग नष्ट होनेसे चमडीपर श्वेतसे धब्बे दिखाई देते हैं। उनका नाम ही श्वेत कुष्ठ होता है। यह श्वेत कुष्ठ शरीरपर होनेसे शरीरका सौंदर्य नष्ट होता है और सुडौल सुंदर मनुष्य भी कुरूपसा दिखाई देता है, इसलिये इस(श्वेत लक्ष्म) श्वेत चिन्ह-श्वेत कुष्ठ -दूर करनेका उपाय वेदने यहां बताया है।

निदान।

वेद इस श्वेत कुष्ठके निदान इस सूक्तमें निम्न प्रकार देता है—

(१) दूष्या कृतस्य-दोषयुक्त कृत्य अर्थात् दोषपूर्ण आचरण। सदाचार न होनेसे अथवा आचारविषयक कोई दोष कुलमें रहनेसे यह कुष्ठ होता है। जिस प्रकारसे व्यक्तिदोषसे तथा कुलके दोषसे भी यह कुष्ठ होता है।

(२) अस्थिजस्य—अस्थिगत दोषसे यह होता है।

(३) तनूजस्य—शारीरिक अर्थात् मांसके दोषसे होता है।

(४) त्वचि-चमडीके अंदर कुछ दोष होनेसे भी यह होता है।

ये दोष सबके सब हों या इनमेंसे थोडे हों यह कुष्ठ हो जाता है।

दो भेद और उनका उपाय।

इस कुष्ठमें दो भेद होते हैं, एक किलास और दूसरा पलित। पलित शब्दसे केवल श्वेतत्वका ही बोध होता है इस कारण यह श्वेत धब्बोंका वाचक स्पष्ट है। इसको छोडकर दूसरे कुष्ठका नाम किलास प्रतीत होता है, जिसमें चमडी विरूपसी बनती है। सुयोग्य वैद्य इन शब्दोंका अर्थ निश्चय करें।

" रामा, कृष्णा, असिक्नी " इन औषधियोंका इस कुष्ठपर उपयोग होता है। ये नाम निश्चयसे किन औषधियोंके बोधक हैं और किन औषधियोंका उपयोग इस कुष्ठके निवारण करनेके लिये हो सकता है, यह निश्चय केवल शब्द शास्त्र नहीं कर सकता; न यह विषय केवल कोशोंकी सहायतासे हल हो सकता है। इस विषयमें केवल सुयोग्य वैद्य ही निश्चित मत दे सकते हैं, तथा वे ही योग्य मार्गसे खोज कर सकते हैं। इसलिये इस लेखद्वारा वैद्योंको प्रेरणा देना ही यहां हमारा कार्य है। वेदमें बहुत विद्याएं होनेसे अनेक विद्याओंके पंडित विद्वान मिलनेपर ही वेदकी खोज हो सकती है। अतः सुयोग्य वैद्योंको आयुर्वेदविषयक वेदभागकी खोज लगानी चाहिये और यह प्रत्यक्ष विषय होनेसे इन औषधादिका प्रयोग करके ही इसका सप्रयोग प्रतिपादन करना चाहिये। आशा है कि वैद्य और डाक्टर इस विषयमें योग्य सहायता देंगे।

रंगका घुसना।

कई लोग समझते हैं कि ऊपर ही ऊपर वनस्पतिका रस आदि लगानेसे चमडीका ऊपरका रंग बदल जाता है, परंतु यह सत्य नहीं है। इस सूक्तके द्वितीय मंत्रमें—

आ त्वा स्वो विशतां वर्णः।

" अपना रंग अंदर घुस जाय " यह मंत्रभाग बता रहा है कि इन औषधियोंका परिणाम चमडीके अंदर ही होना अभीष्ट है, न कि केवल ऊपर ही ऊपर। ऊपर परिणाम हो परंतु " विशतां " क्रिया " अंदर घुसने " का भाव बता रही है। इसलिये चमडीके अंदर रंग घुस जाता है और वहां वह स्थिर हो जाता है। यह मंत्रका कथन स्पष्ट है।

औषधियोंका पोषण।

औषधियोंका पोषण दिनके समय होता है या रात्रिके समय, यह प्रश्न बडे शास्त्रीय महत्त्वका है। औषधियोंका राजा सोम-चंद्र-है, इसलिये औषधियोंका पोषण और वर्धन रात्रिके समय होता है। यही बात " नक्तं जाता " शब्दोंने इस सूक्तमें बतायी है। रात्रिके समय बनी बढी या पुष्ट हुई औषधि होती है। प्रायः सभी औषधियोंके संबंधमें यह बात सत्य है ऐसा हमारा ख्याल है। वनस्पति विद्या जाननेवाले लोग इस कथनका अधिक विचार करें।

" सौभाग्य-वर्धन " के (१८ वें) सूक्तमें सौंदर्यवर्धनका उपदेश दिया है, इसलिये उस कार्यके लिये श्वेत कुष्ठ यदि किसीको हो, तो उसको दूर करना आवश्यक ही है। अतः पाठक इस सूक्तको पूर्वोक्त १८ वें सूक्तके साथ पढें। आशा है कि पाठक इस प्रकार पूर्वापर सूक्तोंका संबंध देखकर सूक्तार्थसे अधिकसे अधिक लाभ उठावें।

कुष्ठ-नाशन सूक्त।

(२४)

(ऋषिः-ब्रह्मा । देवता-आसुरी वनस्पतिः ।)

सुपर्णो जातः प्रथमस्तस्य त्वं पित्तमासिथ । तदासुरी युधा जिता रूपं चक्रे वनस्पतीन् ॥ १ ॥
आसुरी चक्रे प्रथमेदं किलासभेषजमिदं किलासनाशनम् । अनीनशत्किलासं सरूपामकरत्त्वचम् ॥ २ ॥
सरूपा नाम ते माता सरूपो नाम ते पिता । सरूपकृत्त्वमोषधे सा सरूपमिदं कृधि ॥ ३ ॥
श्यामा सरूपंकरणी पृथिव्या अध्युद्भृता । इदमू षु प्र साधय पुना रूपाणि कल्पय ॥ ४ ॥

अर्थ-सुपर्ण (प्रथमः जातः) सबसे पहिले हुआ (तस्य पित्तं) उसका पित्त (त्वं आसिथ) तूने प्राप्त किया है। (युधा जिता) युद्धसे जीती हुई वह आसुरी (वनस्पतीन्) वनस्पतियोंको (तत् रूपं चक्रे) वह रूप करती रही ॥ १ ॥ (प्रथमा आसुरी) पहिली आसुरीने (इदं किलास-भेषजं) यह कुष्ठका औषध (चक्रे) बनाया। (इदं) यह (किलास-नाशनं) कुष्ठ रोगका नाश करनेवाला है। इसने (किलासं) कुष्ठका (अनीनशत्) नाश किया और (त्वचं) त्वचाको (स-रूपां) समान रंगवाली (अकरत्) बना दिया ॥ २ ॥ हे औषधे तेरी माता (सरूपा) समान रंगवाली है तथा तेरा पिता भी समान रंगवाला है। इसलिये (त्वं स-रूप-कृत्) तू भी समानरूप करनेवाली है (सा) वह तू (इदं सरूपं) इसको समान रंगरूपवाला (कृधि) कर ॥ ३ ॥ श्यामा नामक वनस्पति (सरूपं-करणी) समान रूपरंग बनानेवाली है। यह (पृथिव्या अध्युद्भृता) पृथ्वीसे उखाडी गई है। (इदं उ सु प्रसाधय) यह कर्म ठीक प्रकार सिद्ध कर और (पुनः रूपाणि कल्पय) फिर पूर्ववत् रंगरूप बना दे ॥ ४ ॥

भावार्थ—सुपर्ण नाम सूर्य है उसकी किरणोंमें पित्त बढानेकी शक्ति है। सूर्यकिरणों द्वारा यह पित्त वनस्पतियोंमें संचित होता है। योग्य उपायोंसे स्वाधीन बनी हुई वनस्पतियां रूप रंगका सुधार करनेमें सहायक होती हैं ॥ १ ॥ आसुरी वनस्पतिसे कुष्ठ रोगके लिये उत्तम औषध बनता है। यह निश्चयसे कुष्ठ रोग दूर करती है और इससे शरीरकी त्वचा समान रंग रूपवाली बनती है ॥ २ ॥ जिन पौधोंके संयोगसे यह वनस्पति बनती है, वे पौधे (अर्थात् इसके माता पितारूपी पौधे भी) शरीरका रंग सुधारनेवाले हैं। इसलिये यह वनस्पति भी रंगका सुधार करनेमें समर्थ है ॥ ३ ॥ यह श्यामा वनस्पति शरीरकी चमडीका रंग ठीक करनेवाली है। यह भूमिसे उखाडी हुई यह कार्य करती है। अतः इसके उपयोगसे शरीरका रंग सुधारा जाय ॥ ४ ॥

वनस्पतिके माता पिता।

इस सूक्तके तृतीय मंत्रमें वनस्पतिके मातापिताओंका वर्णन है अर्थात् दो वनस्पतियोंके संयोगसे बननेवाली यह तीसरी वनस्पति है। दो पौधोंके कलम जोडनेसे तीसरी वनस्पति विशेष गुणधर्मसे युक्त बनती है, यह उद्यानशास्त्र जाननेवाले जानते ही हैं। कुष्ठनाशक श्यामा आसुरी वनस्पति इस प्रकार बनायी जाती है। शरीरके रंगका सुधार करनेवाली दो वनस्पतियोंके संयोगसे यह श्यामा बनती है। जो आधारभूत पौधा है उसके ऊपर

नाम माता और जिसकी शाखा उसपर चिपकायी या जोडी जाती है वह उसका पिता तथा उस संयोगसे जो नयी वनस्पति बनती है वह उक्त दोनोंका पुत्र है। पाठक इस उद्यान-विद्याको इस मंत्रमें देखें। (मंत्र ३)

सरूप-करण।

शरीरके वास्तविक रंगके समान कुष्ठरोगके स्थानके चमडेका रंग बनाना "सरूपकरण" का तात्पर्य है आसुरी श्यामा वनस्पति यह करती है इसीलिये कुष्ठरोगपर इसका उपयोग होता है। (मं. २-३)

वनस्पतिपर विजय।

"सुपर्णसे जीती हुई आसुरी वनस्पति औषध बनाती है।" यह प्रथम मंत्रका कथन विशेष मननीय है। वैद्यको हरएक दवापर इस प्रकार प्रभुत्व संपादन करना पडता है। औषधि उसके हाथमें अनेकों आवश्यकता है। वनस्पतिके गुणधर्मोंका पूर्ण परिचय और उनका उपयोग करनेका उत्तम ज्ञान वैद्यको होना आवश्यक है। नहीं तो औषध सिद्ध नहीं कहा जा सकता। (मं. १)

सूर्यका प्रभाव।

सूर्यमें नाना प्रकारके वीर्य हैं। वे वीर्य किरणों द्वारा वनस्पतियोंमें जाते हैं। वनस्पतिद्वारा वे ही वीर्य प्राप्त होते हैं और रोगनाश अथवा बलवर्धन करते हैं। इस प्रकार यह सब सूर्यका ही प्रभाव है। (मं. १)

सूर्यसे वीर्य-प्राप्ति।

सूर्यसे नाना प्रकारके वीर्य प्राप्त करनेकी यह सूचना बहुत ही मनन करने योग्य है।

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। (ऋग्वेद १।११५।१)

" सूर्य ही स्थावर जंगम का आत्मा है " यह वेदका उपदेश भी यहां मनन करना चाहिये। जब सूर्यसे नाना प्रकारसे वीर्य प्राप्त करके हम अधिक वीर्यवान हो जायगे तभी यह मंत्रभाग हमारे अनुभवमें आ सकता है।

नंगे शरीर सूर्यकिरणोंमें विचरनेसे और सूर्यकिरणोंद्वारा अपनी चमडी अच्छी प्रकार तपानेसे शरीरके अंदर सूर्यका जीवन संचारित होता है इसी प्रकार सूर्यसे तपा हुआ वायु प्राणायमसे अंदर लेनेके अभ्याससे क्षयरोगमें भी बडा लाभ पहुंचता है। इसी प्रकार कई रीतियोंसे हम सूर्यसे वीर्य प्राप्त कर सकते हैं। पाठक स्वयं इसका अधिक विचार करेंगे तो उनको बहुत बोध प्राप्त हो सकता है।

वैद्योंको उचित है, कि वे खोजसे श्यामा वनस्पतिको प्राप्त करें और उसके योगसे कुष्ठ रोग दूर करें। तथा सूर्यसे अनेक वीर्य प्राप्त करनेके उपाय ढूंढकर निकाल दें और उनका उपयोग आरोग्य बढानेमें करते रहें।

शीत-ज्वर-दूरीकरण सूक्त।

(२५)

(ऋषिः भृग्वङ्गिराः। देवता—अग्निः, तक्मा।)

यद॒ग्निरापो॒ अद॑हत्प्र॒विश्य॒ यत्राकृ॑ण्वन् धर्म॒धृतो॒ नमां॑सि।
तत्र॑ त आहुः पर॒मं ज॒नित्रं॒ स नः॑ संवि॒द्वान् परि॑ वृङ्धि तक्मन् ॥ १ ॥

यद्य॒र्चिर्यदि॒ वासि॑ शो॒चिः शकल्ये॒षि यदि॑ वा ते ज॒नित्र॑म्।
ह्रूडु॒र्नामा॑सि हरितस्य देव॒ स नः॑ संवि॒द्वान् परि॑ वृङ्धि तक्मन् ॥ २ ॥

यदि॑ शो॒को यदि॑ वाऽभिशो॒को यदि॑ वा॒ राज्ञो॒ वरु॑णस्यासि॑ पु॒त्रः।
ह्रूडु॒र्नामा॑सि हरितस्य देव॒ स नः॑ संवि॒द्वान् परि॑ वृङ्धि तक्मन् ॥ ३ ॥

नमः॑ शी॒ताय॑ त॒क्मने॒ नमो॑ रू॒राय॑ शो॒चिषे॑ कृणोमि ।
यो अ॑न्येद्यु॒रु॑भय॒द्युर॒भ्येति॑ तृ॒तीय॑काय॒ नमो॑ अस्तु त॒क्मने॑ ॥ ४ ॥

अर्थ—(यत्र) जहां (धर्म-धृतः) धर्मका पालन करनेवाले सदाचारी लोग (नमांसि कृण्वन्) नमस्कार करते हैं, वहां (प्रविश्य) प्रवेश करके (यत् अग्निः) जो अग्नि (आपः अदहत्) प्राणधारक जलतत्त्वको जलाता है (तत्र) वहां (ते परमं जनित्रं) तेरा परम जन्म स्थान है, ऐसा (आहुः) कहते हैं। हे (तक्मन्) कष्ट देनेवाले ज्वर! (सः संविद्वान्) जानता हुआ तू (नः परि वृंग्धि) हमको छोड दे ॥ १ ॥ (यदि अर्चिः) यदि तू ज्वालारूप, (यदि वा शोचिः असि) अथवा यदि तापरूप हो, (यदि ते जनित्रं) यदि तेरा जन्म स्थान (शकल्य इषि) अंगप्रत्यंगमें परिणाम करता है, तो तू (ह्रूडुः नाम असि) ह्रूडु [अर्थात् गति करनेवाला] इस नामका है। अतः हे (हरितस्य देव तक्मन्) पीलक रोगको उत्पन्न करनेवाले ज्वर देव! (सः संविद्वान्) वह तू यह जानता हुआ (नः परि वृंग्धि) हमें छोड दे ॥ २ ॥ (यदि शोकः) यदि तू पीडा देनेवाला अथवा (यदि अभि शोकः) यदि सर्वत्र पीडा उत्पन्न करनेवाला हो, (यदि वरुणस्य राज्ञः पुत्रः असि) किंवा वरुण राजाका तू पुत्र ही क्यों न हो, तुम्हारा नाम ह्रूडु है। हे पीलक रोगके उत्पन्न करनेवाले ज्वर देव! तू हम सबको यह जानकर छोड दे ॥ ३ ॥ (शीताय तक्मने नमः) शीत ज्वरके लिये नमस्कार, (रूराय शोचिषे नमः कृणोमि) रूखे तापको भी नमस्कार करता हूं। (यः अन्येद्युः) जो एक दिन छोडकर आनेवाला ज्वर है, (उभयद्युः) जो दो दिन आनेवाला (अभ्येति) होता है, जो (तृतीयकाय) तिजारी है, उस (तक्मने नमः अस्तु) ज्वरके लिये नमस्कार होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ-धार्मिक लोग जहां प्राणायामद्वारा पहुंचते और प्राणशक्तिका महत्त्व जानकर उसको प्रणाम भी करते हैं उस प्राणके मूलस्थानमें पहुंचकर यह ज्वरका अग्नि प्राणधारक आप् तत्त्वको जला देता है। यही इस ज्वरका परम स्थान है। यह जानकर इससे मनुष्य बचे ॥ १ ॥ यह ज्वर बहुत जोरकी तपिश चढानेवाला हो किंवा अंदर ही अंदर तपनेवाला हो, किंवा हरएक अंग-प्रत्यंगको कमजोर करनेवाला हो, वह हरएक जीवनके अणुको हिला देता है इसलिये इसको " ह्रूडु " कहते हैं, यह पांडुरोग अथवा कामिला रोगको उत्पन्न करता है, यह जानकर हरएक मनुष्य इससे अपना बचाव करे ॥ २ ॥ कई ज्वर विशेष अंगमें दर्द उत्पन्न करते हैं और कई संपूर्ण अंगप्रत्यंगोंमें पीडा उत्पन्न करते हैं, जलराज वरुणसे इसकी उत्पत्ति होती है, यह हरएक अंगप्रत्यंगको हिला देता है और पीलक रोग शरीरमें उत्पन्न कर देता है। इसलिये हरएक मनुष्य इससे बचता रहे ॥ ३ ॥ शीत ज्वर, रूक्ष ज्वर, प्रतिदिन आनेवाला, एकदिन छोडकर आनेवाला, दो दिन छोडकर आनेवाला, तीसरे दिन आनेवाला ऐसे अनेक प्रकारके जो ज्वर हैं उनको नमस्कार हो अर्थात् ये हम सबसे दूर रहें ॥ ४ ॥

अग्निः आपः अदहत् ॥ (मंत्र १)

"यह ज्वर जीवनरसको ही जला देता है।" इसी कारण ज्वरसे शरीरकी शक्ति कम होती है। आप् तत्त्व प्राणशक्तिका धारण करनेवाला है। (आपोमयः) आप् तत्त्वमय प्राण है यह उपनिषदोंका कथन है। प्राणके आश्रयका शरीरस्थ आप् तत्त्व इस ज्वरके द्वारा जल जाता है, इसी कारण ज्वर आनेपर जीवन शक्ति कम हो जाती है। इसी कारण इस ज्वरको पीलक रोगका उत्पादक कहा है। देखिये—

हरितस्य देव! (मंत्र २, ३)

"पीलापन उत्पन्न करनेवाला" पीला निस्तेज बननेवाला, पीलकरोग, कामिला, पांडुरोग, जीवनरसका क्षय करनेवाला रोग इन सबका उत्पादक ज्वर है। यह ज्वर इतने भयानक रोगोंको उत्पन्न करनेवाला है, इसीलिये इससे मनुष्यको अपने आपका बचाव करना चाहिये। यह ज्वर प्राणको मूल स्थानपर हमला करके उसीको कमजोर करता है। इस विषयमें यह मंत्र देखिये-

> यदग्निरापो अदहत् प्रविश्य यत्राकृण्वन्
> धर्मधृतो नमांसि ॥ [मंत्र १]

"जहां धार्मिक लोग जाकर मनन करते हैं वहां प्रविष्ट होकर यह अग्नि-ज्वर-प्राण धारक जीवनरसको जलाता है।"

योगादि साधनद्वारा धार्मिक लोग समाधि अवस्थामें हृदय कमलमें प्रविष्ट होते हैं, उसी हृदयमें जीवनका रस है, वही रस ज्वरसे जलता है। अर्थात् ज्वरका हृदयपर बहुत बुरा परिणाम होता है, जिससे बहुत कमजोरी भी उत्पन्न होती है। इसी कारण यह ज्वर पीलक रोग अथवा पांडुरोग उत्पन्न करता है ऐसा सूक्तके द्वितीय मंत्रमें कहा है। यह हिमज्वर जिसको आजकल "मलेरिया" कहा जाता है बहुत बहुत ही हानिकारक है। इसलिये उसको हरएक प्रयत्नसे दूर रखना चाहिये, यही निम्नलिखित मंत्रभागमें सूचित किया है—

स नः संविद्वान् परिवृंग्धि तक्मन् ॥ (मंत्र १, २, ३)

"यह बात जानता हुआ ज्वर दूर रखा जाय" अर्थात् ज्वरके कारण दूर करके उसका हमला मनुष्यपर न हो इस विषयमें योग्य प्रयत्न किये जांय। ज्वर आनेके बाद उसके प्रतिबन्धक यत्न करना चाहिये इसमें किसीका विवाद नहीं हो सकता, परंतु इस सूक्तद्वारा वेद यही उपदेश देना चाहता है, कि अपने घरकी और ग्रामकी व्यवस्था मनुष्य इस प्रकार रखे कि यह मलेरिया ज्वर आवेही न और उसके निवारणके लिये दवाइयां पीनी न पडें। क्योंकि यह ज्वर इतना घातक है कि एक बार आया हुआ हिमज्वर अपना परिणाम स्थिर रूपसे शरीरमें रख जाता है और उसके निवारणके लिये पर्याप्तक और बडे व्ययसे यत्न करने आवश्यक होते हैं।

हिमज्वरके नाम।

इस सूक्तमें हिमज्वरके निम्नलिखित नाम दिये हैं—

१ ह्रूडु-गति उत्पन्न करनेवाला, शरीरमें कंप उत्पन्न करनेवाला, ज्वरका शीत जिस समय प्रारंभ होता है, उस समय मनुष्य कांपने लगता है। मराठी भाषामें इस हिम ज्वरका नाम "हुडहुडा ताप" है, यह शब्द भी वैदिक "ह्रूडु" शब्दके साथ मिलता जुलता है। यही शब्द विभिन्न हस्तलिखित पुस्तकोंमें निम्नलिखित प्रकार लिखा हुआ मिलता है-ह्रूडु, ह्रुडु ह्रूडु, हुडु, रुडु, ह्रूडु, रुडु, "ह्रुडु"। अथर्ववेदकी पिप्पलाद शाखा की संहितामें "हुडु" पाठ है। यह "ह्रूडु" शब्द मराठी "हुडहुडा" शब्दकेही सदृश शब्द है। (मंत्र २, ३)

२ शीतः-जो ज्वर शीत लग कर प्रारंभ होता है ॥ यह प्रतिदिन आनेवाला समझना उचित है। (मंत्र ४)

३ अन्येद्यु.-एक दिन छोडकर आनेवाला। (मं० ४)

४ उभयद्यु-दूसरे दिन आनेवाला अथवा दो दिन छोडकर आनेवाला। (मं० ४)

५ तृतीयक-तीसरे दिन आनेवाला किंवा तीन दिन छोडकर आनेवाला अथवा नियत दिन बीचमें छोडकर आनेवाला। (मं० ४)

६ तक्मा.०-जीवन दुःखमय बनानेवाला ज्वर।

७ अर्चिः-अग्निकी ज्वालाएं भडकनेके समान जिसकी उष्णता बाहर बहुत होती है। (मं० २)

८ शोचिः, शोकः-जिससे शरीरमें पीडा होती है (मं० २)

९ शकल्य-इषि-अंग-प्रत्यंग अलग अलग होनेके समान शिथिलता आती है। (मं० २)

१० अभिशोकः-जिसमें सब शरीर बडा दर्द करता है। (मं० ३)

इन नामोंका विचार करनेसे इस ज्वरके स्वरूपका पता लग सकता है और निश्चय होता है कि यह वर्णन शीतज्वर जिसे मलेरिया आजकल कहते हैं उसका ही है।

घरके पास जल सडता न रहे, घरके पासकी भूमि अच्छी रहे और किसी भी स्थानमें इस रोगकी उत्पत्ति होने योग्य परिस्थिति न हो, इसी प्रकार ग्राममें और ग्रामके आसपास भी

स्थान योग्य और आरोग्य कारक हों, जिससे यह रोग उत्पन्न ही न होगा। क्योंकि यह ज्वर जलके दलदलसे उत्पन्न होता है। इसीलिये "जल देवताका पुत्र" इसका एक नाम इसी सूक्तमें दिया है। यदि पाठक इसका योग्य विचार करेंगे तो उनको इससे बचनेका उपाय ज्ञात हो सकता है। आशा है कि वे इसका विचार करेंगे और अपने आपको इससे बचायेंगे॥

नमः शब्द।

इस सूक्तके अंतिम मंत्रमें "नमः" शब्द तीनवार आया है। यहांका यह नमनवाचक शब्द घातक मनुष्यको दूर रखनेके लिये किये जानेवाले नमस्कारके समान उस ज्वरसे बचनेका भाव सूचित करता है ऐसा हमारा ख्याल है। कोशोंमें "नमस्कर, नमस्कारी" शब्द औषधियोंके भी वाचक हैं। यदि "नमः" शब्दसे किसी औषधीका बोध होता हो तो वह खोज करना चाहिये। "नमः" शब्दके अर्थ "नमस्कार, अन्न, शस्त्र, दण्ड" इतने प्रसिद्ध हैं, "नमस्करी, नमस्कार, नमस्कारी" ये शब्द औषधियोंके भी वाचक हैं। अतः इस विषयका अन्वेषण वैद्य लोग करें।

सुख प्राप्ति सूक्त।

(२६)

(ऋषिः—ब्रह्मा। देवताः— इंद्रादयः)

आरे॒ ३ सावस्मद॑स्तु हे॒तिर्दे॑वासो असत्। आ॒रे अश्मा॒ यमस्य॑थ ॥ १ ॥
स॒खासाव॒स्मभ्य॑मस्तु रा॒तिः सखेन्द्रो॒ भगः॑ सवि॒ता चि॒त्ररा॑धाः ॥ २ ॥
यू॒यं नः॑ प्रवतो नपा॒न्मरु॑तः सूर्य॑त्वचसः। शर्म॑ यच्छाथ स॒प्रथाः॑ ॥ ३ ॥
सु॒षू॒दत॑ मृ॒डत॑ मृ॒डया॑ नस्त॒नूभ्यो॒ मय॑स्तो॒केभ्य॑स्कृधि ॥ ४ ॥

अर्थ-हे (देवासः) देवो! (असौ हेतिः) यह शस्त्र (अस्मत् आरे अस्तु) हमसे दूर रहे। और (यं अस्यथ) जिसे तुम फेंकते हो वह (अश्मा आरे असत्) पत्थर भी हमसे दूर रहे॥ १॥ (असौ रातिः) यह दानशील, (भगः) धनयुक्त सविता, (चित्रराधः इन्द्रः) विशेष ऐश्वर्यसे युक्त इन्द्र हमारा (सखा अस्तु) मित्र होवे॥ २॥ हे (प्रवतः नपात्) अपने आपका रक्षण करनेवालेको न गिरानेवालो! हे (सूर्यत्वचसः मरुतः) सूर्यके समान तेजस्वी मरुत् देवो! (यूयं) तुम (नः) हमारे लिये (सप्रथः शर्म) विस्तृत सुख (यच्छाथ) दो॥ ३॥ (सुषूदत) तुम हमें आश्रय दो, (मृडत) हमें सुखी करो, (नः तनूभ्यः मृडय) हमारे शरीरोंको आरोग्य दो तथा (तोकेभ्यः मयः कृधि) बालबच्चोंके लिये आनन्द करो॥ ४॥

भावार्थ-हे देवो! आपका दंडरूप शस्त्र आदि हमारे ऊपर प्रयुक्त होनेका अवसर न आवे, अर्थात् हमसे ऐसा कोई कार्य न हो कि जिसके लिये हम दण्डके भागी बनें॥ १॥ इन्द्र सविता भग आदि देवगण हमारे सहायक हों॥ २॥ मरुत देव हमारा सुख बढावें॥ ३॥ सब देव हमें उत्तम आधार दें, हमारे शरीरका आरोग्य बढावें, हमारे मनकी शांति स्थापित करें, हमारे बाल बच्चोंको कुशल रखें और सब प्रकारसे हमारा आनंद बढावें॥ ४॥

देवोंसे मित्रता।

इन्द्र, सविता, भग, मरुत आदि देवोंसे मित्रता करनेसे सुख मिलता है और उनके प्रतिकूल आचरण करनेसे दुःख प्राप्त होता है। इसलिये प्रथम मंत्रमें प्रार्थना है कि उन देवोंका दंड हमपर न चले, और दूसरे मंत्रमें प्रार्थना है कि ये सब देव हमारे मित्र हमारे सहायक बनकर हमारा सुख बढावें, अथवा हमारा ऐसा आचरण बने कि ये हमारे सहायक बनें और विरोधी न हों। देखिये इसका आशय क्या है—

१ सविता-सूर्यदेव है, यह स्वयं मित्रता करनेके लिये हमारे पास नहीं आता है, परन्तु सवेरे उदय होनेके समयसे अपना हाथ हमारे पास भेजता है और हमसे मिलना चाहता है, परंतु पाठक ही ख्याल करें कि हम अपने आपको तंग मकानोंमें बंद रखते हैं, और सविता देवके पवित्र हाथके पास जाते ही नहीं। सूर्य ही आरोग्य की देवता है, उसके साथ इस प्रकार विरोध करनेसे उसका वज्राघात हमपर गिरता है जिससे नाना रोगके दु:खोंमें गिरना आवश्यक होता है।

२ मरुत् नाम वायु देवता का है। यह वायुदेव भी हमारी सहायता करनेके लिये हरएक स्थानमें हमारे पहिलेसे ही उपस्थित है, परन्तु हम खुली हवा सेवन नहीं करते हैं, परिशुद्ध वायु हमारे घरों और कमरोंमें आवे ऐसी व्यवस्था नहीं करते, इतना ही नहीं परन्तु वायुको बिगाडनेके अनंत साधन निर्माण करते हैं। इत्यादि कारणोंसे वायु देवताका क्रोध हमपर होता है और उनका वज्राघात हमें सहन करना पडता है। जिससे विविध बीमारियां वायुके क्रोधसे हमें सता रहीं हैं।

इसी प्रकार अन्यान्य देवोंका संबंध जानना उचित है। इस विषयमें अथर्ववेद स्वाध्याय कां० १ सूक्त ३, ९ देखिये, इन सूक्तोंके स्पष्टीकरणके प्रसङ्गमें देवताओंसे हमारे संबंधका वर्णन किया है। इसलिये इस सूक्तके साथ उन सूक्तोंका संबंध अवश्य देखना चाहिये।

जिस प्रकार ये महा देवताएं हमारे मित्र बनकर रहनेसे भी हमारा स्वास्थ्य और सुख बढ सकता है, उसी प्रकार उनके प्रतिनिधि-जो हमारे शरीरमें स्थान स्थानमें रहे हैं उनको मित्र बनाकर रखनेसे भी हमारा स्वास्थ्य और आरोग्य रह सकता है, इस विषयमें अब थोडासा विवरण देखिये—

१ सविता सूर्य देव आकाशमें है, उसीका प्रतिनिधि अंशरूप से हमारी आंखमें तथा नाभिस्थानके सूर्यचक्रमें रहा है। क्रमशः इनके काम दर्शनशक्ति और पाचनशक्तिके साथ संबंधित हैं। पाठक यहां अनुभव करें कि ये देव यदि हमारे मित्र बनकर रहें तो ही स्वास्थ्य और आरोग्य रह सकता है। यदि आंख किसी समय धोखा देवे, अथवा रूपके विषयमें प्रवीण होकर हान मार्गमें इस मनुष्यको ले चले, तो उससे प्राप्त होनेवाली शरीर का कष्टमय दशा की कल्पना पाठक ही कर सकते हैं। इसी प्रकार पेटकी पाचन शक्ति ठीक न रहनेसे कितने रोग उत्पन्न हो सकते हैं, इसका ज्ञान पाठकोंसे छिपा नहीं है। अर्थात् शरीरस्थानीय सूर्य सविताके अंश रूप देव के सखा बनकर न रहनेसे मनुष्यकी आपत्तियोंकी संख्या कितनी बढ सकती है इसका पाठक ही विचार करें।

२ इसी प्रकार मरुत् वायु देव फेंफडोंमें तथा शरीरके नाना स्थानोंमें रहते हैं। यदि उनका कभी प्रकोप हो जाय तो नाना विकारोंकी उत्पत्ति हो सकती है।

इसी प्रकार इन्द्रदेव अंत:करणके स्थानमें तथा अन्यान्य देव शरीरके अन्यान्य स्थानोंमें रहते हैं। पाठक विचार करके जान सकते हैं कि उनके " सखा " बनकर रहनेसे ही मनुष्य मात्रको स्वास्थ्य और आनंद प्राप्त हो सकता है। इनके विरोधी बननेसे दु:खका पारावार नहीं होगा।

पहले मन्त्रमें "देवोंके दण्डसे दूर रहने की" और दूसरे मन्त्रमें " देवोंसे मित्रता रखने की " सूचनाका इस प्रकार विचार पाठक करें और यह परम उपयोगी उपदेश अपने आचरणमें ढालनेका प्रयत्न करें और परम आनंद प्राप्त करें। तीसरे मन्त्रका " इसी आचरणसे विस्तृत सुख मिलता है," यह कथन अब सुस्पष्ट ही हुआ है।

चतुर्थ मन्त्रमें जो कहा है कि " ये ही देव हमें सहाय देते हैं, हमें सुखी रखते हैं, हमारे शरीरका आरोग्य बढाते हैं और बालबच्चोंको भी आनंदित रखते हैं, " यह कथन अब पाठकोंको भी दिनके प्रकाशके समान प्रत्यक्ष हुआ होगा। इसलिये स्वास्थ्य और सुखकी प्राप्तिके इस सच्चे मार्गका अवलंबन पाठक करें।

विशेष सूचना।

विशेषकर पाठक इस बातका अधिक ख्याल रखें, कि वेद सुख स्वास्थ्य और आनंदके प्राप्त करनेके लिये धनादि साधन नहीं बताता है, प्रत्युत " जल, वायु, सूर्य आदि के साथ सख्य करो" यही साधन बता रहा है। यह हरएक कर सकता है। चाहे धन किसीको मिले या न भी मिले, परंतु " जल वायु और सूर्य प्रकाश " तो हरएक को मिल सकता है। इस स्वास्थ्यके अति सुलभ साधनका पाठक अधिक विचार करें, वेदकी इस शैलीका अवश्य मनन करें और उपदेशके अनुसार आचरण करके लाभ उठावें।

विजयी स्त्री का पराक्रम।

(२७)

(ऋषिः-अथर्वा । देवता-इन्द्राणी)

अमूः पारे पृदाक्वंस्त्रिषप्ता निर्जरायवः ।
तासां जरायुभिर्वयमक्ष्या ३ वपि व्ययामस्यघायोः परिपन्थिनः ॥ १ ॥
विषूच्येतु कृन्तती पिनाकमिव बिभ्रती । विष्वक्पुनर्भुवा मनोऽसमृद्धा अघायवः ॥ २ ॥
न बहवः समशकन्नार्भका अभि दाधृषुः । वेणोरद्गा इवाभितोऽसमृद्धा अघायवः ॥ ३ ॥
प्रेतं पादौ प्र स्फुरतं वहतं पृणतो गृहान् । इन्द्राण्येतु प्रथमाजीतामुषिता पुरः ॥ ४ ॥

अर्थ—(अमूः पारे) वह पारमें (निर्जरायवः) झिल्लीसे निकली हुई (त्रि-सप्ता) तीन गुणा सात (पृदाकः) सर्पिणियोंके समान सेनाएं हैं। (तासां) उनकी (जरायुभिः) केंचुलियोंसे (वयं) हम (अघ—आयोः परिपंथिनः) पापी, दुष्टशत्रुकी (अक्ष्यौ) दोनों आखें (अपि व्ययामसि) ढके देते हैं ॥ १ ॥ (पिनाकं इव बिभ्रती) धनुष्य धारण करनेवाली, और शत्रुको (कृन्तती) काटने वाली वीरसेना (विषुची एतु) चारों और आगे बढे। जिससे (पुनर्भुवा) फिर इकट्ठी हुई शत्रुसेनाका (मनः विष्वक्) मन इधर उधर हो जावे। और उससे (अघायवः) पापी शत्रु (असमृद्धा) निर्धन हो जावें ॥२॥ (बहवः न समशकन्) बहुत शत्रु भी उनके सामने ठहर नहीं सकते। फिर (अर्भकाः) जो बालक हैं वे (न अभि दाधृषुः) धैर्यही नहीं कर सकते। (वेणोः अद्गाः इव) बांसके अंकुरोंके समान (अभितः) सब ओरसे (अघायवः) पापीलोग (असमृद्धाः) निर्धन होवें ॥ ३ ॥ हे (पादौ) दोनों पांवो ! (प्रेतं) आगे बढो, (प्र स्फुरतं) फुरती करो, (पृणतः गृहान् वहतं) संतोष देनेवाले घरोंके प्रति हमें पहुंचाओ। (अजीता) बिना जीती, (अमुषिता) बिना लूटी हुई और (प्रथमा) मुखिया बनी हुई (इन्द्राणी) महारानी (पुरः एतु) सबके आगे बढे ॥ ४ ॥

भावार्थ—केंचुलीसे बाहर आयी हुई सर्पिणीके समान चपल सेनाएं तीन गुने सात विभागोंमें विभक्त होकर युद्धके लिये सिद्ध हैं, उनकी हलचलोंसे हम सब पापी दुष्टोंकी आखें बंद कर देते हैं ॥ १ ॥ शस्त्र धारण करनेवाली और शत्रुको काटनेवाली वीरोंकी सेना चारों दिशाओंमें आगे बढे, जिससे शत्रुसेनाका मन तितर बितर हो जावे और सब पापी शत्रु निर्धन हो जावें ॥ २ ॥ ऐसी शूर वीरोंकी सेनाके सन्मुख बहुत शत्रु भी ठहर नहीं सकते फिर कमजोर बालक कैसे ठहर सकेंगे ? बांसके कोमल और अशक्त अंकुरके समान चारों ओरसे पापी शत्रु धनहीन होकर नाशको प्राप्त होंगे ॥ ३ ॥ विजयी अपराजित और न लूटी गई वीर स्त्री महारानी मुखिया बनकर आगे बढे, इतर लोग उसके पीछे चलें, हरएक वीरके पांव आगे बढें, शरीरमें फुर्ती चढे और सब लोग संतोष बढानेवालोंके घरोंतक पहुंच जांय ॥ ४ ॥

इन्द्राणी।

" इन्द्र " शब्द राजाका वाचक है जैसा-नरेन्द्र (मनुष्योंका राजा) मृगेन्द्र (मृगोंका राजा), खगेन्द्र (पक्षियोंका राजा) इत्यादि। केवल इन्द्र शब्द भी राजाका ही वाचक है, और " इन्द्राणी " शब्द इन्द्रकी रानी, राजाकी रानी, महारानी, रानी " का वाचक है। यह इन्द्राणी सेनाकी प्रेरक देवी है यह

बात तैत्तिरीय संहितामें कही है देखिये—

इन्द्राणी वै सेनायै देवता । तै० सं० २।२।८।१

" इन्द्राणी सेनाकी देवता है। " क्योंकि इसकी प्रेरणासे सैनिक अपना पराक्रम दिखाते और विजय प्राप्त करते हैं।

वीर स्त्री।

" इन्द्राणी अर्थात् रानी सेनाकी मुखिया बनकर सेनाके

प्रोत्साहन देती हुई आगे चले, हरएकके पांव आगे बढें, हरएकका मन उत्साहसे युक्त रहे, संतोष बढाने वाले सज्जनोंके घरोंमें ही लोग जाय।" परंतु जो लोग संतोषको कम करने वाले, उत्साहका नाश करने वाले, और मनकी आशाका घात करनेवाले हों उनके पास कोई न जावे, क्योंकि ऐसे लोग अपने हीन भावोंसे मनुष्योंको निरुत्साहित ही करते हैं। यह मंत्र ४ का भाव विचार करने योग्य है।

जिस राष्ट्रमें स्त्रियाभी ऐसी शूर और दक्ष होंगी वह राष्ट्र सदा विजयी ही होगा इसमें क्या संदेह है? जिस देशमें स्त्रियां सेनाको चला सकेंगी उस देशके पुरुष कितने शूर और कैसे वीर होंगे। क्या ऐसी वीर स्त्रियोंको कोई हीन मनवाला आदमी धमका सकता है और ऐसी शूर स्त्रियोंकी किसी स्थानपर कोई बेइज्जती कर सकता है। इसलिये आत्मसमान रखनेकी इच्छा करने वालोंको उचित है, कि वे स्वयं मर्द बनें और अपनी स्त्रियोंको भी ऐसी शिक्षा दें कि वेभी शूरवीर बनकर अपने संमान की रक्षा कर सकें।

"हाथमें शस्त्र धारण करती हुई, शत्रुको काटती हुई आगे बढे, जिसका वेग देखकर शत्रुका मन उत्साहरहित होवे और शत्रु निर्धन अर्थात् परास्त हो जावें।" यह द्वितीय मंत्रका भाव भी चतुर्थ मंत्रके साथ देखने योग्य है। क्योंकि यह मंत्र भी वीर स्त्रीका पराक्रम ही बता रहा है। यह सेना का वर्णन करता हुआ भी वीर स्त्रीका वर्णन करता है। (मंत्र २)

वीरस्त्रियोंकी उपमा केंचुलीसे निकली हुई सर्पिणीकी इस सूक्तमें दी है। स्वभावतः सर्पिणी बडी तेज रहती ही है और अति फुर्तीसे शत्रुपर हमला करती है। परंतु जिस समय वह केंचुलीसे बाहर आती है उस समय अतितेजस्वी और अतिचपल रहती है क्योंकि इस समय यह नवजीवनसे युक्त होती है। वीर स्त्री ऐसी ही होती है। स्त्री स्वभावतः चपल होती है, परंतु जिस समय कार्यवश राष्ट्रीय आपत्तिसे प्रेरित होकर, आत्मसमानकी रक्षाके लिये कोई वीर स्त्री अपने अंतर्गृह रूपी केंचुलीसे बाहर आती है, उस समय उसकी तेजस्विताका वर्णन कौन करता है? वह उस समय सचमुच सर्पिणीकी भांति चमकती हुई, बिजलीके समान तेजस्विनी बनकर वीरसेनागणोंको प्रेरित करती है। उस समयका उत्साह वीर पुरुष ही कल्पनासे जान सकते हैं। "उसके तेजसे शत्रुकी आंखें ही अंधी बन जाती हैं" और उसके सब शत्रु निःसत्व हो जाते हैं। (मंत्र १)

जहां ऐसी वीरांगनाएं समर्थ हैं उन लोगोंके सामने बडे बडे शत्रु भी ठहर नहीं सकते, फिर अल्प शक्तिवाले कमजोर मनुष्योंकी बात ही क्या है? घासके अंकुरोंके समान उनके शत्रु नष्टभ्रष्ट ही हो जाते हैं।" (मंत्र ३)

शत्रुवाचक शब्द।

इस सूक्तमें शत्रुवाचक कुछ शब्द हैं उनका विचार यहां करना आवश्यक है--

१ अघायु = आयु भर पाप कर्म करनेवाला।

२ परिपन्थिन् = बटमार, बुरे मार्गसे चलनेवाला।

पापीलोग ये हैं और इनके बुरे आचरणके कारण ही वे शत्रुत्व करने योग्य हैं। "असमृद्धा अघायव" यह शब्द प्रयोग इस सूक्तमें दोवार आया है। "पापी समृद्धिसे रहित होते हैं।" यह इसका भाव है। पापसे कभी वृद्धि नहीं होगी। पापसे मनुष्य गिरता ही जाता है। यह भाव इसमें देखने योग्य है। जो मनुष्य पाप कर्म द्वारा धनाढ्य बनना चाहते हैं उनको यह मंत्र भाग देखना योग्य है। यह मंत्र उपदेश दे रहा है कि "पापी कभी उन्नत नहीं होगा," यदि किसी अवस्थासे वह धनवान् हुआ, तो भी वह उसका धन उसके नाशका ही हेतु निःसंदेह बनेगा। तात्पर्य परिणामकी दृष्टिसे यह स्पष्ट ही समझना चाहिये कि पापी लोग अवश्य ही नाशको प्राप्त होंगे।

तीन गुणा सात।

सेनाके तीन गुणा सात विभाग हैं। रथयोधी, गजयोधी, अश्वयोधी, पदाती, दुर्गयोधी, जलयोधी तथा कूटयोधी ये सात प्रकारके सैनिक होते हैं। प्रत्येकमें अधिकारी, प्रत्यक्ष युद्धकारी, और सहायक इन तीन भेदोंसे तीन गुणा सात सैनिक होते हैं।

निर्जरायु।

"जरायु शब्द झिल्ली, जेरीका वाचक है परन्तु यहां श्लेषार्थसे प्रयुक्त है। यहां इसका अर्थ (जरा+आयु) वृद्धावस्था अथवा जीर्णता किंवा थकावट, तथा आयुष्य। (नि+जरा-आयु) जो जीर्णता, थकावट, वृद्धावस्था अथवा आयुकी पर्वा न करने वाले होते हैं, अर्थात् जो अपने जीने मरनेकी पर्वाह न करके लडते हैं, जो अपनी अवस्थाकी तथा मृत्यु की पर्वाह न करते हुए अपने यशके लिये ही लडते रहते हैं उनको "निर्जरायु" अर्थात् 'जरा और आयुके विचारसे मुक्त" कहते हैं। जीवित की आशा छोडकर लडनेवाले सैनिक।

इस सूक्तके मंत्र वीर स्त्री विषयक तथा सेना विषयक अर्थ बताते हैं, इसलिये ये मंत्र विशेष मननके साथ पढने योग्य हैं।

तथा इसमें कई शब्द द्वेष अर्थ बताने वाले भी हैं जैसा कि ऊपर बताया है। इन सब बातोंका विचार करके यदि पाठक इस सूक्तका अभ्यास करेंगे तो उनको बहुत बोध मिल सकता है।

आशा है कि इस प्रकार पाठक अपने राष्ट्रमें वीरा स्त्री और वीर पुरुष उत्पन्न करेंगे और अपना यश बढानेका परम पुरुषार्थ करेंगे।

यह सूक्त " स्वस्त्ययन गण" का है इसलिये इस गणके अन्य सूक्तोंके साथ पाठक इसका विचार करें।

दुष्ट नाशन सूक्त।

(२८)

(ऋषिः-चातनः। देवता-स्वस्त्ययनम्।)

उप॒ प्रागा॑द्दे॒वो अ॒ग्नी र॑क्षो॒हामी॑व॒चात॑नः। द॒हन्नप॑ द्वया॒विनो॑ यातु॒धाना॑न्किमी॒दिनः॑ ॥ १ ॥
प्रति॑ दह यातु॒धाना॒न्प्रति॑ देव किमी॒दिनः॑। प्र॒तीचीः॑ कृष्णवर्त॒ने सं द॑ह यातु॒धान्यः॑ ॥ २ ॥
या श॒शाप॒ शप॑नेन॒ याघं॒ मूर॑माद॒धे। या रस॑स्य॒ हर॑णाय जा॒तमा॑रे॒भे तो॒कम॑त्तु सा ॥ ३ ॥
पु॒त्रम॑त्तु यातु॒धानीः॒ स्वसा॑रमु॒त न॒प्त्य॑म्।
अधा॑ मि॒थो वि॑के॒श्यो॒३ वि घ्न॑तां यातु॒धान्यो॒३ वि तृ॑ह्यन्तामरा॒य्यः॑ ॥ ४ ॥

अर्थ-(अमीव चातनः) रोगोंको दूर करनेवाला और (रक्षोहा) राक्षसोंका नाश करनेवाला अग्निदेव (किमीदिनः) सदा भूखोंको (यातुधानान्) लुटेरों को तथा (द्वयाविनः) दुमुखे कपटियोंको (अप दहन्) जलाता हुआ (उप प्रगात्) पास पहुंचा है ॥ १ ॥ हे अग्निदेव! (यातुधानान् प्रति दह) लुटेरों को जलादे तथा (किमीदिन प्रति) सदा भूखोंको भी जलादे। हे (कृष्णवर्तने) कृष्ण मार्गवाले अग्निदेव! (प्रतीचीः यातुधान्यः) संमुख आनेवाली लुटेरी स्त्रियोंको भी (संदह) ठीक जला दो ॥ २ ॥ यह दुष्ट लुटेरी स्त्रियां (शपनेन शशाप) शापसे शाप देती हैं, (या अघं मूरं आदधे) जो पाप ही प्रारंभसे स्वीकारती हैं, (या रसस्य हरणाय) जो रस पीनेके लिये (जातं तोकं आरेभे) जन्मे हुए बालकको खाना आरंभ करती हैं और (सा अत्तु) वह पुत्र खाती है ॥ ३ ॥ (यातुधानी) पापी स्त्री (पुत्रं अत्तु) पुत्र खाती है। (स्वसारं उत नप्त्यं) बहिन को तथा नानी को खाती है। (अध) और (विकेश्यः) केश पकड पकड कर (मिथः घ्नतां), आपसमें झगडती हैं। (अराय्यः यातुधानीः) दानभाव-रहित घातकी स्त्री (वितृह्यन्तां,) आपसमें मार पीट करती हैं ॥ ४ ॥

भावार्थ-रोग दूर करनेमें समर्थ अर्थात् उत्तम वैद्य, आसुर भावको हटाने वाला, अग्निके समान तेजस्वी, उपदेशक स्वार्थी लुटेरे तथा कपटियोंको दूर करता हुआ आगे चले ॥ १ ॥ हे उपदेशक! तू लुटेरे स्वार्थी दुष्टोंको नाश कर, तथा सामने आने वाली दुष्ट स्त्रियोंकी भी दुष्टता दूर कर दे ॥ २ ॥ इन दुष्टोंका लक्षण यह है कि वे आपसमें गालियां देते रहते हैं, हरएक काम पाप हेतुसे करते हैं, यहांतक वे क्रूर होते हैं कि रक्त पीनेकी इच्छासे नये उत्पन्न बालकको ही चूसना आरंभ कर देते हैं ॥ ३ ॥ इनकी स्त्री अपने पुत्रको खाती है, बहिन तथा नातीको भी खाती है, तथा एक दूसरेके बाल पकडकर आपसमें ही लडती रहती है ॥ ४ ॥

पूर्वापर संबंध।

इसी प्रथम कांडके ७ तथा ८ वें सूक्तकी व्याख्याके प्रसंगमें यथाप्रकार प्रकरणमें अग्निदेव किस प्रकार अद्भुत उपदेशक ही है तथा वह किस प्रकार बताया है अर्थात्

दुष्टोंको सुधारता है, इत्यादि सब विषय अतिस्पष्ट कर दिया है। इसलिये इन ७ और ८ वें सूक्तके स्पष्टीकरण पाठक यहां पहिले पढें और पश्चात् यह सूक्त पढें

संस्कृतमें " वि दग्ध " (विशेष प्रकारसे जलाहुआ) यह शब्द " अति विद्वान् " के लिये प्रयुक्त होता है। यहां अज्ञानका दहन जलन आदि अर्थ समझना उचित है। जिस प्रकार अग्नि लोहे आदिको तपाकर शुद्ध करता है उसी प्रकार उपदेशक द्वारा प्रेरित ज्ञानाग्नि अज्ञानी मनुष्योंके अज्ञानको जला कर शुद्ध करता है। इस कारण " ब्राह्मण " के लिये वेदमें " अग्नि " शब्द आता है। ब्राह्मण और क्षत्रियके वाचक वेदमें " अग्नि और इन्द्र " शब्द प्रसिद्ध हैं। ब्राह्मणधर्म अग्नि देवताके और क्षात्रधर्म इन्द्र देवताके सूक्तोंसे प्रकट होता है। इत्यादि बातें विस्तारसे ७ और ८ वें सूक्तकी व्याख्याके प्रसंगमें स्पष्ट कर दी हैं। वही धर्म प्रचार की बात इस सूक्तमें है, इसलिये पाठक उक्त पूर्व सूक्तोंके साथ इस सूक्तका संबंध देखें।

इस सूक्तमें " अमीव-चातनः " (रोगोंका दूर करनेवाला) यह शब्द विशेषण रूपमें आया है। यह यहां चिकित्सा द्वारा रोग दूर कर सकने वाले उत्तम वैद्यका बोध करता है। उपदेशक जैसा शास्त्रमें प्रवीण चाहिये वैसा ही वह उत्तम वैद्य भी चाहिये। वैद्य होनेसे वह रोगोंकी चिकित्सा करता हुआ धर्मका प्रचार कर सकता है। धर्म प्रचारकके अन्य गुण सूक्त ७, ८ में देखिये।

दुर्जनोंके लक्षण।

इस सूक्तमें दुर्जनोंके पूर्वकी अपेक्षा कुछ अधिक लक्षण कहे हैं जो सूक्त ७, ८ में कहे लक्षणोंकी पूर्ति कर रहे हैं; इस लिये उनका विचार यहां करते हैं-

१ द्वयाविन- मनमें एक भाव और बाहर एक भाव ऐसा कपट करनेवाले। (मं० १) "किमीदिन्, यातुधान" इन शब्दोंका भाव सूक्त ७, ८ की व्याख्याके प्रसंगमें बताया ही है। इस सूक्तमें दुर्जनों के कई व्यवहार बताये हैं, वेभी यहां देखिये-

२ शपनेन शशाप- शापसे शाप देना, बुरे शब्द बोलना, गालियां देना इ० । मं २

३ अघं मूरं आदधे= प्रारंभमें पापका भाव रखता है। हरएक कामसे पाप रखनेसे ही उसका प्रारंभ करना।

४ रसस्य हरणाय जातं तोकं आरेभे- रक्त पीनेके लिये नवजात बच्चेको खाती है।

५ यातुधानी पुत्रं स्वसारं नप्त्यं आत्ति= यह दुष्ट आसुरी स्त्री बच्चा, बहिन अथवा नाती को खाती है।

६ विकेश्यः मिथः विघ्नतां, वितृहन्तां- आपसमें केश पकड कर परस्पर मार पीट करती हैं।

ये सब दुर्जन स्त्रीपुरुषोंके लक्षण हैं। बालबच्चोंको खानेवाले लोग इस समय अफ्रिकामें कई स्थानोंपर हैं, परंतु अन्य देशोंमें अब ये नहीं हैं। जहां कहीं ये हों, वहां धर्मोपदेशक चला जावे और उनको उपदेश देकर उत्तम मनुष्य बना देवे, ज्ञानी बनावे, उनकी दुष्टता दूर करके उनको सज्जन बना देवे।

ऐसे मनुष्य-भक्षक दुष्ट, क्रूर, हिंसक, मनुष्योंमें भी जाकर धर्मोपदेश देकर उनको सुधारनेका यत्न करनेका उपदेश होनेसे इससे कुछ सुधरे हुए किंचित् ऊपरली श्रेणीके मनुष्योंमें धर्म जागृति करनेका आशय स्वयंही स्पष्ट हो जाता है।

दुष्टोंका सुधार।

दुष्ट लोगोंमें दुष्टता होनेके कारण ही वे असभ्य समझे जाते हैं। उनकी दुष्टता उपदेश आदि द्वारा हटाकर उनको सभ्य बनाना ब्राह्ममार्ग है और उनको दण्ड देकर डरावेसे उनका सुधार करनेका यत्न करना क्षात्र मार्ग है। वेदमें अग्निदेवता से ब्राह्ममार्ग और इन्द्र देवतासे क्षात्र मार्ग बताया है। जलाते या तपाते तो दोनों ही हैं, परंतु एक उपदेशद्वारा उनके अज्ञानको जलाता है और दूसरा शस्त्र दण्ड और इसीप्रकार के कठोर उपायोंसे पीडा देकर उनको सुधारता है।

सुधार तो दोनोंसे होता है, परंतु क्षत्रियोंके दण्डद्वारा तपानेके उपायसे ब्राह्मणोंके ज्ञानाग्निद्वारा तपानेका उपाय अधिक उत्तम है और इसमें कष्ट भी कम है।

पाठक अग्नि शब्दसे आगका ग्रहण करके उससे दुष्टोंको जलानेका भाव इस सूक्तसे न निकालें, क्योंकि इस सूक्तका संबंध आगेपीछेके अनेक सूक्तोंसे है और अग्निके गुणोंके प्रमाण देकर ज्ञानी उपदेशक ही अग्निशब्दसे ऐसे सूक्तोंमें अभीष्ट है यह सूक्त ७, ८ के प्रसंगमें स्पष्ट बताया ही है। इसके अतिरिक्त "रोग दूर करनेवाला अग्नि" इस सूक्तमें कहा है। यदि यह उन लोगोंको जलाही देवे तो उनके रोगमुक्त करनेके गुणसे क्या लाभ हो सकता है। इसलिये यह अग्निका जलाना "ज्ञानाग्निसे अज्ञानका जलाना" ही है। दुष्ट गुणधर्मोंको हटाना और वहां श्रेष्ठ गुण धर्म स्थापित करना ही यहां अभीष्ट है और इसीलिये रोगमुक्त करनेवाला उत्तम

वैद्यही धर्मोपदेशकका कार्य करे, यह सूचना इस सूक्तमें हमें मिलती है। क्योंकि रोगीके मनपर वैद्यके उपदेशका जैसा असर होता है वैसा वक्ताके व्याख्यानसे श्रोताओंपर नहीं होता। रोगीका मन आतुर होता है इसलिये श्रवण की हुई उत्तम बात उसके मनमें जम जाती है और इस कारण वह शीघ्र ही सुधर जाता है ॥

[यह तृतीय और चतुर्थ मंत्रमें "अत्तु" शब्द है जिसका अर्थ 'खावे' ऐसा होता है परंतु "शशाप आदधे" इन क्रियाओंके अनुसंधानसे "अत्तु" के स्थानपर "अत्ति" मानना युक्त है । क्योंकि यहां यातुधानोंकी रीति बताई है जैसे (शशाप) शाप देते रहते हैं, (अघं आदधे) पाप स्वीकारते रहते हैं, (तोकं अत्ति) बच्चेको खाते रहते हैं अर्थात् यह उनकी रीति है । पूर्वापर संबंधसे यह अर्थ यहां अभीष्ट है ऐसा हमें प्रतीत होता है । तथापि पाठक अधिक योग्य और कोई अन्य बात इस सूक्तमें देखेंगे, तो अर्थकी खोज होनेमें अवश्य सहायता होगी

इति पंचम अनुवाक समाप्त ।

राष्ट्र-संवर्धन-सूक्त ।

(२९)

(ऋषिः- वसिष्ठः । देवता- अभीवर्तो मणिः)

अभीवर्तेन मणिना येनेन्द्रो अभिवावृधे । तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय ॥ १ ॥

अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः । अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो नो दुरस्यति ॥ २ ॥

अभि त्वा देवः सविताभि सोमो अवीवृधत् । अभि त्वा विश्वा भूतान्यभीवर्तो यथाससि ॥ ३ ॥

अभीवर्तो अभिभवः सपत्नक्षयणो मणिः । राष्ट्राय मह्यं बध्यतां सपत्नेभ्यः पराभुवे ॥ ४ ॥

उदसौ सूर्यो अगादुदिदं मामकं वचः । यथाहं शत्रुहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा ॥ ५ ॥

सपत्नक्षयणो वृषाभिराष्ट्रो विषासहिः । यथाहमेषां वीराणां विराजानि जनस्य च ॥ ६ ॥

अर्थ- हे (ब्रह्मणस्पते) ज्ञानी पुरुष ! (येन इन्द्रः अभिवावृधे) जिससे इन्द्रका विजय हुआ था, (तेन अभिवर्तेन मणिना) उस विजय करनेवाले मणिसे (अस्मान्) हमको (राष्ट्राय अभिवर्धय) राष्ट्रके लिये बढा दो ॥ १ ॥ (याः नः अरातयः) जो हमारे शत्रु हैं उनको तथा अन्य (सपत्नान्) वैरियोंको (अभिवृत्य) पराभूत करके, (यः नः दुरस्यति) जो हमसे दुष्टताका आचरण करता है तथा जो (पृतन्यन्तं) सेनासे हमपर चढाई करता है उससे (अभि अभि तिष्ठ) युद्ध करनेके लिये स्थिर हो जाओ ॥ २ ॥ (सविता देवः) सूर्य देवने तथा (सोमः) चंद्रमा देवने भी (त्वा) तुझे (अभि अभि-अवीवृधत्) सब प्रकारसे बढाया है । (विश्वा भूतानि) सब भूत (त्वा अभि) तुझे बढा रहे हैं, जिससे तू (अभिवर्तः असि) शत्रुको दबानेवाला हुआ है ॥ ३ ॥ (अभिवर्तः) शत्रुको घेरनेवाला, (अभिभवः) शत्रुका पराभव करनेवाला, (सपत्नक्षयणः) प्रतिपक्षियोंका नाश करनेवाला यह (मणिः) मणि है । यह (सपत्नेभ्यः पराभुवे) प्रतिपक्षियोंका पराभव करनेके लिये तथा (राष्ट्राय) राष्ट्रके अभ्युदयके लिये (मह्यं बध्यतां) मुझपर बांधा जावे ॥ ४ ॥ (असौ सूर्यः उदगात्) यह सूर्य उदयको प्राप्त हुआ है, (इदं मामकं वचः उत्) यह मेरा वचन भी प्रकट हुआ है, (यथा) जिससे (अहं शत्रुहः) शत्रुका नाश करनेवाला, (सपत्नहा) प्रतिपक्षिका घात करनेवाला होकर मैं (असपत्नः असानि) शत्रुरहित होऊं ॥ ५ ॥

(यथा) जिससे (अहं) मैं (सपत्न-क्षयणः) प्रतिपक्षियोंका नाश करनेवाला, (वृषा) बलवान् और (विषासहिः) विजयी होकर (अभिराष्ट्रः) राष्ट्रके अनुकूल बनकर तथा राष्ट्रकी सहायता प्राप्त करके (एषां वीराणां) इन वीरोंका (जनस्य च) और सब लोगोंका (वि राजानि) विशेष प्रकारसे रंजन करने वाला राजा होऊं ॥ ३ ॥

भावार्थ- हे राष्ट्रके ज्ञानी पुरुषो ! जिस राजचिह्न रूपी मणिको धारण करके इन्द्र विजयी हुआ था, उसी विजयी मणिसे हमें राष्ट्रके हितके लिये बढाइये ॥ १ ॥ जो अनुदार शत्रु हैं और जो प्रतिपक्षी हैं उनको परास्त करनेके लिये; तथा जो हमसे बुरा व्यवहार करते हैं और जो हमपर सेना भेजकर चढाई करते हैं उनको ठीक करनेके लिये अपनी तैयारी करके आगे बढो ॥२॥ सूर्य चन्द्र आदि देव तथा सब भूतमात्र तुझे सहायता देकर बढा रहे हैं, जिससे तू सब शत्रुओंको दबानेवाला बन गया है। ॥ ३ ॥ शत्रुको घेरनेवाला, वैरीका पराभव करनेवाला, प्रतिपक्षियोंको दूर करनेवाला यह राजचिह्न रूपी मणि है । इसलिये प्रतिपक्षियोंका पराभव करनेके लिये और अपने राष्ट्रका अभ्युदय करनेके लिये मुझपर यह मणि बांध दीजिये ॥ ४ ॥ जैसा यह सूर्य उदय हुआ है, वैसा यह मेरा वचन भी प्रकट हुआ है, अब तुम ऐसा करो कि जिससे मैं शत्रुका नाश करनेवाला, प्रतिपक्षियोंको दूर करनेवाला होकर शत्रु रहित हो जाऊं ॥ ५ ॥ मैं प्रतिपक्षियोंका नाश करके बलवान बनकर, विजयी होकर अपने राष्ट्रके अनुकूल कार्य करता हुआ अपने वीरोंका और अपने राष्ट्रके सब लोगोंका हित साधन करूंगा ॥ ६ ॥

अनुसन्धान

यह सूक्त राज प्रकरणका है इसलिये इसी कांडके अपराजित गणके सब सूक्तोंके साथ इसका विचार करना योग्य है । तथा आगे आनेवाले राज प्रकरणके सूक्तोंके साथ भी इसका संबंध देखने योग्य है । इससे पूर्व अपराजित गणके सूक्त २. १९, २०, २१ ये आये हैं, इसके अतिरिक्त अभय गण, सांमामिक गणके सूक्तोंके साथ भी इन सूक्तोंका विचार करना चाहिये ।

अभीवर्त मणि ।

जिस प्रकार राजाके चिन्ह राजदंड, छत्र, चामर आदि होते हैं उसी प्रकारका 'अभीवर्त मणि' भी एक राजचिन्ह है । इसके धारण करनेके समय यह सूक्त बोला जाता है ।

देवोंका राजा इन्द्र है, उसका पुरोहित बृहस्पति ब्रह्मणस्पति है । यह पुरोहित इन्द्रके शरीरपर यह अभीवर्त मणि बांधता है । अर्थात् राज पुरोहित ही राजाके शरीरपर यह राजचिन्ह रूपी मणि बांध देवे । यहां संबंध देखनेसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह सूक्त संवाद रूप है । यह संवाद इस प्रकार है । देखिये—

इस सूक्तका संवाद ।

राजा= हे पुरोहित जी ! जो अभीवर्त मणि इन्द्रके शरीरपर देव गुरु बृहस्पतिने बांध दिया था और जिससे इन्द्र दिग्विजयी हुआ था, वह राजचिन्हरूपी मणि मेरे शरीरपर आप धारण कराइये, जिससे मैं राष्ट्रका वर्धन करनेमें समर्थ हो जाऊं ॥ १ ॥

पुरोहित= हे राजन् । जो अनुदार शत्रु हैं और जो प्रतिपक्षी हैं तथा जो हमारे राष्ट्रके साथ बुरा व्यवहार करते हैं और हमपर सैन्यसे चढाई करते हैं उन्हींको परास्त करनेकी तैयारी करो ॥ २ ॥ सूर्य, चंद्र तथा सब भूत तुम्हारी सहायता कर रहे हैं, जिससे तू शत्रुको दबा सकता है ॥ ३ ॥

राजा- पुरोहित जी ! यह राजचिन्ह रूपी मणि शत्रुको घेरने, वैरीका पराभव करने और प्रतिपक्षियोंको हटानेका सामर्थ्य देनेवाला है । इसलिये विरोधियोंका पराभव और अपने राष्ट्रका अभ्युदय करनेके कार्यमें मुझे समर्थ बनानेके लिये मुझपर यह मणि बांध दीजिये ॥ ४ ॥ जैसा सूर्य उदयको प्राप्त होता है वैसा ही मेरे शब्दोंका प्रकाश होता है, इसलिये आप ऐसा करें कि जिससे मैं शत्रुका नाश कर सकूं ॥ ५ ॥ मैं बलवान् बनकर प्रतिपक्षियोंको दूर करूंगा और विजयी होकर अपने राष्ट्रके अनुकूल कार्य करता हुआ अपने वीरोंका और राष्ट्रका हित करूंगा ॥ ६ ॥

पाठक यह संवाद विचारसे पढेंगे तो उनके ध्यानमें इस सूक्तका आशय शीघ्रतासे आसकेगा । राजा राजचिन्ह धारण करता है, उस समय पुरोहित राजासे प्रजाहितकी कुछ बातें करनेके लिये कहते हैं और राजा भी राष्ट्रहित करनेकी प्रतिज्ञा उस समय करता है । पुरोहित ब्राह्मशक्तिका और राजा क्षात्र शक्तिका प्रतिनिधि है । राष्ट्रकी ब्राह्मशक्ति पुरोहित मुखसे राजकर्तव्यका उपदेश राजाको करती है, राजगद्दीपर राजाको रखना या न रखना राष्ट्रकी ब्राह्मशक्तिके आधीन रहना चाहिये । अर्थात् ब्राह्मशक्तिके आधीन क्षात्रशक्ति रहनी चाहिये । यह बात यहां प्रकाशित होती है । ज्ञानी लोगोंपर

शूरोंकी हुकूमत न रहे, परंतु शूर ज्ञानीलोगोंके आधीन कार्य करें। राष्ट्रकी (Civil and military) ब्राह्म तथा क्षात्र शक्ति एक दूसरेके साथ कैसा बर्ताव करे, यह इस सूक्तमें स्पष्ट हुआ है। ब्राह्मशक्ति द्वारा संमत हुआ राजा ही राजगद्दीपर आसकता है अन्य नहीं।

राजाके गुण।

इस सूक्तमें राजाके गुण बताये हैं, वे निम्न शब्दोंद्वारा पाठक देख सकते हैं-

१ अस्मात् राष्ट्राय अभिवर्धय=हमारी शक्ति राष्ट्रकी उन्नति के लिये बढे अर्थात् राजाके अंदर जो शक्ति बढती है वह राष्ट्रकी उन्नतिके लिये ही सार्थकमें लगे, यही भाव राजाके अंदर रहे। अपनी बढी हुई तन मन धन आदि सब शक्ति अपने भोगके लिये नहीं है प्रत्युत राष्ट्रकी भलाईके लिये ही है यह जिस राजाका निश्चय होगा वही सच्चा राजा कहा जासकता है॥ (मंत्र १॥)

२ राष्ट्राय मह्यं बध्यतां सपत्नेभ्यः पराभुवे=राष्ट्रकी उन्नति और वैरियोंका पराभव करनेके लिये राजचिह्नरूप मणि मेरे (राजाके) शरीरपर बांधा जावे। मणि आदि रत्न तथा अन्य राजचिह्न जो राजा धारण करता है वह अपनी शोभा बढाने के लिये नहीं है, प्रत्युत वे केवल दो ही उद्देश्य के लिये हैं, (१) राष्ट्रकी उन्नति हो, और (२) जनताके शत्रु दूर किये जांय। राजाके अंदर यह शक्ति उत्पन्न करनेके लिये ही उसपर राजचिन्ह चढाये जाते हैं। (मंत्र ४)

३ अभिराष्ट्रः-(अभितः राष्ट्रं यस्य) जिसके चारों ओर राष्ट्र है, ऐसा राजा हो। अर्थात् राजा अपने राष्ट्रमें रहे, राष्ट्रके साथ रहे, राष्ट्रका बनकर रहे। राजाका हित राष्ट्रहित ही हो, और राष्ट्रका हित राजहित हो, अर्थात् दोनोंके हित संबंधमें फरक न रहे। राजाके लिये राष्ट्र अनुकूल रहे और राष्ट्रके लिये राजा अनुकूल हो। राष्ट्रहितका उच्च ध्येय अपने सामने रखनेवाले राजाका बोध इस शब्दसे होता है। जिस राजाके लिये अपनी जान देनेके लिये राष्ट्र तैयार होता है उस राजाका यह नाम है। यह शब्द आदर्श राजाका वाचक है। (मंत्र ६)

४ शत्रुहः-शत्रुका नाश करने वाला। (मं० ५)

५ असपत्नः—अंदरके प्रतिस्पर्धी या विरोधी जिसको न हों। (मं. ५)

६ सपत्नक्षयः—प्रतिस्पर्धीका नाश करनेवाला, अर्थात् प्रतिस्पर्धियोंका पराभव करने वाला। (मंत्र ५) "सपत्न-क्षयणः" यह शब्दभी इसी अर्थमें (मं. ६ में) आया है।

७ वृषा— बलवान्। सब प्रकारके बलोंसे युक्त राजा होना चाहिये, अन्यथा वह परास्त होगा। (मं० ६)

८ विषासहिः-शत्रुके हमले होनेपर उनको सहन करके अपने स्थानसे पीछे न हटने वाला। (मं० ६)

९ वीराणां जनस्य च विराजानि-राष्ट्रके शूरवीर तथा राष्ट्रकी संपूर्ण जनता इन सबको संतुष्ट करनेवाला। (मं. ६)

१० प्रतिपक्षियोंको दबाना, वैरियोंका नाश करना, सेनाके साथ चढाई करनेवालेका प्रतिकार करना और जो दुष्ट व्यवहार करता है उसको ठीक करना आदि राजाके कर्तव्य(मंत्र०२) में कहे हैं।

ये दस कर्तव्य राजाके इस सूक्तमें कहे हैं ये सब मनन करने योग्य हैं। ये सब कर्तव्य यही भाव बता रहे हैं कि राजा अपने भोगके लिये राजगद्दीपर नहीं आता है, प्रत्युत राष्ट्रका हित करनेके लिये ही आता है। यदि राजालोग इस सूक्तका अधिक मनन करके अपने लिये योग्य बोध लेंगे तो बहुत ही उत्तम होगा।

राजचिह्न।

छत्र, चामर, राजदण्ड, मणि, रत्न, रत्नमाला, मुकुट, विशेष कपडेलत्ते, राजसभाका ठाठ, हाथी, घोडे आदि सब जो राजचिन्ह रूपमें समझे जाते हैं, इन चिन्होंके धारण करनेसे जनतापर कुछ विशेष प्रभाव पडता है और उस प्रभावके कारण राजाके इर्द गिर्द शक्ति केन्द्रीभूत हो जाती है। यद्यपि इस प्रत्येक चिन्हमें कोई विशेष शक्ति नहीं होती, तथापि राजचिन्ह धारण करनेवाले साधारण सिपाहीमें भी अन्य सामान्य जनोंकी अपेक्षा कुछ विशेष शक्ति होनेका अनुभव हरएक करता है; इसी प्रकार उक्त चिन्होंके कारण अमूर्त राज भावनाका एक विशेष प्रभाव जनतापर पडता है जिस कारण राजा शक्तियोंका केन्द्र बनता है। जिस समय अपने चिन्होंसे और संपूर्ण ठाठसे राजा जाता है उस समय उसका बडाभारी प्रभाव सामान्यजनता पर पडता है, इसी कारन राजामें शक्ति इकट्ठी होती है। इस सूक्तके चतुर्थ मंत्रमें 'यह मणि ही शत्रुनाश करने वाला, प्रभाव बढानेवाला, राष्ट्रहित साधन करनेवाला है।' इत्यादि कहा है, इसका भाव उक्त प्रकार ही समझना योग्य है। सिपाहीकी शक्ति उसके चिन्होंसे ही बनती बढती है और यह शक्ति वास्तविक नहीं प्रत्युत एक विशेष भावनासे ही उत्पन्न होती है। संपूर्ण राजचिन्होंकी शक्ति इसी प्रकार भावनामय है। अस्तु, अब इसके स्मरण देखिये—

शत्रुके लक्षण ।

इस सूक्तमें निम्नलिखित प्रकारसे शत्रुके लक्षणोंका वर्णन किया है—

१ यः दुरस्यति = जो दुष्ट व्यवहार करता है। (मं० २)

२ सपत्नः = भिन्न पक्षका मनुष्य। राष्ट्रमें जितने पक्ष होंगे, उतने पक्षवाले आपसमें सपत्न होंगे। सपत्न शब्द (Party Politics) पक्ष भेदका राजकारण बता रहा है ।

३ अरातिः = अनुदार, जो मनमें श्रेष्ठभाव नहीं रखता।

४ पृतन्यन् = सैन्यसे चढाई करनेवाला।

इन शब्दोंके विचारसे शत्रुका पता लग सकता है। इनमें कई अंदरके शत्रु हैं और कई बाहरके हैं।

सबकी सहायता ।

तृतीय मंत्रमें कहा है कि " सूर्य चंद्र और सब भूतमात्र जिस राजाके सहायक होते हैं वह शत्रुको पराजित करता है॥" (मं० ३) इसमें सूर्य चंद्र आदि शब्द बाह्य सृष्टिकी सहायता बता रहे हैं, (Nature's help) निसर्गकी सहायता राजाकी शक्तिका एक महत्त्वपूर्ण भाग है। राष्ट्रकी रचना ही ऐसी हो कि जहां शत्रुका प्रवेश सुगमतासे न हो सके। यह एक शक्ति ही है।

दूसरी शक्ति (विश्वा भूतानि) सब भूत मात्रसे प्राप्त होती है। पंचमहाभूतोंसे शक्ति प्राप्त करनेकी भी बात इसमें सुगमतासे ज्ञात हो सकती है। " भूत " शब्दका दूसरा प्रसिद्ध अर्थ " प्राणी, मनुष्य " ऐसा होता है। जिस राजाको राष्ट्रके सब प्राणी और सब मनुष्य सहायक हों, उसकी शक्ति विशेष होगी ही, इसमें क्या संदेह है ? यही सब जनताकी शुभ इच्छासे प्राप्त होनेवाली शक्ति है जो राजाको अपने पास रखनी चाहिये क्योंकि इसी पर राजाका चिरस्थायित्व अवलंबित है॥

वैदिक राजप्रकरणके विषयमें इस सूक्तमें बडा अच्छा उपदेश है। यदि पाठक अधिक मनन करेंगे तो उनको राजप्रकरणके बहुत उत्तम निर्देश इस सूक्तमें मिल सकते हैं।

बनें। हमारा शरीर सुदृढ हो, हमारी आयु दीर्घ हो, हमारे इंद्रिय अधिक कार्य क्षम बनें, हमारा मन मननशक्तिसे युक्त हो, हमारी बुद्धी ज्ञानसे परिपूर्ण हो, हममें आत्मिक बल बढे, तथा हमारी कौटुंबिक, सामाजिक तथा अन्यान्य शक्तियां बढें। ये सब शक्तियां इसलिये बढें कि इनके योगसे हमारा राष्ट्र अभ्युदयसे युक्त हो। इन शक्तियोंकी वृद्धि इसलिये नहीं करनी है कि इनसे केवल व्यक्तिका ही सुख बढे, केवल एक जातीके हाथमें अधिकार रहे, या किसी एक कुलके पास परम अधिकार हो जाय; परंतु ये शक्तियां इसलिये बढानी चाहियें कि इनके संयोगसे राष्ट्रकी प्रगति हो, राष्ट्रकी उच्चता हो।

सामान्य अर्थ देखनेके समय इस प्रथम मंत्रका " अस्मान् " शब्द बडा महत्त्व रखता है। इसका अर्थ होता है " हम सबको "। अर्थात् हम सबको मिलकर राष्ट्र हितके लिये वृद्धिगत करो। इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि किसी एककी ही उन्नति या किसी एककी शक्तिका विकास ही यहां अपेक्षित नहीं है, परंतु सबकी शक्तिका विकास यहां अपेक्षित है। राष्ट्रीय उन्नतिके लिये जो प्रजाजनोंकी शक्तिका विकास करना है वह हरएक प्रजाजनका, किसी प्रकार भी पक्षपात न करते हुए, करना चाहिये। अर्थात् जातिविशिष्ट या संघविशिष्ट पक्षपातके लिये यहां कोई स्थान रहना नहीं चाहिये।

जो मैं करता हूं वह राष्ट्रके लिये समर्पित हो यही भाव हरएकके मनमें रहना चाहिये।

> राष्ट्राय मह्यं बध्यतां।
> सपत्नेभ्यः पराभुवे॥ (मं० ४)

" मुझे राष्ट्रके लिये बांध दे ताकि मैं राष्ट्रके शत्रुओंका पराभव कर सकूं। " यह भाव मनमें धारण करना चाहिये। मैं राष्ट्रके साथ बांधा जाऊं, मेरा अपने राष्ट्रके साथ ऐसा संबंध जुड जाय कि वह कभी न टूटे, राष्ट्रका हित और मेरा हित एक बने, मैं राष्ट्रके लिये ही जीवित रहूं, इत्यादि प्रकारके भाव इस मंत्रमें हैं। जो जिसके साथ बांधा जाता है वह उसीके साथ रहता है। यदि स्वराष्ट्राभिमानसे मनुष्य राष्ट्रके साथ एक बार अच्छी प्रकार कसकर बांधा जाय तो वह वहांसे नहीं हटेगा। इसी प्रकार मनुष्य अपने राष्ट्रके साथ बांधे जाय और ऐसा परस्पर संबंध जुडनेके कारण राष्ट्रमें अपूर्व संघ शक्ति उत्पन्न हो यह मंत्र वेदको अभीष्ट है।

जाग्रत रहे। इस प्रकार जिसके मनके सामने राष्ट्रका विचार सदा जाग्रत रहता है, उसीको वेद 'अभिराष्ट्र' कहता है (अभितः राष्ट्रं) अपने चारों ओर अपना राष्ट्र है ऐसा माननेवाला हरएक अवस्थामें अपने संमुख अपने राष्ट्रको देखनेवाला जो होता है उसका यह नाम है।

'राष्ट्र' का अर्थ

राष्ट्र शब्द केवल देश अथवा केवल जनताका वाचक वेदमें नहीं है। केवल भूमिके एक विभागपर रहनेवाले मनुष्य समाजका बोध 'राष्ट्र' शब्दसे वेदमें नहीं होता है। इस प्रकारके राष्ट्र भूमिपर बहुत होंगे, परंतु वेद जिसको राष्ट्र कहता है, वैसे राष्ट्र कितने होंगे इसका विचार पाठकोंको अवश्य करना चाहिये वेदमें 'राष्ट्र' शब्द (राजते तद् राष्ट्रं) जो चमकता है, वह राष्ट्र है' इस अर्थका बोधक है। जो मनुष्योंका समुदाय भूमंडल पर अपने कमाये यशसे चमकता है और सब अन्य लोगोंकी आंख अपनी ओर खींच सकता है वही वैदिक दृष्टिसे राष्ट्र है। अन्य मानवी समुदाय राष्ट्र नहीं हैं। इस प्रकारके राष्ट्र विस्तारसे छोटा हो या बडा हो, वह राष्ट्र ही कहलायेगा। परंतु जो विस्तारसे अति प्रचंड हो, परंतु यशकी दृष्टिसे जिसमें चमकाहट न हो तो वह राष्ट्र नहीं होगा। वैदिक धर्मियोंको अपने परिश्रमसे अपने राष्ट्रमें इस प्रकारका तेज उत्पन्न करना चाहिये और बढाना चाहिये, तभी उनके देशका नाम वैदिक रीतिसे राष्ट्र होगा। वेदमें राष्ट्रवर्धन विषयक अनेक सूक्त हैं और उनका परस्पर निकट संबंध भी है। पाठक जिस समय इन सूक्तोंका विचार करने लगें उस समय आगे पीछेके राष्ट्रीय सूक्तोंका संबंध अवश्य देखें और सब उपदेशका इकट्ठा मनन करें।

पाठक इस प्रकार मंत्रोंके सामान्य उपदेशोंसे अधिक मनन करके बोध उठावें। वेदमें राष्ट्रहितके उपदेश किस प्रकार स्पष्ट रूपमें हैं यह इस रीतिसे पाठक देख सकते हैं।



आयुष्य-वर्धन-सूक्त।

(३०)

(ऋषिः— अथर्वा आयुष्यकामः। देवता विश्वे देवाः)

विश्वे देवा वसवो रक्षतेममुतादित्या जागृत यूयमस्मिन्।
मेमं सनाभिरुत वान्यनाभिर्मेमं प्रापत् पौरुषेयो वधो यः ॥ १ ॥
ये वो देवाः पितरो ये च पुत्राः सचेतसो मे शृणुतेदमुक्तम्।
सर्वेभ्यो वः परि ददाम्येतं स्वस्त्येनं जरसे वहाथ ॥ २ ॥
ये देवा दिवि ष्ठ ये पृथिव्यां ये अन्तरिक्ष ओषधीषु पशुष्वप्स्वन्तः।
ते कृणुत जरसमायुरस्मै शतमन्यान्परि वृणक्तु मृत्यून् ॥ ३ ॥
येषां प्रयाजा उत वानुयाजा हुतभागा अहुतादश्च देवाः।
येषां वः पञ्च प्रदिशो विभक्तास्तान्वो अस्मै सत्रसदः कृणोमि ॥ ४ ॥

अर्थ- हे (विश्वे देवाः) सब देवो! हे (वसवः) वसुदेवो! (इमं रक्षत) इसकी रक्षा करो। (उत) और हे (आदित्याः) आदित्य देवो! (यूयं अस्मिन् जागृत) तुम इसमें जागृत रहो। (इमं) इस पुरुषको (सनाभिः) अपने बंधु (उत वा अन्य-नाभिः) अथवा [illegible] (वधः मा प्रापत्) [illegible]

जो पुरुष प्रयत्नसे होनेवाला घातपात है वह भी (इमं मा प्रापत्) इसको प्राप्त न करे ॥ १ ॥ हे (देवाः) देवो (ये वः पितरः) जो आपके पिता हैं तथा (च ये पुत्राः) जो पुत्र हैं वे सब (स चेतसः) सावधान होकर (मे इदं उक्तं शृणुत) मेरा यह कथन श्रवण करें (सर्वेभ्यो वः एतं परिददामि) सब आपकी निगरानीमें इसको मैं देता हूं (एनं जरसे स्वस्ति वहाथ) इसको वृद्ध आयुतक सुखपूर्वक पहुंचा दो ॥ २ ॥ (ये देवाः दिवि स्थ) जो देव द्युलोकमें हैं, (ये पृथिव्यां, ये अन्तरिक्षे) जो पृथ्वीमें और अंतरिक्षमें हैं और जो (ओषधीषु पशुषु अप्सु अन्तः) औषधि, पशु और जलोंके अंदर हैं (ते अस्मै जरसं आयुः कृणुत) वे इसके लिये वृद्धावस्थावाली दीर्घ आयु करें। यह पुरुष (शतं अन्यान् मृत्यून् परिवृणक्तु) सैकडों अन्य अपमृत्युको हटा देवे ॥ ३ ॥ (येषां) जिन तुम्हारे अंदर (प्रयाजाः) विशेष यजन करनेवाले, (उत वा अनुयाजाः) अथवा अनुकूल यजन करनेवाले तथा (हुत-भागाः अहुतादः च देवाः) हवनमें भाग रखनेवाले और हवन किया हुआ न खानेवाले जो देव हैं, (येषां वः पञ्च प्रदिशः विभक्ताः) जिन आपकी ही पांच दिशायें विभक्त की गई हैं, (तान् वः) उन तुमको (अस्मै) इस पुरुषकी दीर्घ आयुके लिये (सत्र-सदः कृणोमि) सदस्य करता हूं ॥ ४ ॥

भावार्थ—हे सब देवो, हे वसुदेवो ! मनुष्यकी रक्षा करो। हे आदित्य देवो। तुम मनुष्यमें जाग्रत रहो। मनुष्यका उसीके बंधुसे अथवा कोई अन्य मनुष्यसे अथवा कोई पुरुषसे वध न हो ॥ १ ॥ हे देवो ! जो तुम्हारे पिता हैं और जो तुम्हारे पुत्र हैं वे सब मेरा कथन सुनें। मनुष्यको पूर्ण दीर्घ आयुतक ले जाना तुम्हारे आधीन है, अतः मनुष्यकी दीर्घ आयु करो ॥ २ ॥ जो देव द्युलोक, अंतरिक्षलोक, भूलोक, औषध, पशु, जल आदिमें हैं वे सब मिलकर मनुष्यकी दीर्घ आयु करें। तुम्हारी सहायतासे मनुष्य सैंकडों अपमृत्युसे बचे ॥ ३ ॥ विशेष याजन करनेवाले, अनुकूल याजन करनेवाले, हवनका भाग लेनेवाले तथा हवन किया हुआ न खानेवाले जो देव हैं और जिन्होंने पांच दिशाएं विभक्त की हैं, वे सब आप देव मनुष्यकी आयुष्यवर्धक सभाके सदस्य बनें और मनुष्यकी आयु दीर्घ बनानेमें सहायता करें ॥ ४ ॥

तब तक मनुष्यकी आयु क्षीण ही होती जायगी । इसलिये वध करनेकी रीति अपने समाजमें से दूर करनेका यत्न मनुष्य प्रथम करें ।

देवोंके आधीन आयुष्य ।

मनुष्यका समाज जितना अहिंसावृत्तिवाला होगा उतनी उसकी आयुष्यमर्यादा दीर्घ होसकती है । यह बात जितनी सिद्ध होगा उतनी सिद्ध करके आगेका मार्ग आक्रमण करना चाहिये। *आगेका मार्ग यह है कि–" अपना आयुष्य देवोंके आधीन है, देव हमारी रक्षा कर रहे हैं " यह भाव मनमें धारण करना।* इसकी सूचना प्रथम मंत्रके पूर्वार्धने दी है, उसका आशय यह है—

" हे सब वसुदेवो! मनुष्यकी रक्षा करो । हे सब आदित्यो ! मनुष्यमें जागते रहो । " (मंत्र १)

इस मंत्रमें भी दो भाग हैं । पहिले भागमें वसु देवोंकी रक्षक शक्तिके साथ संबंध बताया है और दूसरे भागमें आदित्य देवोंको मनुष्यके अंदर, मनुष्यके देहमें, जाग्रत रहनेकी सूचना दी है । ये दोनों बातें दीर्घ आयु करनेके लिये अत्यंत आवश्यक हैं । अब इनका संबंध देखिये—

सबसे पहिले मनुष्य यह विचार मनमें धारण करे कि संपूर्ण देव मेरी रक्षा कर रहे हैं, परन्तु परमात्मा सर्वेश्वर सर्व समर्थ प्रभु मेरी रक्षा कर रहा है और उसकी आधीनता में सूर्यादि सब देव सदा मेरी रक्षा कर रहे हैं । मैं परमात्माका अमृत पुत्र हूं इसलिये मेरा परमपिता परमात्मा मेरी रक्षा करता था, करता है और करताही रहेगा । परमात्माके आधीन अन्य सब देव होनेके कारण वे भी उस परमात्माके पुत्रकी रक्षा अवश्य करेंगे ही ।

इस प्रकार संपूर्ण देव मेरा संरक्षण करते हैं इसलिये मैं निर्भय हूं यह विचार मनमें दृढ करके मनके अंदर जो जो चिन्ताके विचार आवेंगे उनको हटाना चाहिये और विश्वाससे मनकी ऐसी दृढ अवस्था बनानी चाहिये कि जिसमें चिंताका विचार ही न उठे और चिंतारहित निर्भय होनेके साथ आनंद वृत्तिके साथ मनमें रहें । दीर्घायुष्यके लिये इस प्रकार परमात्मा पर तथा अन्यान्य देवोंकी संरक्षक शक्तिपर अपना पूर्ण विश्वास रखना चाहिये, अन्यथा दीर्घ आयुष्य प्राप्त होना असंभव है ।

कई पाठक शंका करेंगे कि अन्यान्य देव हमारी रक्षा किस प्रकार कर रहे हैं ? इस विषयमें इसने पूर्व कई स्थानोंपर उल्लेख आगया है । तथापि संक्षेपसे यहांभी इसका विचार करते हैं । पाठक जानते ही हैं कि प्रथम मंत्रमें ' वसु ' देवोंका उल्लेख है, ये सब जगत्के निवासक देव होनेके कारण ही इनको " वसु " कहते हैं । सबके जो निवासक होते हैं वे सबकी रक्षा अवश्य ही करेंगे ।

सब वसुओंका भी परम वसु परमात्मा है क्योंकि वह जैसा सब जगत् को बसाता है इसी प्रकार जगत्के संरक्षक सब देवोंको भी बसाता है । उसके बाद पृथ्वी, आप, अग्नि, वायु आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ये अष्टवसु हैं ऐसा कहा जाता है । भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, आदि के साथ हमारे क्षणक्षणके आयुष्यका संबंध है, इनमें से एकका भी संबंध हमसे टूट गया तो हमारा नाश होगा । इतना महत्त्व इनका है और इसी कारण इनके रक्षणमें सदा मनुष्य रहता है ऐसा ऊपरवाले मंत्रमें कहा है । इससे स्पष्ट हुआ कि मनुष्य की रक्षा इन देवोंके कारण हो रही है और अति निःपक्षपातसे हो रही है । ये देव कभी किसीका पक्षपात नहीं करते हैं । सूर्य सबपर एकसा प्रकाशता है, वायु सबके लिये एकसा बह रहा है, जल सबके लिये आकाशसे गिरता है, पृथ्वी सबको समानतया आधार दे रही है, इस प्रकार ये सब देव न केवल सबकी रक्षा कर रहे हैं प्रत्युत सबके साथ निःपक्षपातसे भी बर्ताव कर रहे हैं ।

हमारे जीवनके साथ इनका संबंध इतना घनिष्ठ है कि इनके बिना हमारा जीवन ही अशक्य है । वायुके बिना प्राण धारणा कैसी होगी ? सूर्यके बिना जीवन ही असंभव होगा, इत्यादि प्रकार पाठक देखें और मनमें निश्चयपूर्वक यह बात धारण करें कि परमात्माके नियमके आधीन रहते हुए ये सब देव हमारी रक्षा कर रहे हैं ।

हम क्या करते हैं ?

सब देव तो हमारी रक्षा कर ही रहे हैं, परंतु हम क्या कर रहे हैं, हम उनकी रक्षामें रहनेका यत्न कर रहे हैं या उनकी रक्षासे बाहर होनेके यत्नमें हैं ? इसका विचार पाठकोंको करना चाहिये । देखिये, परमात्माकी और देवोंकी रक्षासे हम कैसे बाहर जाते हैं—परमात्मापर जो विश्वास ही नहीं रखते वे परमात्माकी रक्षासे बाहर हो जाते हैं । दयामय परमात्मा उन भी उनकी रक्षा करता ही रहता है वह उनको ही आधार देता है, परंतु वे अविश्वासी लोग उसकी आधार रक्षासे लाभ नहीं उठाते । अविश्वासके कारण जितनी हानि है, उतनी अन्य कारणसे नहीं हो सकती । दीर्घ आयुकी प्राप्तिके लिये इसी कारण मनमें परमात्मविषयक दृढ विश्वास चाहिये ।

इसके बाद सूर्य अपने प्रकाशसे सबको जीवनामृत देकर सबकी रक्षा कर ही रहा है, परंतु मनुष्य सूर्य प्रकाशसे दूर रहते हैं, तंग गलियोंके तंग मकानोंमें रहते हैं, दिनभर कमरोंमें अपने आपको बंद रखते हैं और इस प्रकार सूर्यदेवकी संरक्षक शक्तिसे अपने आपको दूर रखते हैं। इनके लिये भगवान् सहस्ररश्मी सूर्यदेव क्या कर सकते हैं ? इसी प्रकार वायु और जल आदि देवोंके विषयमें समझना उचित है। ये देव तो सबकी रक्षा कर ही रहे हैं परंतु मनुष्योंको भी चाहिये कि वे इनकी उत्तम रक्षासे अपने आपको दूर न रखें और जहांतक होसके उतना प्रयत्न करके उनकी रक्षामें अपने आपको अधिक रखें।

पाठक यहां समझ ही गये होंगे कि संपूर्ण देव मनुष्यमात्रकी किस रीतिसे रक्षा कर रहे हैं और मनुष्य उनकी रक्षासे किस प्रकार दूर होते हैं और स्वयं अपना नुकसान किस प्रकार कर रहे हैं।

आदित्य देवोंकी जाग्रती।

इस प्रथम मन्त्रमें दीर्घ आयुष्य वर्धक एक महत्त्वपूर्ण बात कही है वह यह है- " हे आदित्य देवो ! इस मनुष्यमें जाग्रत रहो। " मनुष्यके अंदर आदित्यसे ही सब जीवन शक्ति आरही है। यह जीवन शक्ति जैसी मनुष्यमें कार्य करती है उसी प्रकार सब जगत्में कार्य कर रही है। इसी शक्तिसे सब जगत् चल रहा है। परंतु यहां मनुष्यका ही हमें विचार करना है। मनुष्यमें यह आदित्य शक्ति मस्तिष्कमें रहती है, नेत्रमें रहती है और पेटमें रहती है। मस्तिष्कमें मज्जाकेंद्र चलाती है, पेटमें पाचक केंद्रको चेतना देती हैऔर नेत्रमें देखनेका व्यापार कराती है। इनमेंसे कोई भी आदित्य शक्ति कम हुई तो भी मनुष्यका आयुष्य घटता जायगा। मस्तिष्कका मज्जाकेंद्र आदित्य शक्तिसे हीन होगया तो संपूर्ण शरीर चेतना रहित हो जाता है पेटका पाचक केंद्र आदित्य शक्तिसे हीन होगया तो हाजमा बिगड जाता है, नेत्रकी आदित्यशक्ति हटगई तो मनुष्य अंधा बनता है और उसके सब व्यवहार ही बंद हो जाते हैं। इतना महत्त्व इस आदित्य शक्तिका मनुष्यके अथवा प्राणीके शरीरमें है। इसलिये वेदमें कहा है कि—

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च । ऋग्वेद. १। ११५। १

" यह आदित्य सूर्य ही स्थावर जंगम जगत्का आत्मा है।" पाठक इस मंत्रका आशय ध्यानमें रखें और अपने अंदरकी आदित्य शक्ति सदा जाग्रत रखनेका अनुष्ठान करें। सूर्यभेदन व्यायाम और सूर्यभेदी प्राणायाम द्वारा पेटके स्थानमें रहनेवाली आदित्य शक्ति जाग्रत हो जाती है, ध्यान धारणा द्वारा मस्तिष्ककी आदित्य शक्ति जाग्रत होती है, तथा त्राटक आदि अभ्यास द्वारा नेत्रकी आदित्य शक्ति जाग्रत हो जाती है। इस प्रकार योगाभ्यास द्वारा अपने अंदरकी आदित्य शक्ति जाग्रत और बलयुक्त करनेसे मनुष्य दीर्घजीवी हो सकता है।

इस प्रथम मंत्रके ये उपदेश यदि पाठक ध्यानमें धारण करेंगे और इन उपदेशोंका योग्य अनुष्ठान करेंगे तो उनकी आयु बढ जायगी इसमें कोई संदेह ही नहीं है। " समाजमें निर्भयता, परमेश्वरपर दृढनिष्ठा, वायु जल सूर्य आदि देवताओंसे अधिक संबंध करना और अपने अंदर आदित्य शक्तियोंकी जाग्रती करना " यह संक्षेपसे दीर्घायु प्राप्त करनेका मार्ग है।

इसी मार्गका थोडासा स्पष्टीकरण आगेके मन्त्रोंमें है, वह अब देखिये-

देवोंके पिता और पुत्र।

इस आयुष्यवर्धन सूक्तके द्वितीय मंत्रमें कहा है, कि " हे देवो ! जो तुम्हारे पिता हैं और तुम्हारे पुत्र हैं वे मेरी बात सुनें ! मैं तुम्हारे ही आधीन इस मनुष्यको करता हूं, तुम इसको दीर्घ आयुष्य तक सुखसे पहुंचाओ। " (मन्त्र २)

इस द्वितीय मंत्रमें " देव, देवोंके सब पिता और देवोंके सब पुत्र ये सब मनुष्यको सुखसे दीर्घ आयुष्य तक पहुंचानेवाले हैं " ऐसा कहा है, यह सूचना मनन करने योग्य है। यह मंत्र ठीक समझमें आनेके लिये देव कौन हैं, उनके पिता कौन हैं और उनके पुत्र कौन हैं, इसका विचार करना यहां अत्यंत आवश्यक है। अथर्ववेदमें इन पिता पुत्रोंका वर्णन इस प्रकार आया है—

दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा ।
यो वै तान्विद्यात्प्रत्यक्षं स वा अद्य महद्वदेत् ॥ ३ ॥
प्राणापानौ चक्षुःश्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ्मनस्ते वा आकूतिमावहन् ॥ ४ ॥
कुत इन्द्रः कुतः सोमः कुतो अग्निरजायत ।
कुतस्त्वष्टा समभवत्कुतो धाताऽजायत ॥ ८ ॥
इन्द्रादिन्द्रः सोमात्सोमो अग्नेरग्निरजायत ।
त्वष्टा ह जज्ञे त्वष्टुर्धातुर्धाताऽजायत ॥ ९ ॥
ये त आसन्दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा ।
पुत्रेभ्यो लोकं दत्वा कस्मिंस्ते लोक आसते ॥ १० ॥
[अथर्व ११।८।१०]

(पुरा) सबसे प्रथम (देवेभ्यः दश देवाः) देवोंसे दश देव (साकं अजायन्त) साथ साथ उत्पन्न हुए। जो इनको प्रत्यक्ष जानेगा, (सः अद्य महत् वदेत्) वह बडे महत्त्वके विषयमें

बोलेगा। वही ब्रह्मका ज्ञान कहेगा॥ ३॥ प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र, (अ-क्षितिः) अविनाशी बुद्धि, और (क्षितिः) नाशवान चित्त, व्यान, उदान, वाचा और मन ये दस देव तेरे (आकूतिं आवहन्) संकल्पको उठाते हैं॥ ४॥ कहांसे इन्द्र, सोम, और अग्नि होगये? कहांसे त्वष्टा हुआ, और धाताभी कहांसे हो गया?॥ ८॥ इन्द्रसे इन्द्र, सोमसे सोम, अग्निसे अग्नि, त्वष्टासे त्वष्टा, और धातासे धाता हुआ है॥ ९॥ (ये पुरा देवेभ्यः दश देवाः) जो पहिले देवोंसे दश देव हुए हैं, (पुत्रेभ्यो लोकं दत्वा) पुत्रोंको स्थान देकर वे स्वयं (कस्मिन् लोके आसते) किस लोकमें बैठे हैं? ॥ १०॥

इन मंत्रोंमें देव, देवोंके पिता और पुत्र कौनसे हैं इसका वर्णन है। प्राण अपानादि दश देव इन्द्रादि देवोंसे बने हैं और वे पुत्र रूप देव इस शरीरमें रहते हैं, इन पुत्रदेवोंके पिता देव इस जगत्में हैं और उनके भी पिता परमात्मामें रहते हैं, इसका स्पष्टीकरण यह है—प्राणरूप देव मनुष्य शरीरमें है, वह जगत्में संचार करनेवाले वायुका पुत्र है, और इस वायु-कामी पिता-वायुका भी वायु-परमपिता परमात्मा है। इसी प्रकार चक्षुरूपी पुत्रदेव शरीरमें रहता है, उसका पिता सूर्यदेव द्युलोकमें है, और सूर्यका पिता-सूर्यका भी सूर्य-परमपिता परमात्मा है। इसी प्रकार अन्यान्य देवोंके विषयमें जानना योग्य है। यह विषय इससे पूर्व आचुका है, इसलिये यहां अधिक विवरण की आवश्यकता नहीं है।

सबका सारांश यह है कि पुत्र रूपी देव प्राणियोंके इन्द्रियों और अवयवोंमें अर्थात् शरीरमें रहते हैं। इनके पितृदेव भूः-भुवः स्वः इस त्रिलोकीमें रहते हैं और इन सूर्यादि देवोंके भी पिता विशेष शक्तिके रूपसे परमात्मामें निवास करते हैं।

हमारी आंख सूर्यके विना कार्य करनेमें असमर्थ है और सूर्य परमात्माकी सौर महाशक्तिके विना अपना कार्य करनेमें असमर्थ है। इसी प्रकार संपूर्ण देवों और उनके पिता पुत्रोंके विषयमें जानना योग्य है। इन सबके आधीन मनुष्यका दीर्घायु बनना है।

इसलिये जो दीर्घ आयुष्यके इच्छुक हैं, वे भक्तियुक्त *अंतःकरणसे अपना संबंध परम पिता परमात्मासे दृढ करें। यह परम पिता परमात्मा सूर्यका भी सूर्य, वायुका भी वायु, प्राण का भी प्राण, अर्थात् देवोंका भी देव है और वही हम सबका पिता है। इसकी भक्ति यदि अंतःकरणमें दृढ हो गई तो मनकी समता स्थिर रह सकती है और उससे दीर्घ आयु प्राप्त होती है। इस प्रकार देवोंके पितासे मनुष्यका संबंध होता है और यह संबंध अत्यंत लाभकारी है।*

वायु सूर्य आदि देवोंसे हमारा संबंध किस प्रकार है और उसका हमारे आरोग्य और दीर्घ आयुसे कितना घनिष्ठ संबंध है, यह हमने प्रथम मंत्रके व्याख्यानके प्रसंगमें वर्णन किया ही है इसलिये उसको दुहरानेकी *यहां आवश्यकता नहीं है।*

प्राण, चक्षु, कर्ण आदि देवपुत्र हमारे शरीरमें ही रहते हैं। योगादि साधनोंसे इनका बल बढ सकता है। इसलिये इनके व्यायामके अनुष्ठानसे पाठक इनकी शक्ति विकसित करें और अपना शरीर नीरोग और बलवान बनाकर दीर्घायुके अधिकारी बनें।

इस प्रकार मनुष्यका दीर्घ आयुष्यके साथ देवों, देवोंके पितरों और देवोंके पुत्रोंका संबंध है। यह जानकर योग्य-*अनुष्ठान द्वारा आयुष्यवर्धन का प्रयत्न करें।*

परमपिता परमात्मा यद्यपि एक ही है तथापि वह संपूर्ण सूर्य, चंद्र, वायु, रुद्र आदि अनेक देवताओंकी विविध शक्तियोंसे युक्त है, इसलिये संपूर्ण देवताओंका सामुदायिक पितृत्व उसमें है, *ऐसा काव्यमय वर्णन मंत्रमें किया है यह उचितही है।* इस प्रकार इस मंत्रमें मनुष्यके दीर्घ आयुष्यके अनुष्ठान का मार्ग इस मंत्रमें उत्तम और स्पष्ट शब्दोंद्वारा बताया है। पाठक इसका विशेष विचार करें।

देवोंके स्थान।

तृतीय मंत्रमें देवोंके स्थान कहे हैं। यह तृतीय मंत्र यह *आशय प्रकट करता है, कि " द्युलोक, अंतरिक्ष, पृथिवी, औषधि, पशु, जल, इन, स्थानोंमें देव रहते हैं, ये मनुष्यके लिये दीर्घ आयु करते हैं और जिनकी सहायतासे सैकडों अपमृत्यु दूर हो जाते हैं।"* (मंत्र ३) यह मंत्र बडा विचार करने योग्य है।

द्युलोकमें सूर्यादि देव, अंतरिक्षमें वायु, रुद्र, इन्द्र, चन्द्र आदि देव, पृथ्वीमें अग्नि आदि देव, औषधियोंमें रसात्मक सोमदेव पशुओंमें दुग्धादिरूपसे अमृत देव, जलमें वरुण आदि देव निवास करते हैं। ये सब देव मनुष्यकी आयु बढानेके कार्यमें सहायक होते हैं। सूर्य देव जीवन देता है, वायु प्राण देता है; इन्द्र और चन्द्र क्रमशः सुषुप्ति और जागृतिके स्थापक और अव्यापक मनके संचालक देव हैं, रुद्र स्वयं प्राणोंका चालक है, अग्नि गर्मीसे संबंध रखता है, औषधिवनस्पतियोंसे अन्न तथा दवाइयां बनकर मनुष्यकी सहायता करती हैं, पशुओंसे दुग्ध रूपी अमृत मिलता है, जल देवसे वीर्य बनता है, इस प्रकार अन्यान्य देव मनुष्यके सहायक हैं। परंतु प्रयत्न द्वारा

मनुष्यने उनसे लाभ उठानेका पुरुषार्थ करना आवश्यक है।

इन सब देवोंसे अपना संबंध सुरक्षित करके, उनसे यथायोग्य लाभ लेनेका यत्न करनेसे आयुष्य बढ सकता है। इन देवोंसे नाना प्रकारकी चिकित्साएं बनी हैं, द्युलोकके देवोंसे सौरचिकित्सा वर्णचिकित्सा, प्रकाशकिरण-चिकित्सा; अंतरिक्ष स्थानीय देवोंसे वायुचिकित्सा, विद्युच्चिकित्सा, मानसचिकित्सा अथवा चांद्रचिकित्सा, पृथ्वीस्थानीय देवोंसे अग्निचिकित्सा, खनिजपदार्थोंसे रसचिकित्सा, शस्त्रचिकित्सा, औषधियोंसे तथा वनस्पतियोंसे भैषज्यचिकित्सा, पशुओंके दूधसे दुग्धचिकित्सा अर्थात् पशुओंको विविध औषधियां खिलाकर तथा विविध रंगोंकी गौओंके दूधका उपयोग करनेसे, तथा पशुके मूत्रादिके उपयोगसे विविध चिकित्साएं सिद्ध होती हैं, जलसे जल चिकित्सा, इस प्रकार अनेकानेक चिकित्साएं होती हैं।

इन सब चिकित्साओंका अर्थ ही यह है कि विविध रीतिसे इन सब देवोंकी दिव्य शक्तियोंसे लाभ उठाना। प्राचीन कालके ऋषिमुनियोंने इन सब देवोंसे लाभ उठानेके जो जो प्रयत्न किये, उनका फल ही ये सब चिकित्साएं हैं। आजकल भी इस दिशासे विविध प्रयत्न हो रहे हैं। इन देवताओंमें विविध और अनंत शक्तियां हैं, उनकी समाप्ति नहीं होगी, इसलिये मनुष्योंको विविध रीतिसे यत्न करके इन देवताओंसे विशेष लाभ उठानेके लिये यत्न करना चाहिये। इतने प्राचीन कालमें ऋषिलोग यह उद्योग करते थे और लाभ उठाते थे और दीर्घजीवी भी बने थे। यह सिलसिला टूट गया है, तथापि आजकल प्रयत्न करनेपर उसी मार्गसे बहुत खोज होना संभव है। जो पाठक इस क्षेत्रमें कार्य कर सकते हैं कार्य करें और विद्याकी उन्नति करें तथा यशके भागी बनें। अस्तु। इस प्रकार इन देवताओंकी शक्ति अपने अंदर लेने और उस शक्तिको अपने अंदर स्थिर करनेसे मनुष्य दीर्घ आयुष्य प्राप्त कर सकता है।

साधारणसे साधारण प्रयत्नसे भी बडा लाभ हो सकता है। जैसा सूर्य किरणोंमें अपना नंगा शरीर तपानेसे, वायुमें नंगे शरीर घूमनेसे, जलमें तैरनेसे उत्तम औषधियोंका रस पीनेसे और गोदुग्ध आदिके सेवनसे साधारण परिस्थितिमें रहनेवाले मनुष्य भी बहुत लाभ उठा सकते हैं। फिर जो विविध यंत्र निर्माण द्वारा इन देवी शक्तियोंसे अधिक लाभ उठानेका पुरुषार्थ करेंगे उनके विषयमें क्या कहना है। इस प्रकार ये देवताएं गौके समान हैं, इनसे जितना दूध दोहना चाहो आप उतना दुह सकते हैं। इनमें अनंत अमृत रस भरा है। जो जितना पुरुषार्थ करेगा, उसको उतना अमृत मिलेगा और वह उतना अमर होगा।

देवताओंके चार वर्ग।

इस प्रकार तीन मंत्रोंमें देवताओंसे अमृतरस प्राप्त करके अमरत्व प्राप्त करके अर्थात् दीर्घायु बननेके अनुष्ठानका स्वरूप बतानेके पश्चात् चतुर्थ मंत्रमें देवताओंके चार वर्गोंका वर्णन किया है और इन देवताओंके अपने सहकारी सदस्य बनानेका उपदेश किया है। इस चतुर्थ मंत्रका आशय यह है—

" देवोंमें प्रयाज, अनुयाज, हुतभाग और अहुताद ये चार वर्गके देव हैं। इन देवोंसे ये पांचों दिशाएं विभक्त हुई हैं। ये सब देव मनुष्यके सहकारी सभ्य बनें। " (मंत्र४)

इन चार वर्गोंके देवोंके लक्षण इनके वाचक शब्दोंसे ही व्यक्त होते हैं। ये लक्षण देखिये—

१ प्रयाजाः— विशेष यजन करने वाले,

२ अनुयाजाः— अनुकूल यजन करने वाले,

३ हुतभागाः— हवन का भाग लेने वाले,

४ अहुतादः— हवनका भाग न खानेवाले।

पाठक इन देवोंको अपने शरीरमें सबसे प्रथम देखें— (१) जिनपर इच्छा शक्तिका परिणाम नहीं होता, परंतु जो अवयव अपनी ही गतिसे कार्य करते हैं उन अवयवोंका नाम प्रयाज है, जैसे हृदय आदि अवयव। (२) जो अवयव अपनी इच्छा शक्तिसे अनुकूल कार्यमें लगाये जा सकते हैं उनको अनुयाज कहते हैं, जैसे हाथ, पांव, आंख आदि। (३) हुतभाग वे इन्द्रियां हैं जो भोग की इच्छुक हैं और कार्य करनेसे थकती हैं और विश्रामसे तथा अन्नरस मिलनेसे पुष्ट होती हैं। (४) शरीरमें अहुताद केवल ग्यारह प्राण ही हैं, क्योंकि ये प्राण शरीरमें सदा कार्य करते हैं और स्वयं कुछभी भोग नहीं लेते, जन्मसे लेकर मरनेतक बराबर कार्य करते हैं।

इस प्राणका वर्णन तथा अन्य इन्द्रियोंका वर्णन इसी प्रकार उपनिषदोंमें किया है। प्राणाग्निहोत्र उपनिषद्में शरीर यज्ञके प्रयाज और अनुयाज का वर्णन इस प्रकार है—

शारीरयज्ञस्य···के प्रयाजाः केऽनुयाजाः ॥
महाभूतानि प्रयाजाः ॥
भूतान्यनुयाजाः ॥ प्राणाग्निहोत्र० ॥ १—४

शरीरमें चले हुए यज्ञके प्रयाज और अनुयाज कौन हैं? महाभूत प्रयाज और भूत अनुयाज हैं। इसीप्रकार हुतभाग और अहुताद विषयक वर्णन उपनिषदोंमें तथा ब्राह्मणोंमें किया है जिसका तात्पर्य ऊपर दिया ही है।

इसी आभ्यंतर दृष्टिसे यहां ब्राह्मणोंमें लिया जाता है,

उसका वर्णन यहां करनेकी आवश्यकता नहीं है। अनुयाजों से प्रयाज अधिक महत्त्व के हैं तथा हुतभागों से अहुताद विशेष महत्त्व रखते हैं। जो शरीरशास्त्र जानते हैं उनको इसका अधिक विस्तार करनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि वे जानते ही हैं कि इच्छा शक्तिकी नियंत्रणासे चलनेवाले हस्तपादादि अवयवोंकी अपेक्षा अनिच्छासे कार्य करनेवाले हृदयादि अंतरवयव अधिक महत्त्वके हैं। तथा अहुताद अर्थात् कुछ भी भोग न लेते हुए जन्मसे मरनेतक अविश्रान्त कार्य करनेवाले प्राणादिक अधिक श्रेष्ठ हैं और नेत्र, कर्ण आदि अवयव जो श्रमसे थकते हैं, विश्राम करते हैं और भोग भी भोगते हैं ये उनसे गौण हैं।

यह मुख्य गौणका भेद देखकर दीर्घायु प्राप्तिका अनुष्ठान करनेवाले को उचित है, कि वह अपने अंदर के मुख्य देवों अर्थात इंद्रियशक्तियोंको अधिक बलवान् करे और अन्यों को भी बलवान करे, परंतु यह ख्याल रखे कि गौण अवयवों की शक्ति बढाने के कार्य करते हुए मुख्य अवयवोंकी क्षीणता न होने दें। उदाहरण के लिये पहलवानोंके व्यायाम ही लीजिये। पहलवान लोग अपने शरीरके पुट्ठोंको बलवान बनानेके यत्न बहुत करते हैं, परंतु हृदय आदि अंतरवयवोंका ख्याल नहीं करते हैं, इससे ऐसा होता है कि उनका स्थूल शरीर बडा बलवाला होता है, परंतु हृदयादि विशेष महत्त्वके अवयव कमजोर हो जाते हैं। इसका परिणाम अल्पायुमें उनकी मृत्यु हो जाती है।

यदि ये लोग साथ हृदयको भी बलवान बनानेका यत्न करेंगे तो ऐसा नहीं होगा इसलिये यहां कहना यह है कि अपने अंदर जो देवताओंके अंश रहते हैं उनमें मुख्य अवयवोंका विशेष ख्याल करना, उनकी शक्ति बढानेका और उनकी कमजोरी न बढे इसका विशेष विचार करना चाहिये। इसके पश्चात् गौण अवयवोंका विचार करना उचित है। श्वाससंस्थान, मज्जा-संस्थान और हृदयसंस्थान आदि महत्त्वपूर्ण संस्थानोंका बल बढना चाहिये और स्नायु आदि उनके अनुकूल रहनेयोग्य शक्तिशाली बनने चाहियें।

मंत्रका प्रयाज शब्द मुख्यका भाव और अनुयाज शब्द गौणका भाव बताता है। ये सब देव हमारे चारों ओर सब दिशाओंमें विभक्त हुए हैं और उन्होंने संपूर्ण स्थानको विभक्त किया है। ये सब देव हमारे शरीरमें चलनेवाले शतसांवत्सरिक सत्रके भागी बनें, अर्थात ये इस सौ वर्ष चलनेवाले जीवन रूपी महायज्ञके हिस्सेदार हैं ही, परंतु ये अपना कार्य करनेमें समर्थ बनकर अपना यज्ञका भाग उत्तम रीतिसे पूर्ण करनेमें समर्थ हों, अपना यज्ञका भाग उत्तम रीतिसे पूर्ण करें और निर्विघ्नतासे यह शतसांवत्सरिक यज्ञ चलानेमें हमारे सहकारी बनें।

इस प्रकार इन मंत्रोंका आशय है, ये मंत्र स्पष्ट हैं और बहुत बोधप्रद हैं। यदि पाठक इस ढंगसे अनुष्ठान करेंगे तो उनको निःसंदेह लाभ हो सकता है। यह "आयुष्य-गण" का सूक्त है और पाठक इस विषयके अन्य सूक्तोंके साथ इसका विचार करें।

आशा-पालक-सूक्त।

(३१)

(ऋषिः— ब्रह्मा। देवता— आशापालाः; वास्तोष्पतिः)

आशानामाशापालेभ्यश्चतुर्भ्यो अमृतेभ्यः। इदं भूतस्याध्यक्षेभ्यो विधेम हविषा वयम् ॥ १ ॥

य आशानामाशापालाश्चत्वार स्थन देवाः। ते नो निर्ऋत्याः पाशेभ्यो मुञ्चतांहसो-अंहसः ॥ २ ॥

अस्रामस्त्वा हविषा यजाम्यश्लोणस्त्वा घृतेन जुहोमि।

य आशानामाशापालस्तुरीयो देवः स नः सुभूतमेह वक्षत् ॥ ३ ॥

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः।

विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ॥ ४ ॥

अर्थ- (भूतस्य अध्यक्षेभ्यः) जगत्के अध्यक्ष (अमृतेभ्यः) अमर (आशानां चतुर्भ्यः आशापालेभ्यः) दिशाओंके चार दिशापालोंके लिये (वयं) हम सब (हविषा इदं विधेम) हविर्द्रव्यसे इस प्रकार अर्पण करते हैं ॥ १ ॥ हे (देवाः) देवो! (ये आशानां चत्वारः आशापालाः स्थन) जो तुम दिशाओंके चार दिशापालक हो (ते नः) वे तुम हम सबको (निर्ऋत्याः पाशेभ्यः) अवनतिके पाशोंसे तथा (अंहसः अंहसः) हरएक पापसे (मुञ्चत) छुडाओ ॥ २ ॥ (अ-श्रामः) न थका हुआ मैं (हविषा त्वा यजामि) हविर्द्रव्यसे तेरा यजन करता हूं । (अ-श्लोणः त्वा घृतेन जुहोमि) लंगडा न होता हुआ तुझसे घीसे अर्पण करता हूं । यह (आशानां आशापालः तुरीयः देवः) जो दिशाओंका दिशापाल चतुर्थ देव है (सः नः सुभूतं इह आवक्षत्) वह हम सबको उत्तम प्रकारसे यहां पहुंचावे ॥ ३ ॥ (नः मात्रे उत पित्रे स्वस्ति अस्तु) हम सबकी माताके लिये तथा हमारे पिताके लिये आनंद होवे । तथा (गोभ्यः जगते पुरुषेभ्यः स्वस्ति) गौवोंके लिये, चलने फिरनेवालोंके लिये और पुरुषोंके लिये सुख होवे । (नः विश्वं सुभूतं सुविदत्रं अस्तु) हम सबके लिये सब प्रकारका ऐश्वर्य और उत्तम ज्ञान हो और हम (सूर्यं ज्योक् एव दृशेम) सूर्यको बहुत कालतक देखते रहें अर्थात् हम दीर्घायुषी हों ॥ ४ ॥

भावार्थ— चार दिशाओंके चार अमर दिक्पाल हैं, वे इस बने हुए जगत्के अध्यक्ष हैं । उनकी पूजा हम करते हैं ॥ १ ॥ चार दिशाओंके चार दिक्पाल हैं, वे हमें हरएक पापसे बचावें और दुर्गतिसे भी हमारा छुटकारा करें ॥ २ ॥ मैं न थकता हुआ उनका सत्कार करता हूं, लंगडा लूला न बनकर मैं उनको घी देता हूं, जो इन चार दिक्पालोंके चतुर्थ देव है वह हमें सुखपूर्वक उत्तम अवस्थातक पहुंचावे ॥ ५ ॥ हमारे माता पिता, हमारे अन्य इष्टमित्र, हमारे गाय घोडे आदि पशु तथा जो भी हमारे प्राणी हों वे सब इस इस प्रकार सुखी हों । हमारा सब प्रकारसे अभ्युदय होवे और हमारा ज्ञान उत्तम प्रकारसे बढे तथा हम दीर्घायु हों ॥ ४ ॥

इस द्वार से जानेसे उच्चतर अवस्था प्राप्त होती है।

यह द्वार मज्जा केन्द्रके साथ संबंधित है। इसी मज्जा केन्द्रके साथ संबंध रखनेवाला निचला द्वार शिश्न है जिससे वीर्यका पात होता है। इसके योग्य नियम पालनसे सुयोग्य संतति उत्पन्न होती है, परंतु इसके अनियम में चलनेसे मनुष्यकी अधोगति होती है। ये दो द्वार मनुष्यको उच्च और नीच बनानेमें समर्थ हैं। ब्रह्मचर्य पालनद्वारा उत्तर मार्गसे जानेका उपनिषदोंका वर्णन इसी उत्तर मार्गको सूचित करता है, इसीका नाम "उत्तरायण (उत्तर+अयन)" अर्थात् उत्तर मार्गसे जाना है। इसके विरुद्ध "दक्षिणायन" अर्थात् दक्षिण मार्गसे जाना है, जिसके संयमसे उत्तम गृहस्थधर्मपालनपूर्वक उन्नति होना संभव है, परंतु असंयमसे मनुष्य इतना गिरता है कि उसका कोई ठिकाना ही नहीं होता। ये दो मार्ग मज्जातंतुओंके साथ संबंध रखनेवाले हैं।

इस प्रकार पूर्वद्वार और पश्चिमद्वार ये शरीरमें अन्ननलिका के साथ संबंध बताते हैं तथा उत्तर द्वार और दक्षिण द्वार ये दो मार्ग मज्जातंतुओंके साथ संबंध रखते हैं। ये चार द्वारोंके चार संरक्षक देव हैं परंतु ये देव राक्षसोंके हमलेके अंदर दबने नहीं चाहिये।

आशा और दिशा।

इस सूक्तमें दिशावाचक "आशा" शब्द है और, उसके पालकका नाम "आशापाल" मंत्रोंमें आया है। "आशा" शब्दके दो अर्थ हैं। एक "दिशा" और दूसरा "आशा, महत्त्वाकांक्षा, उम्मीद"। मनुष्यकी जैसी आशा, इच्छा, महत्त्वाकांक्षा और उम्मीद होती है उसी प्रकारकी उसकी कार्य करनेकी दिशा होती है। मनुष्य जिस समय आशाहीन हो जाता है, निराश होता है, हताश होता है, उस समय वह इस जगतसे हटनेका या मर जानेका इच्छुक होता है। यह विचार यदि पाठकोंके मनमें जम जायगा, तो उनको पता लग जायगा कि यह सूक्त मनुष्यके साथ कितना घनिष्ठ संबंध रखता है।

जिस समय "आशा" शब्दका अर्थ "आशा, आकांक्षा," आदि किया जाता है उस समय यही सूक्त मनुष्यका अभ्युदयका मार्ग बताता है। तथा जिस समय इसी "आशा" शब्दका अर्थ "दिशा" कियाजाता है, उस समय यही सूक्त बाह्य जगत् तथा राष्ट्रके प्रबंधका भाव बताता है। सूक्तकी यह शब्दरचना विशेष गंभीर है और वह हरएक को वेदकी अद्भुत वर्णन शैलीका स्वरूप बता रही है।

सूक्तका मनुष्यवाचक भावार्थ।

मनुष्यकी चार आशाएँ हैं, उनके चार अमर पालक हैं। इन भूताध्यक्षोंकी हम हवनसे पूजा करते हैं ॥१॥ मनुष्यकी चार आशाओंके चार पालक हैं, वे हमें पापसे बचावें और दुष्ट अवस्थासे भी बचावें ॥२॥ मैं न थकता हुआ और अंगोंसे दुर्बल न होता हुआ हविसे तथा घृतसे इनको तृप्त करता हूं इन चार आशाओंके पालकोंमें से चतुर्थ पालक जो है वह हमें उत्तम आनंदको प्राप्त करनेमें सहायक होवे ॥३॥ इनकी सहायतासे हमारे माता, पिता, इष्ट, मित्र, गाय, घोडे आदि सब सुखी हों। हमारा अभ्युदय होवे और हम ज्ञानी बनकर दीर्घायु बनें।

केवल एक "आशा" शब्दका अर्थ ठीक प्रकार ध्यानमें आनेसे व्यक्तिविषयक उन्नतिके मार्गके संबंधमें कैसा उत्तम उपदेश मिल सकता है यह पाठक यहां देखें। यह उपदेश इतना महत्त्वपूर्ण है कि इसके अनुसार चलनेसे मनुष्य ऐहिक अभ्युदय तथा पारमार्थिक निःश्रेयस प्राप्त कर सकता है। इस सूक्तपर बहुत लिखा जा सकता है, परंतु यहां संक्षेपसे ही इसका विवरण करेंगे।

मनुष्यमें

चार द्वारोंकी चार आशाएँ।

मनुष्यके शरीरमें चार द्वार हैं, इस बातका वर्णन इससे पूर्व कियाही है। इन चार द्वारोंके कारण चार आशाएं मनुष्यके मनमें उत्पन्न होती हैं। जिस प्रकार घरके जितने द्वार होते हैं उनसे बाहर जाने और उन दिशाओंसे कार्य करनेकी इच्छा घरके मालिक की होती है, उसी प्रकार इस शरीररूपी घरके स्वामी आत्मदेवकी आशाएं इस घरके द्वारोंसे जगत्में गमन करके वहांके कार्यक्षेत्रमें पुरुषार्थ करनेकी होती है। वास्तवमें इस शरीरमें अनेक द्वार हैं, इसमें नौ द्वार हैं, ऐसा अन्यत्र कई स्थानोंमें कहा है। देखिये–

> अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ।
> तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषाऽऽवृतः ॥
> (अथर्व० १०।२।३१)

*

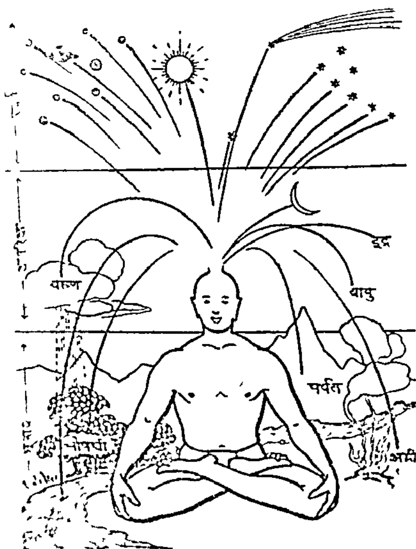
"आठ चक्र और नौ द्वारोंसे युक्त यह देवोंकी अयोध्या नामक नगरी है, इसमें सुवर्णमय कोश है वही तेजस्वी स्वर्ग है।"

इस अथर्व श्रुतिमें शरीरका और हृदय गुहाका वर्णन करते हुए कहा है, कि इस शरीरमें नौ द्वार हैं। ये द्वार हैं इसमें कोई संदेह ही नहीं है। दो नाक, दो आंख दो कान, एक मुख, गुदा और शिश्न ये नौ द्वार यहां कहे हैं। इनमें से मुख पूर्व द्वार, गुदा पश्चिम द्वार, शिश्न दक्षिण द्वार इन तीनोंका संबंध इस अपने प्रचलित सूक्तके मंत्रमें है। जो चतुर्थद्वार है वह आठ चक्रवाले पृष्ठवंशके ऊपर मस्तिष्कसे भी ऊपरके भागमें विद्दति नामसे प्रसिद्ध है। इसका वर्णन अथर्ववेदमें इस प्रकार है—

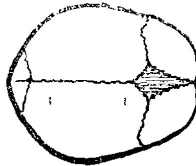
मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत्।
मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरयत् पवमानोऽधि शीर्षतः॥
(अथर्व० १०।२।२६)

"मस्तक और हृदय को सीकर अर्थात् एक केन्द्रमें लीन करके मस्तकसे भी ऊपर सिरके बीचमें से प्राण फेंका जाता है।"

विद्दति-द्वारसे प्रवेश।



विदृति द्वारसे तैंतीस देवोंके साथ आत्माका शरीरमें प्रवेश। अंदर आनेपर यह द्वार बंद होता है। पश्चात् प्राणसाधन द्वारा अपनी इच्छासे इसी द्वारसे वापस जानेपर मुक्ति। साधारण जन देहत्याग करनेके समय किसी अन्य द्वारसे बाहर जाते हैं, परन्तु केवल योगी ही अथर्ववेदके कहे मार्गसे मस्तिष्कके परे इसी द्वारसे जाता है और मुक्त होता है।



मस्तकमें विदृतिद्वार

इस मंत्रमें "मस्तिष्कात् ऊर्ध्वः। अधि शीर्षत।" आदि शब्दों द्वारा मस्तकके ऊपर के उत्तर द्वारका वर्णन किया है। अर्थात् जो चार द्वार हमने इस मंत्रके व्याख्यानके प्रसंगमें निश्चित किये हैं उनका वेदमें अन्यत्र वर्णन इस प्रकार आता है। नौ द्वारोंमेंसे तीन और इस मंत्रका सस्थानका एक मिलकर चार द्वार हैं और उनकी चार आशाएं अथवा दिशाएं हैं। अब ये आशाएं देखिये—

द्वार		आशा
१ पश्चिमद्वार = गुदा	= की आशा	विसर्जन करना। शरीरधर्म।
२ पूर्वद्वार = मुख	= ,, ,,	मधुर भोजन करना। अर्थप्राप्ति।
३ दक्षिणद्वार = शिश्न	= ,, ,,	भोगका उपभोग करना। काम।
४ उत्तरद्वार = विदृति	= ,, ,,	बंधनसे मुक्त होना। मोक्ष।

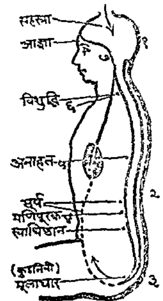
आरोग्यका आधार

इसमें पश्चिमद्वारसे जो आशा है वह केवल "शरीरधर्म" पालन करने की ही है तथापि इस शौच धर्मसे अर्थात् पवित्र बनने के कर्मसे शरीर शुद्धि होनेके कारण इससे शरीर स्वास्थ्यकी प्राप्ति होती है। सब अन्य भोग इसके आश्रयसे हैं यह बात हरएक जान सकते हैं। इस द्वारका कार्य बिगड जानेसे शरीर रोगी होता है और अन्य द्वारोंकी आशाएं पूर्ण होने की असमर्थता होती है। इसके उत्तम प्रकार कार्य करनेपर अन्य आशाएं सफल होनेकी संभावना है। इसलिये हम कह सकते हैं, कि इस पश्चिम द्वारकी आशा मनुष्यके मनमें "आरोग्यकी प्राप्ति" रूपसे रहती है। इस आशाका कार्यक्षेत्र बहुत बडा है, मनुष्य इस विषयमें जितना कार्य करेगा उतना वह स्वस्थता प्राप्त करेगा और वह यदि ऐसे व्यवहार करेगा कि इस पश्चिम द्वारके व्यवहार ठीक न चलें तो उसके रोगी होनेमें कोई शंकाही नहीं है।



पृष्ठवंश

विदृतिद्वार



सहस्रार चक्र
पृष्ठवंशमें चक्रोंके स्थान।

खानपान ।

अब पूर्वद्वारकी आशा देखिये। संक्षेपसे इतना कहना इस विषयमें पर्याप्त होगा कि इस द्वारसे मनुष्य उत्तम अन्न और उत्तम पान करने की इच्छा करता है। मधुरताका प्रेम करते करते मनुष्य इतना अधिक खाता है कि वह अजीर्णसे बीमार हो जाता है। इसलिये इस विषयमें प्रयत्नपूर्वक संयम रखना चाहिये। रुचिका गुलाम और जिह्वाका दास जो बनता है उसकी आयु कष्टप्रद ही होती है। हरएक इंन्द्रियके विषयमें यही बात है। इस प्रकार इंद्रिय भोगके लिये धनकी आवश्यकता है इस हेतु इस द्वारकी आशा "अर्थकी प्राप्ति" ही है। यह आशा अत्यधिक बढानेसे कष्ट होंगे और संयम द्वारा अल्पावश्यकताके अनुसार भोग लेनेसे सुख बढेगा, उन्नति होगी। मुखद्वारसे शब्द बोलनेका भी एक काम होता है। उत्तम शब्द-प्रयोगसे जगत्‌में शान्ति फैलती है और कुशब्दके प्रयोगसे अशांति फैलती है। इस विषयमें भी जिह्वापर संयम रहना आवश्यक है। अन्यथा अनर्थ होनेमें कोई देर नहीं लगेगी। इस प्रकार इस द्वितीय द्वारकी आशाका संबंध मनुष्यकी उन्नतिके साथ है।

कामोपभोग ।

तीसरा दक्षिण द्वार है। इस शिस्नद्वारा जगत्‌में उत्तम प्रजनन अर्थात् सुप्रजाजनन करना आवश्यक है। परंतु जगत् में इसके असंयमसे जो अनर्थ हो रहे हैं, वे किसीसे छिपे नहीं है। इसका संयम महत्प्रयाससे साध्य होता है। ऊर्ध्वरेता होना ही वैदिक धर्मका साध्य है। इसके विचारसे इस द्वारकी आशाका पता लग जायगा। यह केंद्र अत्यंत महत्त्वका है, परंतु जनताका रुझान इसके कार्यमें बिगाड करनेकी ओर अधिक है और सुधारके मार्गमें प्रयत्न अति कम हैं।

बंधनका नाश ।

बननेके लिये ही ये सब धर्ममार्ग हैं। जिस समय आये हुए मार्गसे यह जीवात्मा वापस जानेकी शक्ति प्राप्त कर सकेगा उस समय इसको कोई बंधन कष्ट नहीं पहुंचा सकता। हरएक बंधन को दूर करनेकी इच्छा इसमें इस द्वारके कारण है।

इस प्रकार चार द्वार की चार आशाएं हैं और हरएक मनुष्य इन आशाओंके कार्यक्षेत्रमें बुरा या भला कार्य करता है और गिरता है या उठता है। इन आशाओंके कार्यक्षेत्रकी कल्पना पाठकोंको ठीक प्रकार हो गई, तो इस सूक्तके मंत्रोंका विचार समझनेमें कोई कठिनता नहीं होगी। इसलिये प्रथम इन चार द्वारोंका विचार पाठक बारबार मननद्वारा करें और यह बात ठीक प्रकार ध्यानमें धारण करें। तत्पश्चात् निम्नलिखित स्पष्टीकरण पढें—

अमर दिक्पाल।

इस सूक्तके प्रथम मंत्रके कथनमें तीन बातें कही हैं—"(१) चार आशाओंके चार अमर आशा पालक हैं। (२) वेही चार भूताध्यक्ष हैं। (३) उनकी पूजा हम हवनसे करते है।"

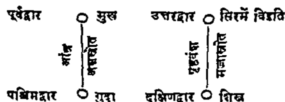
मनुष्यमें चार आशाएं कौनसी हैं, उन आशाओंका स्वरूप क्या है और उनके साथ मनुष्यके पतन अथवा उत्थानका किस प्रकार संबंध है, यह पूर्व स्थलमें बताया ही है। चार आशाएं मनुष्यके अंदर सनातन हैं, (१) शरीरधर्मका खयाल करना, (२) भोग प्राप्त करना, (३) कामका भोग करना और (४) बंधनसे निवृत्त होना, ये चार भावनाएं अथवा कामनाएं मनुष्यमें सदा जागती हैं, वृद्धमें तथा बालमें ये समानतासे रहती हैं। पशुपक्षियोंमें भी अल्पांशसे ये रहती हैं अर्थात् भूतमात्रमें ये सदा रहती हैं, इसलिये इनका सनातन अधिकार प्राणीमात्रपर है, मानो ये ही भूतोंके अध्यक्ष हैं। इनको अध्यक्ष इसलिये कहा कि है इनकी प्रेरणासे ही प्राणी अपने अपने सब व्यवहार करते हैं। यदि ये आशाएं प्राणियोंके अंदर न रहीं तो उनकी हलचल भी बंद हो जायगी। मनुष्यके संपूर्ण प्रयत्न इनकी आधीनतामें

पूजा से लोग अपना ही घात कर रहे हैं। इतनी बात सत्य है कि उत्तरद्वार जिसका नाम विद्दति है उसके पूजक अत्यंत अल्प हैं और पश्चिमद्वार की पूजा करना थोडे ही जानते हैं। पश्चिमद्वार की पूजा योगमें प्रसिद्ध " अपानायाम " से की जाती है। जिस प्रकार नासिका द्वारासे करनेका प्राणायाम होता है उसी प्रकार पश्चिम गुद द्वारसे अपानायाम किया जाता है। इसकी क्रिया भी थोडे लोग जानते हैं। यह क्रिया योग-शास्त्रमें प्रसिद्ध है और इससे नाभिके निचले भागका आरोग्य प्राप्त होता है। उत्तरद्वार विद्दतिके उपासक खास योगी होते हैं वे इस स्थानकी चालना करके अपनी मुक्तता प्राप्त करते हैं। इनकी हवनसे पूजा यह है—

१ पूर्वद्वार—— (मुख)- अन्नपानादिके हवनसे पूजा
२ दक्षिणद्वार- (शिस्न)- भोगादिद्वारा कामदेवकी पूजा।
३ पश्चिमद्वार – (गुदा)-- अपानायाम--अपानका प्राणमें हवन करके पूजा। इसका उल्लेख भगवद्गीतामें। भी है – अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथा परे। (भ० गी० ४।२९)
४ उत्तरद्वार-- (विद्दति)-- मस्तिष्कके मज्जाकेन्द्रके सहस्रारचक्रमें ध्यानादिसे पूजा।

यहां पाठक जान गये होंगे, कि पहिली दो उपासनाएं जगत् में अधिक हैं और दूसरी दो कम हैं। परंतु बीजरूपसे हैं। प्रथम मंत्रमें " हम चारों अमर आशापालोंकी हवनद्वारा पूजा करेंगे" ऐसा स्पष्ट कहा है। यह इसलिये कि हरएक मनुष्य चारोंकी उपासनाद्वारा अपना उद्धार करे।

यहां नियमन की बात पाठकोंको ध्यानमें धारण करनी चाहिये। यह नियमन इस प्रकार है—



पूर्व तथा पश्चिमद्वार ये हमारे आंतोंके विरुद्ध दिशाके मुख हैं। मुखका अतिरेक होनेसे गुदाका कार्य बिगडता है, और गुदाका कार्य ठीक रहनेसे मुखकी रुचि ठीक रहती है। इस प्रकार ये एक दूसरेपर नियमन करते हैं। इसी प्रकार मस्तिष्क और शिस्न ये परस्परका नियमन करते हैं। यदि शिस्नदेवने अतिरेक किया तो मस्तिष्क हलका होता है, और मनुष्य बुद्धि-का कार्य करनेमें असमर्थ होता है, पागल बनता है, निकम्मा होता है। तथा मस्तिष्कमें सुविचारोंको स्थिर करनेसे वे सुवि-चार शिस्नदेवका संयम करनेमें सहायक होते हैं। इस प्रकार ये परस्पर उपकारक भी हैं और घातक भी हैं। पाठक सोच कर जाननेका प्रयत्न करें कि ये किस प्रकार उपकारक होते हैं और कैसे घातक होते हैं तथा इनकी उपासना किस प्रकार करनी चाहिये और इनके प्रकोपसे किस प्रकार बचना चाहिये। अब द्वितीय मंत्रका विचार करेंगे--

पापमोचन।

द्वितीय मंत्रका आशय यह है-- "चार आशाओंके चार आशापालक देव हैं वे हमें पापसे तथा अधोगतिके पाशसे बचावें।"

पूर्वोक्त वर्णनसे पाठकोंने जान लिया होगा कि ये चार देव हमें किस प्रकार बचा सकते हैं और किस प्रकार गिरा सकते हैं। देखिये—

१ पूर्वद्वार–मुख=जिह्वाकी गुलामीसे खानपानमें अतिरेक होकर, पेटका बिगाड और स्वास्थ्यका नाश। इसी जिह्वाके संयमसे आरोग्यप्राप्ति।

२ पश्चिमद्वार--गुदा=पूर्वोक्त संयम और असंयमसे ही इसका लाभ या हानि प्राप्त होनेका संबंध है।

३ दक्षिणद्वार–शिस्न=ब्रह्मचर्यद्वारा संयमसे उन्नति, संयम-पूर्वक गृहस्थधर्म पालनसे सुप्रजाप्राप्ति और असंयमसे क्षय।

४ उत्तरद्वार--विद्दति—पूर्वोक्त संयम और असंयमसे इसके लाभ और हानि प्राप्त होनेका संबंध है।

इसका मनन करनेसे ये किस नियमसे पापसे छुडा सकते हैं इसका ज्ञान हो सकता है। पापसे छुडानेसे ही निर्ऋति के पाश-से मनुष्य छूट जाता है। निर्ऋतिका अर्थ नाश है। पाप करने-वालेको निर्ऋतिके अर्थात् विनाशके पाश बांध देते हैं। और पुण्यवानोंको उनसे कोई कष्ट नहीं होता। इस मंत्रका यह कथन बडा बोधप्रद है कि ये चार द्वारकी चार आशाएं मनुष्यको पापसे छुडा सकती हैं और बंधनसे भी मुक्त कर सकती हैं। पाठक अपनी अपनी अवस्थाका विचार करें और आत्मपरीक्षाद्वारा जाननेका यत्न करें कि उनके शरीरमें क्या हो रहा है। यदि

कोई आशापालक उनके विरुद्ध कार्य करता हो, या शत्रुके आधीन हुआ हो, तो सावधानीसे अपने बचावका यत्न करें। इस प्रकार द्वितीय मंत्रका विचार करनेसे इतना बोध मिला; अब तृतीय मंत्र देखते हैं—

चतुर्थ देव।

तृतीय मंत्रका आशय यह है--"मैं न थकता हुआ और अंगोंसे दुर्बल न होता हुआ हवनसे तथा घीसे इनकी तृप्ति करता हूं। इन चार आशापालोंमें जो चतुर्थ आशापालक देव है वह हमें सुखसे यहां आनंद स्थानमें पहुंचावे।"

इस मंत्रमें कहा हुआ " तुरीयः देवः" अर्थात् चतुर्थ देव विरतिद्वारका रक्षक मोक्षकी आशाका पालक है। इसी देवकी कृपासे अन्य सब द्वारोंका नियमन हो सकता है। इसी दृष्टिसे अन्य सब कार्य-व्यवहारका नियमन होना चाहिये। वैदिक धर्मके संपूर्ण कार्य-व्यवहार इसी दृष्टिसे रचे गये हैं। मोक्षके मार्गके ध्यानसे जगत्के सब व्यवहार होने चाहियें। इसीका नाम धर्म है। बंधनसे मुक्त होना मुख्य साध्य है, उसके सहायकारी सब अन्य व्यवहार होने चाहियें। अन्यथा जगत्के व्यवहारको अधिक महत्त्व देनेसे और मोक्षधर्मको कम महत्त्व देनेसे मनुष्यमें लोभादि होनेके कारण बडा अनर्थ होगा। त्यागपूर्ण जीवन और भोगपूर्ण जीवनका भेद यहां स्पष्ट होता है।

मंत्रमें कहा है कि न थकता हुआ और अवयवोंसे विकल न होता हुआ मैं इन देवोंकी पूजा करूंगा। इस कथनका भाव स्पष्ट है कि मनुष्य प्रयत्न करके अपना शरीर सुदृढ बनावे और अनेक पुरुषार्थ करनेका उत्साह मनमें स्थिर करे।

इन चार देवोंकी अन्नादिसे तथा घी आदिसे तृप्ति करनी चाहिये। जिसका जो हवन है उसीके अनुकूल उसका घी भी है। वह जैसा जिसको देना है वह यथायोग्य रीतिसे देकर उसकी तृप्ति करनी चाहिये। इस विषयमें थकावट करना योग्य नहीं। न थकते हुए और न श्रांत होते हुए ये भोग प्राप्त करने और योग्य प्रमाणसे उनका स्वीकार भी करना चाहिये। अर्थात् बडी दक्षतासे जगत् का व्यवहार करना उचित है। परंतु सब व्यवहार करते हुए चतुर्थ देवकी कृपा संपादन करने-का अनुसंधान रखना चाहिये। क्योंकि उसीकी कृपासे अनंद, उत्साह, यश आदि की यहां प्राप्ति होती है और महत्ता भी मिल सकती है।

चतुर्थ मंत्र इस प्रकार हमारे सम्मुख आता है--"इन आशापालों-की सहायतासे हम तथा हमारे माता, पिता, इष्ट, मित्र, गाय, घोडे आदि सब सुखी हों। हमारा अभ्युदय होवे तथा हम ज्ञानी बनकर निःश्रेयसके भागी बनें और दीर्घायु बनें।" इस मंत्रमें चार बातें कहीं हैं—

१ स्वस्ति (सु+ अस्ति) = सबका उत्तम अस्तित्व हो अर्थात् इस लोकका जीवन सुखपूर्वक हो।

२ सुभूतं = (सु + भूति) = उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त हो, यह उत्तम अभ्युदयका सूचक विधान है।

३ सुविदत्रं = (सु + विद + त्रं) = उत्तम ज्ञान मिले। आत्मज्ञान ही सब ज्ञानोंमें उत्तम और निःश्रेयसका हेतु है। वह हमें प्राप्त हो।

४ ज्योक् = दीर्घकाल जीवन हो। यह तो अभ्युदय और निःश्रेयससे सहज ही प्राप्त हो सकता है।

वेदमंत्रोंमें वारंवार " ज्योक् च सूर्यं दृशेम" अर्थात् " दीर्घकालतक सूर्यको हम देखते रहें।" यह एक मुहावरा है, इसका तात्पर्य " हमारी आयु अतिदीर्घ हो " यह है। परंतु यहां ध्यानमें विशेषतया धारण करनेकी बात यह है कि अति दीर्घ आयु प्राप्त करनेका संबंध सूर्यसे अवश्यही है। जहां जहां दीर्घ आयु प्राप्त करनेका उपदेश वेदमें आया है वहां वहां सूर्यका संबंध अवश्य बताया है। इसलिये जो लोग दीर्घ आयु प्राप्त करना चाहते हैं वे सूर्यके साथ आयुष्यवर्धनका संबंध है यह बात न भूलें। ब्रह्मकी कृपासे दीर्घ आयु प्राप्त होती है इस विषयमें अथर्ववेदमें अन्यत्र कहा है—

> यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम्।
> तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥ २९ ॥
> न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा।
> पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥ ३० ॥
>
> (अथर्व १०।२)

"जो निश्चयसे ब्रह्मकी अमृतसे परिपूर्ण नगरीको जानता है उसको स्वयं ब्रह्म और ब्रह्मके साथी अन्य देव चक्षु, प्राण और प्रजा देते हैं ॥ २९ ॥ अति वृद्धावस्थासे पूर्व उसको प्राण और चक्षु छोडते नहीं जो ब्रह्मपुरीको जानता है और जिस पुरीमें रहनेके कारण इसको पुरुष कहते हैं ॥ ३० ॥"

इस प्रकार यह ज्ञानी मनुष्य इस परलोकमें यशस्वी होता है। यही इस सूक्तका उपदेश है।

विशेष दृष्टि।

यह सूक्त केवल बाह्य दिशाएं और उनके पालकोंका ही वर्णन नहीं करता है। बाह्य दिशाओंका वर्णन इस सूक्तमें है, परंतु दिशा शब्द न प्रयुक्त करते हुए" आशा" शब्द का प्रयोग इसमें इसीलिये हुआ है कि मनुष्य अपनी आशाओं और उनकी पालक शक्तियोंको अपने अंदर अनुभव करे और उनके संयम, नियमन, और योग्य उपासन आदिसे अपना अभ्युदय और निःश्रेयस सिद्ध करे

इस सूक्तका यह श्लेषालंकार बडा ही महत्व पूर्ण है। और जो इस सूक्तको केवल बाह्य दिशाओंके लिये ही समझते हैं वे इसके महत्वपूर्ण उपदेशसे वंचित ही रहते हैं। पाठक इस दृष्टिसे इसका अध्ययन करें

इस सूक्तका संबंध आयुष्य गण, अपराजित गण आदि अनेक गणोंसे विषयकी अनुकूलतासे है। यह सूक्त स्वयं वास्तोष्पति गण अथवा वसु गण का है। इसलिये "यहांके निवास" के साथ इसका अपूर्व संबंध है। इस प्रकारकी दृष्टिसे विचार करनेसे पाठक इससे बहुत बोध प्राप्त कर सकते हैं और उसको आचरणमें ढालकर अपना अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त कर सकते हैं।



जीवन-रसका महासागर।

(३२)

(ऋषिः– ब्रह्मा । देवता–द्यावापृथिवी)

इदं जनासो विदथं महद्ब्रह्म वदिष्यति । न तत्पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः ॥ १ ॥
अन्तरिक्ष आसां स्थाम श्रान्तसदामिव । आस्थानमस्य भूतस्य विदुष्टद्वेधसो न वा ॥ २ ॥
यद्रोदसी रेजमाने भूमिश्च निरतक्षतम् । आर्द्रं तदद्य सर्वदा समुद्रस्येव स्रोत्याः ॥ ३ ॥
विश्वमन्यामभीवार तदन्यस्यामधिश्रितम् । दिवे च विश्ववेदसे पृथिव्यै चाकरं नमः ॥ ४ ॥

अर्थ–हे (जनासः) लोगो ! (इदं विदथ) यह ज्ञान प्राप्त करो। वही ज्ञानी (महत् ब्रह्म वदिष्यति) बडे ब्रह्मके विषयमें कहेगा। (येन वीरुधः प्राणन्ति) जिससे औषधियां आदि प्राण प्राप्त करती है, (तत् पृथिव्यां न, नो दिवि) वह पृथ्वीमें नहीं और नही द्युलोक में है ॥ १ ॥ (आसां अन्तरिक्षे स्थाम) इन औषधि आदिकोंका अन्तरिक्षमें स्थान है, (श्रान्तसदां इव) थक कर बैठेहुओंके समान (अस्य भूतस्य आस्थानं) इस बने हुएका स्थान जो है (तत् वेधसः विदुः वा न) वह ज्ञानी जानते हैं वा नहीं ? ॥ २ ॥ (यत् रेजमाने रोदसी) जो हिलनेवाले द्यावापृथिवीने और (भूमिः च) केवल भूमिने भी (निरतक्षतं) बनाया (तत् अद्य सर्वदा आर्द्रं) वह आजतक सदासर्वदा रसमय है (समुद्रस्य स्रोत्याः इव) जैसे समुद्रके स्रोत होते हैं ॥ ३ ॥ (विश्वं) सब ने (अन्यां अभीवार) दुसरीको घेरलिया है, (तत्) वह (अन्यस्यां अधिश्रितम्) दुसरीमें आश्रित हुआ है। (दिवे च) द्युलोक और (विश्ववेदसे च पृथिव्यै) संपूर्ण धनोंसे युक्त पृथिवीके लिये (नमः अकरं) नमस्कार मैंने किया है ॥ ४ ॥

भावार्थ–हे लोगो ! यह समझो कि जो तत्वज्ञान समझेगा वही ज्ञानी उसका विवरण करेगा। तत्वज्ञान यह है कि—जिससे बढनेवाली वनस्पतियां आदिक अपना जीवन प्राप्त करती है वह जीवनका सत्व पृथ्वीपर नहीं है और नहीं द्युलोक में है ॥ १ ॥ इन वनस्पति आदिका स्थान अंतरिक्ष है। जैसे थकेमांदे विश्राम करते हैं उसप्रकार ये वनस्पति आदिक अंतरिक्षमें रहते हैं। इस बने हुए जगतका जो आधार है उसको कौनसे ज्ञानी लोग जानते हैं और कौनसे नहीं जानते ? ॥ २ ॥ हिलने डुलनेवाले

द्युलोक और पृथ्वीलोक के द्वारा जो कुछ बनाया गया है, वह सब इस समयतक बिलकुल नया अर्थात् जीवन रससे परिपूर्ण जैसा है, जैसे सरोवरमे चलनेवाले स्रोत रससे परिपूर्ण होते हैं ॥ ३ ॥ यह सब जगत् दूसरी शक्तिके ऊपर रहा है और वहभी दूसरी के ही आश्रयसे रहा है । द्युलोक और सब धनोंसे युक्त पृथ्वी देवोंको मैं नमन करता हूं (क्योंकि ये दो देवताए इस जगत् का निर्माण करनेवाली हैं ।) ॥ ४ ॥

स्थूल सृष्टि ।

जो सृष्टि दिखाई देती है वह स्थूल सृष्टि है, इसमें मिट्टी पत्थर आदि अतिस्थूल पदार्थ, वृक्षवनस्पत्यादि बढनेवाले पदार्थ, पशुपक्षी आदि बढने और हिलनेवाले प्राणी तथा मनुष्य बढने हिलने और उन्नत होनेवाले उच्च कोटीके प्राणी हैं। पत्थर मिट्टी आदि स्थिर सृष्टीको छोडा जाय और वनस्पति पशु तथा मानव सृष्टिमें देखा जाय, तो ये उत्पन्न होते हैं, बढते हैं और प्राण धारण करते हैं यह बात स्पष्ट दिखाई देती है। इसमें दिखाई देनेवाला जीवनतत्व कौनसा तत्व है ? क्या यह स्थूल ही है या इससे भिन्न और कोई तत्व है इस का विचार इस सूक्तमें किया है ।

सब लोग इस जीवन रसका ज्ञान प्राप्त करें । यदि उनको जीवनसे आनंद प्राप्त करना है तो उनको उचित है कि वे इस (जनास. ! विदथ) ज्ञानको प्राप्त करें। यह मनन करने योग्य सूचना प्रथम मंत्रके प्रारंभमें ही दी है । (मंत्र १)

यह जीवन रसकी विद्या कौन देगा ? किससे यह प्राप्त होगी ? यह शंका यहां आती है, इस विषयमें प्रथम मंत्रने ही आगे जाकर कहा है कि, जो इस विद्याको जानता होगा, वही (महत् ब्रह्म वदिष्यति) बडे ब्रह्मके विषयमें अर्थात् इस महत्वपूर्ण ज्ञानके विषयमें कहेगा । जिसको इस विद्याकी प्राप्ति करनेकी इच्छा हो, वह ऐसे विद्वानके पास जावे और ज्ञान प्राप्त करे । किसी अन्यके पास जानेकी कोई आवश्यक्ता नहीं है । आगे के मंत्रोंमें आजायगा ।

भूतमात्रका आश्रय ।

द्वितीय मंत्रमें कहा है कि- " इस सृष्टिगत संपूर्ण पदार्थोंका आश्रयस्थान अंतरिक्ष है । इन स्थूल पदार्थ मात्रका जो अंतरिक्षमें आश्रय स्थान है वह ज्ञानी भी जानते हैं वा नहीं ?" अर्थात् इसका ज्ञान सब ज्ञानियोंको भी एकसा है या नहीं। ज्ञानियोंमें भी जो परिपूर्ण ज्ञानी होते हैं वे ही केवल जानते हैं । सृष्टि विद्याके जाननेवाले इस बातको नहीं जान सकते, परंतु आत्मविद्याका ज्ञान जाननेवाले ही इसको यथावत् जानते हैं । (मंत्र २)

इस द्वितीय मंत्रमें " भूत " शब्द है, इसका अर्थ "बना हुआ पदार्थ । " जो यह बनी हुई सृष्टि है इसीका नाम भूत है और इसकी विद्याका नाम भूतविद्या है । इस सब सृष्टिका आधार देनेवाला एक सूक्ष्मतत्त्व है जिसका ज्ञान अध्यात्मविद्या जाननेवाले ही जान सकते हैं । इसलिये जीवनरस विद्याका अध्ययन करनेवाले ऐसे सद्गुरुके पास जावें, कि जो इसके ज्ञाता हो और उसके पाससे वह जीवनकी विद्या प्राप्त करें। यह ही ज्ञानी (महत् ब्रह्म वदिष्यति) बडे ब्रह्मका ज्ञान कहेगा । इस प्रकार द्वितीय मंत्रका प्रथम मंत्रके साथ संबंध है।

सनातन जीवन।

तृतीय मंत्रमें कहा है कि-"जो इस द्यावापृथिवीके अंदर बना हुआ पदार्थ मात्र है वह सदा सर्वदा, जिस समय बना है उस समयसे लेकर इस समयतक बराबर जीवन रससे परिपूर्ण होनेके कारण नवीन सा रहा है, इसमें जीवन रस ऐसा भरा है जैसा सरोवरसे चलनेवाले विविध स्रोतोंमें सरोवरका जल चलता है।"

विविध नामोंमेंसे किसी नामका प्रयोग किया है और जगत्की मूल उत्पादक शक्तियोंका वर्णन किया है।

जीवनका एक महासागर।

वेदमें द्यावा पृथिवी — द्युलोक और पृथ्वीलोग — को जगत् के माता पिता करके वर्णन किया है क्योंकि संपूर्ण जगत् इन्हीके अंदर समाया है। यह बना हुआ जगत् यद्यपि बननेके पश्चात् बढता और बिगडता भी है तथापि बने हुए संपूर्ण पदार्थोंमें जो जीवन तत्त्व व्याप रहा है वह एक रूपसे व्यापता है, इसलिये सपूर्ण जगत्के नियम अटल और एक जैसे हैं। हजारों वर्षोंके पूर्व जैसा जीवन संसारमें चलता था वैसा ही आज भी चल रहा है। इससे जीवनामृतकी अगाध सत्ता की कल्पना हो सकती है।

जिस प्रकार एक ही सागरसे अनेक स्रोत चलते हों तो उनमें एक ही जीवन रस सबमें एकसा प्रवाहित होता रहता है, उसी प्रकार इस संसारके अंदर बने हुए अनंत पदार्थोंमें एक ही अगाध जीवनके महासागरसे जीवन रस फैल रहा है, मानो संपूर्ण पदार्थ उस जीवनामृतसे ओतप्रोत भरपूर हो रहे हैं।

पाठक क्षणभर अपने आपको भी उसी जीवन महासागरमें ओतप्रोत भरनेवाले एक घडेके समान समझें और अपने अदर वही जीवन स्रोत चल रहा है इसका ध्यान करें। जिस प्रकार तैरनेवाला मनुष्य अपने चारोंओर जलका अनुभव करता है उसीप्रकार मनुष्य भी उसी जीवन महासागरमें तैरनेवाला एक प्राणी है, इसलिये इस प्रकार ध्यान करनेसे उस जीवनामृतके महासागर की अल्पसी कल्पना हो सकती है। यह जीवन सदा ही नवीन है, कभी भी यह पुराना नहीं होता, कभी बिगडता नहीं। अन्य पदार्थ बनने और बिगडने पर भी यह एकसा नवीन रहता है। और यही सबको जीवन देता है। (तत् अद्य सर्वदा आर्द्रं) वह आज और सदा सर्वदा एक जैसा अभिनव रसपूर्ण रहता है। सबको जीवन देने पर भी जिसकी जीवन शक्ति रतिमात्र भी कम नहीं होती, इतनी अगाध जीवन शक्ति उसमें है।

सबका एक आश्रय।

चतुर्थ मंत्रका कथन है कि—"संपूर्ण विश्व अर्थात् यह स्थूल जगत् एक दूसरी शक्तिके ऊपर रहता है और वह शक्ति और दूसरी शक्तिके आश्रयसे रही है। वही आधारका तत्त्व पृथ्वी और द्युलोकके स्वरूपमें दिखाई दे रहा है इसलिये मैं द्युलोकमें उसकी प्रकाशशक्तिको और पृथ्वीमें उसकी आधार शक्तिको नमस्कार करता हूं।" अर्थात् संपूर्ण जगत्में उसकी शक्ति ही जगत् के रूपमें प्रकट होगई है ऐसा जानकर, जगत्को देखकर उस शक्तिका स्मरण करता हुआ उस विषयमें अपनी नम्रता प्रकट करता हूं।

स्थूल सूक्ष्म और कारण।

इस मंत्रमें विश्व "शब्द" स्थूल जगत्का बोधक है इस स्थूलका आधार (अन्या) दूसरा है, इससे सूक्ष्म है और वह इसके अंदर है अथवा उसके बाहर यह सब विश्व है। प्रत्येक स्थूल पदार्थके अंदर यह सूक्ष्म तत्त्व है और यह भी तीसरे अतिसूक्ष्म तत्त्व पर आश्रित है। यह तीसरा तत्त्व ही सबका एक मात्र आधार है और इसीका जीवन अमृत सबमें एक रस होकर व्याप रहा है। इसी जीवनके समुद्रमें सब विश्वके पदार्थ तैर रहे हैं अथवा संपूर्ण पदार्थ रूपी छोटे बडे स्रोत उसी एक अद्वितीय जीवनमहासागर से चल रहे हैं। इनमें उसीका जीवन कार्य कर रहा है यह बताना इस सूक्तका उद्देश्य है। अनेकोंमें एक ही जीवन भरा है इसका अनुभव यहां होता है।

यह सूक्त केवल पढनेके लिये नहीं है, प्रत्युत यह मनकी धारणा करके अपने मनमें धारणाने स्थिर करनेके अनुष्ठानके लिये ही है। जो पाठक इसकी उक्त प्रकार धारणा कर सकेंगे वे ही इससे योग्य लाभ प्राप्त कर सकेंगे। पाठक यहां देखें कि छोटेसे छोटे सूक्तों द्वारा वेद कैसा अद्भुत उपदेश दे रहा है। निःसंदेह यह उपदेश जीवन पलटानेमें समर्थ है। परंतु यह लाभ वही प्राप्त करेगा कि जो इसको जीवनमें ढालनेका यत्न करेगा।

जलसूक्त

(३३)

(ऋषिः-शन्तातिः । देवता आपः । चन्द्रमाः)

हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः सविता यास्वग्निः ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥१॥
यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यन् जनानाम्।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥२॥
यासां देवा दिवि कृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति ।
या अग्निं गर्भं दधिरे सुवर्णास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥३॥
शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तन्वोप स्पृशत त्वचं मे ।
घृतश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता न आपः शं स्योना भवन्तु ॥४॥

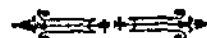
अर्थ-जो (हिरण्य-वर्णा) सुवर्णके समान चमकनेवाले वर्णसे युक्त (शुचय पावका) शुद्ध और पवित्रता बढानेवाला (यासु सविता जात) जिनमें सविता हुआ है और (यासु अग्नि) जिनमें अग्नि है, (या सुवर्णा) जो उत्तम वर्णवाला जल (अग्निं गर्भं दधिरे) अग्निको गर्भमें धारण करता है (ता आप) वह जल (न श स्योना भवन्तु) हम सबको शांति और सुख देनेवाला होवे ॥ १ ॥ (यासां मध्ये) जिस जलके मध्यमे रहता हुआ (वरुण राजा) वरुण राजा (जनाना सत्यानृते अवपश्यन्) जनोंके सत्य और असत्य कर्मोका अवलोकन करता हुआ (याति) चलता है। (या सुवर्णा) जो उत्तम वर्णवाला जल अग्निको गर्भमें धारण करता है वह जल हम सबको शांति और सुख देनेवाला होवे ॥ २ ॥ (देवा दिवि) देव द्युलोकमें (यासां भक्ष कृण्वन्ति) जिनका भक्षण करते हैं, और जो (अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति) अन्तरिक्षमें अनेक प्रकारसे रहता है और जो उत्तमवर्णवाला जल अग्निको गर्भमें धारण करता है वह जल हम सबको शांति और सुख देनेवाला होवे ॥ ३ ॥ हे (आप) जल! (शिवेन चक्षुषा मा पश्यत) कल्याणकारक नेत्र द्वारा मुझको तुम देखो। (शिवया तन्वा मे त्वच उपस्पृशत) कल्याणमय अपने शरीरसे मेरी त्वचाको स्पर्श करो। जो (घृतश्चुत) तेज देनेवाला (शुचय. पावका) शुद्ध और पवित्र (आप) जल है (ता न शं स्योना भवन्तु) वह जल हमारे लिये शांति और सुख देनेवाला होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ-अन्तरिक्षमें संचार करनेवाले मेघमंडलमें तेजस्वी पवित्र और शुद्ध जल है, जिन मेघोमेंसे सूर्य दिखाई देता हो, जिनमें विद्युत् रूपी अग्नि कभी व्यक्त और कभी गुप्त रूपसे दिखाई देता हो, वह जल हमें शांति और आरोग्य देनेवाला होवे ॥ १ ॥ जिनमेंसे वरुण राजा घूमता है और जाते जाते मनुष्योंके सत्य और असत्य विचारों और कर्मोंका निरीक्षण करता है जिन मेघोंने विद्युत् रूपी अग्निको गर्भके रूपमें धारण किया है उन मेघोंका उदक हमें सुख और आरोग्य देवे ॥ २ ॥ द्युलोकके देव जिसका भक्षण करते हैं और जो विविध रूपरंगवाले अन्तरिक्षस्थानीय मेघोंमें रहता है तथा जो विद्युतको धारण करते हैं उन मेघोंका जल हमारे लिये सुख और आरोग्य देवे ॥ ३ ॥ जल हमारा कल्याण करे और उसका हमारे शरीरके साथ होनेवाला स्पर्श हमें आल्हाद देनेवाला प्रतीत हो। मेघोंका तेजस्वी और पवित्र जल हमें शांति और सुख देनेवाला होवे ॥ ४ ॥

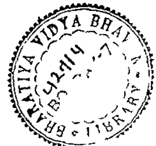
वृष्टिका जल।

इन चारों मंत्रोंमें वृष्टिजलका काव्यमय वर्णन है। इन मन्त्रोंका वर्णन इतना काव्यमय है और छंद भी ऐसा उत्तम है कि एक स्वरसे पाठ करनेपर पाठकको एक अद्भुत आनंदका अनुभव होता है। इन मंत्रोंमें जलके विशेषण "शुचि, पावक, सु-वर्ण" आदि शब्द वृष्टि जलकी शुद्धता बता रहे हैं। वृष्टि जल जितना शुद्ध होता है उतना कोई दूसरा जल नहीं होता। शरीर शुद्धिकी इच्छा करनेवाले दिव्यलोग इसी जलका पान करें और आरोग्य प्राप्त करें। इसके पानसे शरीर पवित्र और निरोग होता है। सामान्यतया वृष्टि जल शुद्ध ही होता है परंतु जिस वृष्टिमें सूर्यकिरणें भी प्रकाशती हैं उसकी विशेषता अधिक है। इसी प्रकार चंद्रमाकी किरणोंका भी परिणाम होता है।

इस सूक्तके चतुर्थ मन्त्रमें उत्तम स्वास्थ्यका लक्षण बताया है वह ध्यानमें धारण करने योग्य है-" जलका स्पर्श हमारी चमडाको आल्हाद देवे। " जबतक शरीर नीरोग होता है तबतक ही शीत जलका स्पर्श आनंद कारक प्रतीत होता है, परंतु शरीर रुग्ण होते ही जल स्पर्श बुरा लगने लगता है।



मधु-विद्या।



(३४)

(ऋषिः- अथर्वा। देवता-मधुवल्ली)

इ॒यं वी॒रुन्मधु॑जाता मधु॑ना त्वा खनामसि। मधो॒रधि॒ प्रजा॑तासि॒ सा नो॒ मधु॑मतस्कृधि ॥ १ ॥
जि॒ह्वाया॑ अग्रे॒ मधु॑ मे जि॒ह्वामू॒ले म॒धूल॑कम्। ममेदह॒ क्रता॒वसो॒ मम॒ चि॒त्तमु॒पाय॑सि ॥ २ ॥
मधु॑मन्मे नि॒क्रम॑णं॒ मधु॑मन्मे प॒राय॑णम्। वा॒चा वदा॑मि॒ मधु॑मद् भू॒यासं॒ मधु॑संदृशः ॥ ३ ॥
मधो॑रस्मि॒ मधु॑तरो म॒दुघा॒न्मधु॑मत्तरः। मामित्किल॒ त्वं व॒नाः शाखां॒ मधु॑मतीमिव ॥ ४ ॥
परि॑ त्वा परित॒त्नुने॒क्षुणा॑गा॒मवि॑द्विषे। यथा॒ मां का॒मिन्यसो॒ यथा॒ मन्नाप॑गा॒ असः॑ ॥ ५ ॥

अर्थ- (इयं वीरुत् मधुजाता) यह वनस्पति मधुरताके साथ उत्पन्न हुई है, म (त्वा मधुना खनामसि) तुझे मधुसे खोदता हू। (मधो अधि प्रजाता असि) शहदके साथ तू उत्पन्न हुई है अत (सा) वह तू (न मधुमत कृधि) हम सबको मधुर कर ॥ १ ॥ (मे जिह्वाया अग्रे मधु) मेरी जिह्वाके अग्र भागमें मधुरता रहे। (जिह्वामूले मधूलक) मेरी जिह्वाके मूलमें भी मीठास रहे। हे मधुरता! तू (मम क्रतौ इत् अह अस) मेरे कर्ममें निश्चयसे रह। (मम चित्तं उपायसि) मेरे चित्तमें मधुरता बनी रहे ॥ २ ॥ (मे निक्रमणं मधुमत्) मेरा चालचलन मीठा हो। (मे परायणं मधुमत्) मेरा दूर होना भी मीठा हो। मैं (वाचा मधुमत् वदामि) वाणीसे मीठा बोलता हू जिससे मैं (मधुसन्दृश. भूयास) मधुरताकी मूर्ति बनूंगा ॥ ३ ॥ मैं (मधो मधुतर अस्मि) शहदसे भी अधिक मीठा हू। (मधुघात् मधुमत्तर) मधुरपदार्थसे अधिक मधुर हू। (मां इत् किल त्व वना) मुझपर ही तू प्रेम कर (मधुमतीं शाखां इव) जैसे मधुर रसवाली वृक्ष शाखासे प्रेम करते हैं ॥ ४ ॥ (अ विद्विषे) वैर दूर करने के लिये (परितत्नुना इक्षुणा त्वा परि अगाम्) फैले हुए ईखके साथ तुझे घेरता हू। (यथा मां कामिनी अस) जिससे तू मेरी कामना करनेवाली होवे और (यथा मत् न अपगा. अस) जिससे तू मुझसे दूर न होनेवाली होवे ॥५॥

भावार्थ- यह ईख नामक वनस्पति स्वभावसे मधुर है और उसको लगानेवाला और उखाडनेवाला भी मधुरता की भावनासे ही उसको लगाता है और उखाडता है। इस प्रकार यह वनस्पति परमात्मासे मीठास अपने साथ लाती है, इसलिये हम चाहते हैं कि यह हम सबको मधुरतासे युक्त बनावे ॥ १ ॥ मेरी जिह्वाके अग्रभागमें मधुरता रहे, जिह्वाके मूल में और मध्यमें मधुरता

रहे। मेरे कर्ममें मधुरता रहे, और मेरा चित्त भी मधुर विचारोंका मनन करे ॥ २ ॥ मेरा चलचलन मीठा हो, मेरा आना जाना मीठा हो, मेरे इशारे और भाव तथा मेरे शब्द भी मीठे हों। ऐसा होनेसे मैं अंदर बाहरसे मीठास की मूर्ति ही बनूंगा। ॥ ३ ॥ मैं शहदसे भी मीठा बनता हूं, मैं मिठाईसे भी मीठा बनता हूं, इसलिये जिस प्रकार मधुर फलवाली शाखापर पक्षी प्रेम करते हैं इस प्रकार तू मुझपर प्रेम कर ॥ ४ ॥ कोई किसीका द्वेष न करे इस उद्देश्यसे व्यापक मधुरवल्लियोंका अर्थात् व्यापक मधुर विचारोंकी बाड चारों ओर बनाता हूं ताकि इस बाडमें सब मधुरता ही बढे और सब एक दूसरेपर प्रेम करें और विद्वेषसे कोई किसीसे विमुख न हो ॥ ५ ॥

मधुविद्या।

वेदमें कई विद्याएं हैं अध्यात्मविद्या, देवविद्या, जन विद्या, युद्ध विद्या; इसी प्रकार मधुविद्या भी वेदमें है। मधुविद्या जगत् की ओर किस प्रकार देखना चाहिये वह दृष्टिकोण ही मनुष्यमें उत्पन्न करती है। उपनिषदों में भी यह मधुविद्या वेद मंत्रोंसे ली है। यह जगत् मधुरूप है अर्थात् मीठा है ऐसा मानकर जगत् की ओर देखना इस बातका मधु विद्या उपदेश करती है। दूसरी विद्या जगत् को कष्टका आगर बताती है, इसको पाठक कटुविद्या कह सकते हैं। परंतु यह कटुविद्या वेदमें नहीं है। वेद जगत् की ओर दुःख दृष्टिसे देखाता नहीं, न ही दुःख दृष्टिसे जगत्को देखनेका उपदेश करता है। वेदमें मधुविद्या इसीलिये है कि इसका ज्ञान प्राप्त करके लोग जगत् की ओर मधुदृष्टिसे देखनेकी बात सीखें। इस विद्याके मंत्र अथर्ववेदमें भी बहुत हैं और अन्य वेदोंमें भी हैं, उनका यहां विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। इस सूक्तके मंत्र ही स्वयं उक्त विद्याका उत्तम उपदेश देते हैं। पाठक इन मंत्रोंका विचार करें और उचित बोध प्राप्त करें।

जन्म स्वभाव।

वृक्षोंमें क्या और प्राणियोंमें क्या हरएक का व्यक्तिनिष्ठ जन्मस्वभाव रहता है जो बदलता नहीं। जैसा सूर्यका प्रकाशना, अग्निका उष्ण होना, ईखका मीठा होना, करेलेका कडवा होना, इत्यादि ये जन्मस्वभाव हैं। ये जन्मस्वभाव कहांसे आते हैं यह विचारणीय प्रश्न है। ईख मिठास लाता है और करेला कडवाहट लाता है। एक ही भूमिमें उगी ये दो वनस्पतियां परस्पर भिन्न दो रसोंको अपने साथ लाती हैं। कभी करेलेमें मीठा रस नहीं होता और न ही ईखमें कडुवा। ऐसा क्यों होता है ? कहांसे ये रस आते हैं ?

कोई कहेगा कि भूमिसे। क्योंकि भूमिका नाम "रसा" है। इस भूमिमें विविध रस होते हैं। जो जो पौधा उसके पास जाता है, वह अपने स्वभावके अनुसार भूमिसे रस खींचता है और उसमेंसे देता है। करेलेका स्वभाव-कडुवा है और ईखका मीठा है। ये पौधे भूमिके विविध रसोंमें से अपने स्वभावके अनुकूल रस लेते हैं और उनको लेकर जगत् में प्रकट होते हैं।

मनुष्यमें भी यही बात है। विभिन्न प्रकृतिके मनुष्य विभिन्न गुणधर्म प्रगट कर रहे हैं, उनको एक ही खजानेसे एकही जीवनके महासागरसे जीवन रस मिलता है, परंतु एकमें वही जीवन शान्ति बढानेवाला और दूसरेमें अशान्ति फैलानेवाला होता है। ये स्वभाव धर्म हैं। एकही जल मेघोंमें जाता है और मीठा बनकर वृष्टिसे परिशुद्ध स्थितिमें प्राप्त होता है, जिसको पीकर मनुष्य तृप्त हो सकता है वही जल समुद्रमें जाता है और खारा बनता है, जिसको कोई पी नहीं सकता नहीं यह स्वभाव भेद है।

अन्य पदार्थ अथवा अन्य योनिया अपने स्वभाव बदल नहीं सकती। मरनेतक उनमें बदल नहीं होता। परंतु मनुष्य योनि ही एक ऐसी योनि है कि जिस योनिके लोग सुनियमोंके आचरणसे अपना स्वभाव बदल सकते हैं। दुष्टके सुष्ट बन सकते हैं, मूर्खके प्रबुद्ध बन सकते हैं, दुराचारियोंके सदाचारी हो सकते हैं, इसीलिये वेद मनुष्योंकी भलाई के लिये इस मधुविद्याका उपदेश दे रहा है। मनुष्य अपनी कडवाहट कम करे और अपनेमें मिठास बढावे यही यहां इस विद्याका उद्देश्य है।

अब मधुविद्याका प्रथम मंत्र देखिये- " यह ईख नामक वनस्पति मिठास के साथ जन्मी है, मनुष्य मीठी भावनाके साथ इसे खोदते हैं। यह मधुरता लेकर आगई है, इसलिये हम सबको यह वनी मिठाससे युक्त करे। " (मंत्र १)

यह प्रथम मंत्र बडा अर्थपूर्ण है। इसमें चार बातें हैं -(१) स्वयं मीठे स्वभाव का होना. (२) मीठे स्वभाव वालोंसे संबंध करना, (३) स्वयं मधुर जीवनको व्यतीत करना, और (४) दूसरोंको मीठा बना देना। पाठक देखें कि-(१) ईख स्वयं स्वभावसे मीठा होता है, (२) मीठा उत्पन्न करनेकी इच्छा वाले किसानोंसे उसकी मित्रता होती है, (३) ईख स्वयं मीठा जीवन रस अपने साथ लाता है और (४) जिस बीजके साथ

मिलता है उसको मीठा बनाता है। क्या पाठक इस आदर्श मीठे जीवनसे बोध नहीं ले सकते ?

ये चार उपदेश हैं जो मनुष्यको विचार करने चाहियें। यह ईख अपने व्यवहारसे मनुष्यको उपदेश दे रहा और बता रहा है कि इस प्रकार व्यवहार करनेसे मनुष्य मीठा बन सकता है। इसके मननसे प्राप्त होनेवाले नियम ये हैं —

(१) अपना स्वभाव मीठा बनाना। अपनेमें यदि कोई कटुता, कठोरता या तीक्ष्णता हो तो उसको दूर करना तथा प्रति समय आत्मपरीक्षा करके, दोष दूर करके, अपने अंदर मीठा स्वभाव बढानेका यत्न करना।

(२) मनुष्यको उचित है कि वह स्वयं ऐसे मनुष्यों के साथ मित्रता करे कि जो मीठे स्वभाव वाले हों अथवा मधुरता फैलाने के इच्छुक हों।

(३) अपना जीवन ही मीठा बनाना, चालचलन, बोलना चालना मीठा रखना। अपने इशारेसे भी कटुताका भाव व्यक्त न करना।

(४) प्रयत्न इस बातका करना कि दूसरोंके भी स्वभाव मीठे बनें और कठोर प्रकृतिवाले मनुष्य भी सुधर कर उत्तम मधुर प्रकृतिवाले बनें।

पाठक प्रथम मंत्रका मनन करेंगे तो उनको ये उपदेश मिल सकते हैं। " ईख स्वयं मीठा है मीठा चाहनेवाले किसान से मित्रता करता है, अपनेमें मधुर जीवन रस लाता है और जिसमें मिल जाता है उनको मीठा बना देता है।" इस प्रथम मंत्रके चार पादोंका भाव उक्त चार उपदेश दे रहे हैं। पाठक इन उपदेशोंको अपनानेका प्रयत्न करें। (मंत्र १)

यहां अन्योक्ति अलंकार है। पाठक इस काव्यमय मंत्रका यह अलंकार देखें और समझें। वेदमें ऐसे अलंकारोंसे बहुत उपदेश दिया है।

मीठा जीवन।

पूर्वोक्त प्रथम मंत्रके तीसरे पादमें अन्योक्ति अलंकारसे सूचित किया है कि "मनुष्य मिठास के साथ जीवन व्यतीत करे।" अर्थात् अपना जीवन मधुर बनावे। इसी बातकी व्याख्या अगले तीन मंत्रोंमें स्वयं वेद करता है। इसलिये उक्त तीन मंत्रोंका भाव थोडा विस्तारसे यहां देते हैं-

(दूसरा मंत्र)- " मेरी जिह्वाके मूल, मध्य और अग्रभागमें मिठास रहे अर्थात् मैं वाणीसे मधुर शब्द ही बोलूंगा। कभी कटु शब्दका प्रयोग बोलनेमें और लेखमें नहीं करूंगा, कि जिससे जगत्में कटुता फैले। मेरा चित्त भी मीठे विचारोंका चिन्तन करेगा। इस प्रकार चित्तके विचार और वाणीके उच्चार एक रूपता से मीठे बन गये तो मेरे (क्रतु) आचार व्यवहार अर्थात् कर्म भी मीठे हो जायगे। इस प्रकार विचार उच्चार आचारमें मीठा बना हुआ मैं जगत् में मधुरता फैलाऊंगा। मेरे विचार से, मेरे भाषणसे और मेरे आचार व्यवहार से चारों ओर मिठास फैलेगी।"

(तीसरा मंत्र)- " मेरा आचार व्यवहार मीठा हो, मेरे पासके और दूरके व्यवहार मीठे हों, मेरे इशारे मीठे हों, मैं वाणीसे मधुर ही शब्द उच्चरूंगा और उस भाषणका आशयभी मधुरता बढानेवाला ही होगा। जिस समय मेरे विचार उच्चार और आचार में स्वाभाविक और अकृत्रिम मधुरता टपकने लगेगी, उस समय मैं माधुर्य की मूर्ति ही बनूंगा। "

(चतुर्थ मंत्र) – " जब शहदसे भी मैं अधिक मीठा बनूंगा, और लड्डूसे भी मैं अधिक मीठा बनूंगा तब तुम सब लोग निःसंदेह मुझपर वैसा प्रेम करोगे कि जैसा पक्षिगण मीठे फलोंसे युक्त वृक्षशाखापर प्रेम करते हैं। "

ये तीन मंत्र कितना अद्भुत उपदेश दे रहे हैं इसका विचार पाठक अवश्य करें। ऊपर भावार्थ देते समय ही भावार्थ ठीक व्यक्त करने के लिये कुछ अधिक शब्द रखे हैं, उनके कारण इनका अब अधिक स्पष्टीकरण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

प्रतिज्ञा।

ये मंत्र प्रतिज्ञा के रूपमें हैं। मैं प्रतिज्ञा इस प्रकार करता हूं यह भाव इन मंत्रोंमें है। जो पाठक इन मंत्रोंसे अधिकसे अधिक लाभ उठानेके इच्छुक हैं वे यही प्रतिज्ञा करें, यदि उन्होंने ऐसी प्रतिज्ञा की और उस प्रकार उनका आचरण हुआ तो उनका यश सर्वत्र फैल जायगा। यह पूर्ण अहिंसा की प्रतिज्ञा है। अपने विचार, उच्चार, आचारसे किसी प्रकार किसीकी भी हिंसा न हो, किसीका द्वेष न हो, किसीका वैर न हो, किसीकी शत्रुता न हो, इस प्रकार अपना आदर्श जीवन बननेपर जगत्में आनंदका ही साम्राज्य बन जायगा। इस आनंदका साम्राज्य स्थापन करना वैदिक धर्मियोंका परम धर्म ही है और इसीलिये इस मधुविद्याका उपदेश इस सूक्तमें हुआ है।

भाव आदि शत्रु उस तक न आसकें। यह बाड अपने मनमें सुविचारोंकी हो, अपने इंद्रियोंके साथ संयम की हो, अपने घरमें परस्पर प्रेमकी हो, समाजमें परस्पर मित्रताकी हो। अपने सब मित्रभा उत्तम मीठे विचार जीवन में लाने और मधुरता फैलाने वाले हों ऐसी बाड होगई तो अंदरका मिठासका खेत बिगडेगा नहीं। इस विषयमें पंचम मंत्र देखने योग्य है-

(पंचम मंत्र)"—"मैं विद्वेषको हटानेके लिये चारों ओर फैलनेवाले मीठे ईखोंकी बाड तुम्हारे चारों ओर करता हूं जिससे तू मेरी इच्छा करेगी और मुझसे दूर भी न होगी।"

यह जितना स्त्री पुरुषके आपसके अविद्वेषके लिये सत्य है उतना ही अन्य परिवारों और मित्रजनोंके अविद्वेष और प्रेम बढानेके विषयमें सत्य है। परंतु अपने चारों ओर मीठी बाड करनेकी युक्ति पाठकोंको अवश्य जाननी चाहिये। अपने साथ ईख की गंडेरिया लेनेसे यह कार्य नहीं होगा। यह कार्य करनेके लिये जो ईख चाहिये वे विचार, उच्चार और आचारके तथा मनोभावना की ईख चाहिये। जो पाठक अपने अंतःकरणके क्षेत्र में ईख लगायगे और उसकी पुष्टि अपने मीठे जीवन से करेंगे, वे ही ये वैदिक उपदेश आचरणमें ढाल सकते हैं।

ये मंत्र स्पष्ट हैं। अधिक स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है, परंतु पाठक इनको काव्य की दृष्टीसे समझनेका यत्न करेंगे तभी वे लाभ उठा सकेंगे।

तेजस्विता बल और दीर्घायुष्य

की प्राप्ति।

(३५)

(ऋषिः-अथर्वा। देवता-हिरण्यं, इन्द्राग्नी, विश्वेदेवाः)

यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः।
तत्ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ १॥
नैनं रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत्।
यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः ॥ २॥
अपां तेजो ज्योतिरोजो बलं च वनस्पतीनामुत वीर्याणि।
इन्द्र इवेन्द्रियाण्यधि धारयामो अस्मिन्तद्दक्षमाणो बिभरद्धिरण्यम् ॥ ३॥
समानां मासामृतुभिष्ट्वा वयं संवत्सरस्य पयसा पिपर्मि।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः ॥ ४॥

अर्थ -(सुमनस्यमानाः दाक्षायणा) शुभ मनवाले और बलकी वृद्धि करनेवाले श्रेष्ठ पुरुष (शत अनीकाय) बलके सौ विभागों के चालक के लिये (यत् हिरण्यं अबध्नन्) जो सुवर्ण बांधते रहे (तत्) वह सुवर्ण (आयुषे वर्चसे) जीवन, तेज, (बलाय) बल और (शतशारदाय दीर्घायुत्वाय) सौ वर्षकी दीर्घ आयुके लिये (ते बध्नामि) तेरे ऊपर बांधता हूं ॥ १ ॥ (न रक्षांसि, न पिशाचाः) न राक्षस और न पिशाच (एनं सहन्ते) इस पुरुषका हमला सह सकते हैं (हि) क्योंकि (एतत् देवानां प्रथमजं

ओजः) यह देवोंसे प्रथम उत्पन्न हुआ सामर्थ्य है। (यः दाक्षायणं हिरण्यं बिभर्ति) जो मनुष्य दाक्षायण सुवर्ण धारण करता है (सः जीवेषु दीर्घं आयुः कृणुते) वह जीवोंमें अपनी दीर्घ आयु करता है ॥ २ ॥ (अपां तेजः ज्योतिः ओजः बलं च) जलका तेज, कान्ति, पराक्रम और बल (उत) तथा (वनस्पतीनां वीर्याणि) औषधियोंके सब वीर्य (अस्मिन् अधि धारयामः) इस पुरुषमें धारण कराते हैं (इन्द्रे इन्द्रियाणि इव) जैसे आत्मामें इन्द्रिय धारण होते हैं । इस प्रकार (दक्षमाणः हिरण्यं बिभ्रत्) बल बढाने की इच्छा करनेवाला सुवर्णका धारण करे ॥ ३ ॥ (समानां मासां ऋतुभिः) सम महिनोंके ऋतुओंके द्वारा (संवत्सरस्य पयसा) वर्ष रूपी गौके दूधसे (त्वा वयं पिपर्मि) तुझे हम सब पूर्ण करते हैं । (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि (विश्वे देवाः) तथा सब देव (अ-हृणीयमानाः) संकोच न करते हुए (ते अनु मन्यन्तां) तेरा अनुमोदन करें ॥४॥

भावार्थ- बल बढानेवाले और मनमें शुभ विचारों की धारणा करनेवाले श्रेष्ठ महात्मा पुरुष सेना संचालकके देहपर बलवृद्धिके लिये जिस सुवर्णके आभूषणको लटका देते हैं, वही आभूषण मैं तेरे शरीरपर इसलिये लटकाता हूं कि इससे तेरा जीवन सुधरे, तेज बढे, बल तथा सामर्थ्य वृद्धिंगत हो और तुझे सौ वर्षकी पूर्ण आयु प्राप्त हो ॥ १ ॥ यह आभूषण धारण करनेवाले वीर पुरुषके हमलेको न राक्षस और नहीं पिशाच सह सकते हैं । वे इसके हमलेसे घबराकर दूर भाग जाते हैं, क्योंकि यह देवोंसे निकला हुआ सबसे प्रथम दर्जेका बल ही है । इसका नाम दाक्षायण अर्थात् बल बढानेवाला सुवर्णका आभूषण है । जो इसका धारण करता है वह मनुष्योंमें सबसे अधिक दीर्घ आयु प्राप्त करता है ॥ २ ॥ हमसब इस पुरुषमें जीवनका तेज, पराक्रम सामर्थ्य और बल धारण कराते हैं । और साथ साथ औषधियोंसे नाना प्रकारके वीर्यशाली बल भी धारण कराते हैं । जिस प्रकार इन्द्रमें अर्थात् आत्मामें इंद्रिय शक्तियां रहती हैं उसी प्रकार इस सुवर्णका आभूषण धारण करनेवाले मनुष्यके अंदर सब प्रकारके बल रहें, वे बाहर प्रगट हो जांय ॥ ३ ॥ दो महिनोंका एक ऋतु होता है । प्रत्येक ऋतुकी शक्ति अलग अलग होती है; मानो संवत्सररूपी गौका दूध ही संवत्सरकी छह ऋतुओंमें निचोडा हुआ है । यह दूध मनुष्य पीवे और बलवान् बने । इसकी अनुकूलता इंद्र अग्नि तथा सब देव, करें ॥ ४ ॥

दाक्षायण हिरण्य ।

हिरण्य शब्दका अर्थ सुवर्ण अथवा सोना है, यह परिशुद्ध स्थितिमें बहुत ही बलवर्धक है । यह पेटमें भी लिया जाता है और शरीरपर भी धारण किया जाता है । श्री० यास्काचार्य हिरण्य शब्दके दो अर्थ देते हैं-" हितरमणीयं, हृदयरमणीयं" अर्थात् यह सुवर्ण हितकारक और रमणीय है तथा हृदयकी रमणीयता बढानेवाला है । सुवर्ण बलवर्धक तथा रोग नाशक है इसलिये आरोग्य चाहनेवाले इसका उपयोग कर सकते हैं ।

इस सूक्तमें " दाक्षायण" शब्द (दक्ष+अयन) अर्थात् बलके लिये प्रयत्न करनेवाला इस अर्थमें प्रयुक्त हुआ है । प्रथम मंत्रमें यह शब्द मनुष्योंका विशेषण है और द्वितीय मंत्रमें यह सुवर्णका विशेषण है । तृतीय मंत्रमें इसी अर्थका " दक्ष-माण" शब्द है जो शक्तिमानका वाचक है । पाठक विचार करेंगे तो उनको निश्चय होगा कि "दाक्षायण और दक्षमाण" ये दो शब्द करीब शक्तिमान् के ही वाचक हैं । दक्ष शब्द वेदमें बलवाचक प्रसिद्ध है । इसप्रकार इस सूक्तमें बल बढानेका जो मार्ग बताया है, उसमें सबसे प्रथम हिरण्यधारण है । हिरण्यधारण दो प्रकारसे होता है, एक तो आभूषण शरीरपर धारण करना और दूसरा सुवर्ण शरीरमें सेवन करना । सुवर्ण शरीरमें खानेकी रीति वैद्यग्रंथोंमें प्रसिद्ध है । सब अन्य धातु तथा औषधियां सेवन करनेपर शरीरमें नहीं रहती, परंतु सुवर्ण की ही विशेषता है कि यह शरीरके अंदर हड्डियोंके जोडोंमें जाकर स्थिर रूपसे रहता है और मृत्युके समय तक साथ देता है । इस प्रकारकी सुवर्णधारणासे अनेक रोगोंसे मुक्तता होती है । इस रीतिसे धारण किया हुआ सुवर्ण देह मृत होनेपर उसके जलानेके बाद शरीरकी राखसे राखका सब मिलता है । अर्थात् यदि किसी पुरुषने एक तोला सुवर्ण वैद्यकीय रीतिसे सेवन किया तो वह तोलाभर सुवर्ण मृत शरीरके दाह होनेके पश्चात् उसके संबंधियोंको प्राप्त हो सकता है । इस प्रकार कोई हानि न करता हुआ यह सुवर्ण बल और आरोग्य देता है ।

जो वैद्य इस सुवर्ण धारण विधिको जानते हैं उनका नाम "दाक्षायण" प्रथम मंत्रने कहा है । इस प्रकारका परिशुद्ध सुवर्ण बलवर्धक होनेसे उसका नाम भी " दक्षायण " है यह बात द्वितीय मंत्रने कह दी है । जो मनुष्य इस प्रकार सुवर्ण धारण विधिसे अपना आयुष्य बढाना चाहता है उसको भी [illegible]

तृतीय मंत्रमें " दक्ष-माण " बताया है। इस प्रकार यह सूक्त बलवर्धन की बात प्रारंभसे अंत तक बता रहा है।

दाक्षायणी विद्या।

बल बढानेकी विद्याका नाम दाक्षायणी विद्या है। (दक्ष+अयनः) बल प्राप्त करनेके मार्गका उपदेश इस विद्यामें होता है। इस विद्यामें मनके साथ विशेष संबंध रहता है (सु+मनस्यमान.) उत्तम मनसे युक्त अर्थात् मनका विशेष शक्तिसे संपन्न। कमजोरीकी भावनासे मन अशक्त होता है और सामर्थ्यकी भावनासे बलशाली होता है। मनका शक्ति बढानेकी जो विद्या है उस विद्याके अनुसार मन सुनियमसे युक्त बनानेवाले श्रेष्ठ लोग "सुमनस्यमानाः दाक्षायणाः" शब्दोंद्वारा वेदमें बताये हैं। पाठक अपने मनकी अवस्थाके साथ अपना बलका संबंध देखें और इन शब्दों द्वारा जो सुमनस्क होने की सूचना मिलती है, वह लें और इस प्रकार मानसिक धारणासे अपना बल बढावें।

धातु है जो जीवन शक्तिका वाचक प्रसिद्ध है। इसलिये जीवन शक्तिका अर्थ भी अनीक शब्दमें है। इस अर्थके लेनेसे "शतानीक" शब्दका अर्थ "सौ जीवन शक्तियां, अथवा सौ जीवन शक्तियोंसे युक्त" होता है। यह भाव लेनेसे उक्त मंत्र भागका अर्थ ऐसा होता है कि—

शतानीकाय हिरण्यं बध्नामि। (मंत्र १)

"सौ जीवन शक्तियोंकी प्राप्तिके लिये मैं सुवर्णका धारण करता हूं।" सुवर्णके अंदर सैकडों वीर्य हैं, उन सबकी प्राप्तिके लिये मैं उसका धारण करता हूं। यह आशय प्रथम मंत्र भागका है। इस प्रथम मंत्रमें इनमेंसे कुछ गुण कहे भी हैं-

आयुषे। वर्चसे। बलाय। दीर्घायुत्वाय। शतशारदाय।

" आयु, तेज, बल, दीर्घ आयु, सौ वर्षकी आयु" इत्यादि शब्द जीवन शक्तियोंके ही सूचक हैं। इनका थोडासा परिगणन यहां किया है। इससे पाठक अनुमान कर सकते हैं और जान सकते हैं कि इसी प्रकार अनेक जीवन शक्तियां" हैं, उनकी प्राप्ति अपने अंदर करनी और उनकी वृद्धि भी करनी वैदिक धर्मका उद्देश्य है। इस विचारसे ज्ञात हो सकता है कि यहां "शतानीक" शब्दका अर्थ " जीवनके सौ वीर्य, जीवनकी सैकडों शक्तियां" अभीष्ट है। यद्यपि यह अर्थ हमने मंत्रार्थ करते समय किया नहीं है तथापि यह अर्थ हमें यहां प्रतीत हो रहा है। इसलिये प्रसिद्ध अर्थ ऊपर देकर यहां यह अर्थ लिखा है। पाठक इसका अधिक विचार करें।

इस प्रकार प्रथम मंत्रका मनन करनेके बाद इसी प्रकारका एक मंत्र यजुर्वेदमें थोडेसे पाठभेदसे आता है उसको पाठकोंके विचारके लिये यहां देते हैं—

यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः।
तन्म आबध्नामि शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम् ॥
(वा० यजु० ३४।५२)

प्रथमार्ध वैसाका वैसा ही है। यहां प्रथम मंत्रका विवरण समाप्त हुआ, अब द्वितीय मंत्रका विचार करते हैं। —

राक्षस और पिशाच।

नरमांस भोजन करनेवाले राक्षस होते हैं और रक्त पीनेवाले पिशाच होते हैं। ये सबसे क्रूर होनेके कारण सब लोग इनसे डरते रहते हैं। परंतु जो पूर्वोक्त प्रकार "सुवर्ण प्रयोग करता है उसके हमलेको राक्षस और पिशाच भी सह नहीं सकते।" इतनी शक्ति इस सुवर्ण प्रयोगसे मनुष्यको प्राप्त होती है। सुवर्णमें इतनी शक्ति है। क्योंकि "यह देवोंका पहिला ओज है।" अर्थात् संपूर्ण देवोंकी अनेक शक्तियां इसमें संगृहित हुई है। इसलिये द्वितीय मंत्रके उत्तरार्धमें कहा है कि-"जो यह बल वर्धक सुवर्ण शरीरमें धारण करता है वह सब प्राणियोंसे भी अधिक दीर्घ आयु प्राप्त करता है।" अर्थात् इस सुवर्ण प्रयोगसे शरीरका बल भी बढ जाता है और दीर्घ आयु भी प्राप्त होती है। यह द्वितीय मंत्रका भाव पहिले मंत्रका ही एक प्रकारका स्पष्टीकरण है, इसलिये इसका इतना ही मनन पर्याप्त है। यही मंत्र यजुर्वेदमें निम्न लिखित प्रकार है—

न तद्रक्षांसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत्।
यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः
स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः॥ यजु० ३४।५१

'यह देवोंसे उत्पन्न हुआ पहिला तेज है, इसलिये राक्षस और पिशाच भी इसके पार नहीं हो सकते। जो दाक्षायण सुवर्ण धारण करता है वह देवोंमें दीर्घ आयु करता है और मनुष्योंमें भी दीर्घ आयु करत है।"

इस मंत्रके द्वितीयार्धमें थोडा भेद है और जो अथर्व पाठमें "जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः" इतना ही था, वहां ही इसमें "देवेषु और मनुष्येषु" ये शब्द अधिक हैं। "जीवेषु" शब्दका ही यह "देवेषु, मनुष्येषु" आदि शब्दोंद्वारा अर्थ हुआ है। इस प्रकार अन्य शाखासंहिताओंके पाठभेद देखनेसे अर्थ निश्चय करनेमें बडी सहायता होती है।

यहां तक दो मंत्रोंका मनन हुआ। इन दो मंत्रोंमें शरीर पर सुवर्ण धारण करनेकी बातका उपदेश किया है अब अगले दो मंत्रोंमें जल वनस्पति तथा ऋतुकालानुसार उत्पन्न होनेवाले अन्य बलवर्धक पदार्थोंका अंतर्बाह्य सेवन करनेकी महत्त्वपूर्ण विधा दी जाती है, उसका पाठक विशेष ध्यानसे मनन करें।

तृतीय मंत्रमें कहा है-"जल और औषधियोंके तेज, कांति, शक्ति, बल और वीर्यवर्धक रसोंको हम कैसे धारण करते हैं कि जैसे आत्मामें इंद्रिय शक्तियां धारण हुई हैं। इसी प्रकार बल बढानेकी इच्छा करनेवाला मनुष्य सुवर्णको भी धारण करे।"

जलमें नाना औषधियोंके गुण हैं यह बात इससे पूर्व आये हुये जल सूक्तोंमें वर्णन हो चुकी है। वे सूक्त पाठक यहां देखें। औषधियोंके अंदर वीर्यवर्धक "रस" हैं, इसीलिये वैद्य औषध प्रयोग करते हैं, अथर्ववेदमें भी यह बात आगे आजायगी। जिस प्रकार जल अंतर्बाह्य पवित्रता करके बल आदि गुणोंकी वृद्धि करता है, इसी प्रकार नाना प्रकारकी वीर्यवर्धक औषधियोंके पथ्य हित मित अन्न भक्षण पूर्वक सेवनसे मनुष्य बल प्राप्त करके दीर्घ जीवन भी प्राप्त करता है। सुवर्ण सेवनसे भी अथवा सुवर्णादि धातुओंके सेवनसे भी इसी प्रकार लाभ होते हैं, इसका वैद्यशास्त्रमें नाम "रस प्रयोग" है। यह रस प्रयोग सुयोग्य वैद्य ही के उपदेशानुसार करना चाहिये। यहां यजुर्वेदका इसी प्रकारका मंत्र देखिये-

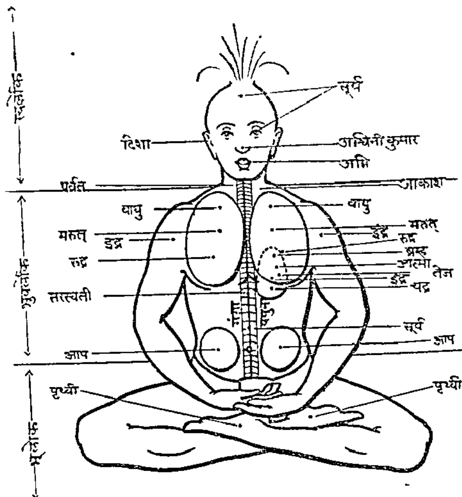
सुवर्णके गुण।

आयुष्यं वर्चस्यं रायस्पोषमौद्भिदम्।
इदं हिरण्यं वर्चस्वज्जैत्रायाविशतादु माम्॥
वा. यजु. ३४।५०

"(आयुष्यं) दीर्घ आयु करनेवाला, (वर्चस्यं) कान्ति बढानेवाला, (रायस्पोष) शोभा और पुष्टि बढानेवाला (औद्भिदं) खानसे उत्पन्न होनेवाला अथवा ऊपर उठानेवाला, (वर्चस्वत्) तेज बढानेवाला (जैत्राय) विजयके लिये (इदं हिरण्यं) यह सुवर्ण (मा उ आविशतात्) मुझे अथवा मेरे शरीरमें प्रविष्ट हो।"

सुवर्णका सेवन।

मनुष्यके शरीरमें देवोंके अंश।



जगत्में जो अग्नि आदि देव हैं उनके अंश शरीर में हैं। इनके स्थान इस चित्रमें बताये हैं। इसके मननसे ज्ञात हो सकता है कि बाह्य जगत् के अग्नि आदि देवोंकी सहकारिताके साथ शरीरके स्वास्थ्यका कितना घनिष्ट संबंध है।

काली कामधेनुका दूध।

इस चतुर्थ मंत्रमें कहा है कालरूपी संवत्सरका (काली काम धेनुका) दूध जो ऋतुओंके द्वारा मिलता है, उससे मनुष्यकी पूर्णता करते हैं। इस कार्यमें इन्द्र अग्नि विश्वेदेव आदि सब पूर्णताके अनुकूल रहें।"

संवत्सर–वर्ष अथवा काल–यह एक कामधेनु है। काल संबंधी यह धेनु होनेसे इसको काली धेनु कहते हैं, यह इसलिये कामधेनु कही गई है कि मनुष्यादिकोंके इच्छित फल धान्य आदि पदार्थ ऋतुओंके अनुकूल देकर यह मनुष्यादि प्राणियों की पुष्टी करती है। प्रत्येक ऋतुके अनुकूल नाना प्रकारके फल और फूल संवत्सर देता है, इसलिये वेदमें संवत्सरको पिताभी कहा है और यहां मधुर दूध देनेवाली कामधेनु कहा है। हरएक ऋतुमें कुछ नवीन फल, फूल, धान्य आदि मिलता है, यही इस धेनुका दूध है। यह दूध हरएक ऋतु इस संवत्सर रूपी गौसे निचोडकर मनुष्यादि प्राणियोंको देते हैं, यह अद्भुत अलंकार इस मंत्रमें बताया है। पाठक इस काव्यपूर्ण अलंकार का आस्वाद यहां लें।

प्रत्येक मासमें प्रत्येक ऋतुमें तथा प्रत्येक कालमें जो जो

फल फूल उत्पन्न होते हैं उनका योग्य उपयोग करनेसे मनुष्यके बल, तेज, वीर्य, आयुष्य आदि बढ सकते हैं। यह इस मंत्रका आशय हरएक मनुष्यको मनन करने योग्य है। मनुष्य अपने पुरुषार्थ व प्रयत्नसे ऋतुके अनुसार फल फूल धान्य आदिकी अधिक उत्पत्ति करे और उनके उपयोग से मनुष्योंको लाभ पहुंचावे।

पूर्व मंत्रमें "(अपां वनस्पतीनां च वीर्याणि) जल तथा वनस्पतियोंके वीर्य" धारण करनेका जो उपदेश हुआ है उसीका स्पष्टीकरण इस चतुर्थ मंत्रने किया है। जिस ऋतुमें जो जल और जो वनस्पति उत्तम वीर्यवान् प्राप्त होनेकी संभावना हो, उस ऋतुमें उसका संग्रह करके, उसका सेवन करना चाहिये। और इस प्रकार आयु, बल, तेज, कांति, शक्ति वीर्य आदि गुण अपने में बढाने चाहिये।

यह वेदका उपदेश मनन करने और आचरणमें लाने योग्य है। इतना उपदेश करनेपर भी यदि लोग निर्वीर्य, निःसत्त्व, निस्तेज, निर्बल रहेंगे और वीर्यवान बननेका यत्न नहीं करेंगे तो वह मनुष्योंका ही दोष है। पाठक इस स्थानपर विचार करें और निश्चय करें कि वेदका उपदेश आचरणमें लानेका यत्न वे कितना कर रहे हैं और कितना नहीं। जो वैदिक धर्मी लोग अपने वैदिक धर्मके उपदेशको आचरणमें नहीं ढालते वे शीघ्र प्रयत्न करके इस दिशासे योग्य सुधार अवश्य करें और अपनी उन्नतिका साधन करें।

इस मंत्रके उत्तरार्धका भाव मनन करने योग्य है। " इन्द्र अग्नि आदि सब देव इसकी अनुकूलतासे सहायता करें " अग्नि आदि देवताओंकी सहायताके विना कौन मनुष्य कैसे उन्नतिको प्राप्त हो सकता है ? अग्नि ही हमारा अन्न पकाता है, जल ही हमारी तृषा शांत करता है, पृथ्वी हमें आधार देती है, बिजली सबको चेतना देती है, वायु सबका प्राण बनकर प्राणियोंका धारण करता है, सूर्यदेव सबको जीवन शक्ति देता है, चंद्रमा अपनी किरणोंद्वारा वनस्पतियोंका पोषण करनेमे हमारा सहायक बनता है, इसी प्रकार अन्यान्य देव हमारे सहायक हो रहे हैं। इनके प्रतिनिधि हमारे शरीरमें रहते हैं और उनके द्वारा ये सब देव अपने अपने जीवनांश हमतक पहुंचा रहे हैं। इस विषयमें इसके पूर्व बहुत कुछ लिखा गया है, इसलिये यहां अधिक विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

इतने विवरणसे यह बात पाठकोंके मनमें आगई होगी कि अग्नि आदि देवताओंकी सहायता किस रीतिसे हमें हो रही है और यदि इनकी सहायता अधिक सेअधिक प्राप्त करने और उससे अधिकसे अधिक लाभ उठानेकी विधि ज्ञात हो गई, तो मनुष्योंका बहुत ही लाभ हो सकता है। आशा है कि पाठक इसका विचार करेंगे और अपना आयु, आरोग्य बल और वीर्य बढाकर जगत् में यशस्वी होंगे।

यहां षष्ठ अनुवाक और प्रथम काण्ड समाप्त।

प्रथम काण्डका मनन ।

थोडासा मनन ।

इस प्रथम काण्डमें दो प्रपाठक, छः अनुवाक, पैंतीस सूक्त और १५३ मंत्र हैं । इस काण्डके सूक्तोंके ऋषि, देवता, और विषय बतानेवाला कोष्टक यहां देते हैं—जो पाठक इस काण्डका विशेष मनन करना चाहते हैं उनको यह कोष्टक बहुत लाभदायक होगा—

अथर्व वेद प्रथम काण्ड के सूक्तों का कोष्टक ।

सूक्त	ऋषि	देवता	गण	विषय
१	अथर्वा	वाचस्पति	वर्चस्यगण	मेधाजनन
२	,,	पर्जन्य	अपराजितगण सांग्रामिक गण	विजय
३	,,	मंत्रोक्त(पृथ्वी, मित्र, वरुण, चंद्र, सूर्य)	——	आरोग्य
४	सिंधुद्वीपः	आपः	——	,,
५	,,	,,	——	,,
६	,,	,,	——	,,
		(इति प्रथमोऽनुवाकः)		
७	चातन;	इन्द्राग्नी	——	शत्रुनाशन
८	,,	अग्निः, बृहस्पतिः	——	,,
९	अथर्वा	वस्वादयः	वर्चस्य गण	तेजकी प्राप्ति
१०	,,	असुरो वरुणः	——	पापनिवृत्ति
११	,,	पूषा	——	सुखप्रसूति
		(इति द्वितीयोऽनुवाकः)		
१२	भृग्वंगिराः	यक्ष्मनाशन	तक्मनाशनगण	रोगनिवारण
१३	,,	विद्युत्	——	ईशनमन
१४	,,	यमो वरुणो वा	——	कुलवधुविवाह
१५	अथर्वा	सिन्धु	——	संगठन
१६	चातनः	अग्नि, इन्द्र, वरुणः	शत्रुनाशन गण	शत्रुनाशन
	(इति चतुर्थोऽनुवाकः प्रथमः प्रपाठकश्च समाप्तः ।)			
१७	ब्रह्मा	योषित्	——	रक्तस्राव-दूरीकरण
१८	द्रविणोदाः	विनायक, सौभाग्यं	——	सौभाग्यवर्धन
१९	ब्रह्मा	ईश्वरः , ब्रह्म	सांग्रामिकगण	शत्रुनाशन
२०	अथर्वा	सोम	——	महान शासक
२१	,,	इन्द्रः	अभयगण	प्रजापालन

(इति चतुर्थोऽनुवाकः)

२२	ब्रह्मा	सूर्यः, हरिमा, हृद्रोगः	——	हृद्रोग तथा कामिला रोग नाशन
२३	अथर्वा	ओषधिः	——	कुष्ठनाशन
२४	ब्रह्मा	आसुरी वनस्पतिः	——	,,
२५	भृग्वंगिराः	अग्निः, तक्मा	तक्मनाशनगण	ज्वरनाशन
२६	ब्रह्मा	इन्द्रादयः	स्वस्त्ययनगण	सुखशांति
२७	अथर्वा	इन्द्राणी	,,	विजयी स्त्री
२८	चातनः	स्वस्त्ययनं	,,	दुष्टनाशन
		(इति पंचमोऽनुवाकः)		
२९	वसिष्ठः	अभीवर्तमणिः	——	राष्ट्रवर्धन
३०	अथर्वा	विश्वेदेवाः	आयुष्यगण	आयुष्यवर्धन
३१	ब्रह्मा	आशापालाः, वास्तोष्पतिः	वास्तुगण	आशापालन
३२	,,	द्यावापृथिवी	——	जीवनतत्त्व
३३	शन्ताति	आपः। चन्द्रमाः	शांतिगण	जल
३४	अथर्वा	मधुवल्ली	——	मीठा जीवन
३५	,,	हिरण्यं, इन्द्राग्नी विश्वेदेवाः	——	दीर्घायु

(इति षष्ठोऽनुवाको द्वितीयः प्रपाठकश्च समाप्तः)

इति प्रथमं काण्डम्।

इन सूक्तोंका मनन करनेके लिये ऋषि और गणोंका विभाग जाननेकी भी अत्यंत आवश्यकता है। इसलिये ये कोष्टक नीचे देते हैं—

३ चातन ऋषि —शत्रुनाशन, दुष्टनाशन।
४ भृग्वंगिरा ऋषिः-रोगनिवारण, ज्वरनाशन, ईर्शनमन विवाह।
५ सिंधुद्वीप ऋषि —जलसे आरोग्य।
६ द्रविणो दा ऋषिः—सौभाग्यवर्धन।
७ वसिष्ठ ऋषिः—राष्ट्रसंवर्धन।
८ शान्ताती ऋषि-वृष्टि जलसे स्वास्थ्य।

इस प्रकार किन ऋषियोंके नामोंसे किन किन विषयोंका संबंध है यह देखना बडा बोधप्रद होता है। (१) सिंधुद्वीप ऋषिके नाममें " सिंधु" शब्द जल प्रवाह का वाचक है और यही जल देवताके मन्त्रोंका ऋषि है। (२) चातन ऋषिके नामका अर्थात् " चातन " शब्दका अर्थ " घबरादेना भगादेना, शत्रुको उखाड देना " है और इस ऋषिके सूक्तोंमें भी यही विषय है। इस प्रकार सूक्तोंके अंदर आनेवाला विषय और ऋषिनामोंका अर्थ इसका कई स्थानोंपर घनिष्ठ संबंध दिखाई देता है। इसका विचार करना योग्य है।

सूक्तों के गण।

जिन प्राचीन मुनियोंने अथर्व सूक्तोंपर विचार किया था, उन्होंने इन सूक्तोंके गण बना दिये हैं। एक एक गणके संपूर्ण सूक्तोंका विचार एक साथ होना चाहिये। ऐसा विचार करने से अर्थज्ञान भी शीघ्र होता है और शब्दोंके अर्थ निश्चित करना भी सुगम हो जाता है। इस प्रथम काडक पैंतीस सूक्तोंमें कई सूक्त कई गणोंके अदर आगये हैं और कई गणोंमें परिगणित नहीं हुए हैं। जो गणोंमें परिगणित नहीं हुए हैं उनको अर्थकी दृष्टिसे हम अन्यगणोंके साथ पढ सकते हैं। इस प्रकार गणशः विचार करेंगे सूक्तोंका बोध शीघ्र हो जाता है, देखिये—

१ वर्चस्य गण - इसके सूक्त १, ९ ये हैं। तथापि तेज, आरोग्य आदि बढानेका उपदेश करनेवाले सूक्त हम इस गणके साथ पढ सकते हैं, जैसे — सूक्त ३—६, १८, २५, २६, ३० ३१, ३४, ३५ आदि।

२ अपराजित गण, सांग्रामिकगण इसके सूक्त २, १९ ये हैं तथापि इसके साथ संबंध रखनेवाले अभय गणकेसूक्त हैं। तथा राष्ट्रशासन और राज्य पालनके सब सूक्त इनके साथ संबंधित हैं, जैसे-सूक्त ७, ८, १५, १६, १७, २०, २१, २७, २९, ३१ आदि।

३ तक्मनाशन गण-इस गणके सूक्त १२, २५, ये हैं तथापि सब रोग नाशक और आरोग्यवर्धक सूक्त इस गणके सूक्तोंके साथ पढना चाहिये। जैसे सूक्त ३-६; १०, २२, २३, २५, ३३, ३५, आदि—

४ स्वस्त्ययनगण-इस गणके सूक्त २६, २७ ये हैं।

५ आयुष्यगण-इस गणके सूक्त ३०, ३५ ये हैं, तथापि स्वस्त्ययन गण, वर्चस्यगण, तक्मनाशन-गण तथा शांतिगणके सूक्तोंका इससे संबंध है।

६ शांतिगण-जल देवताके सब सूक्त इस गणमें आते हैं।

७ अभयगण— इसका सूक्त २१ वां है, तथापि इसके साथ संबंध रखनेवाले गण स्वस्त्ययनगण, अपराजितगण, तक्मनाशनगण, चातन-सूक्त ये हैं।

इस प्रकार यह सूक्तोंके गणोंका विचार है और इस रीतिसे सूक्तोंका विचार होनेसे बहुत ही बोध प्राप्त होता है।

अध्ययन की सुगमता।

कई पाठक शङ्का करते हैं कि एक विषयके सब सूक्त इकट्ठे क्यों नहीं दिये और सब विषयोंके मिलेजुले सूक्त ही सब काण्डोंमें क्यों दिये हैं? इसका उत्तर यह है कि यदि जल आदि विषयोंके संपूर्ण सूक्त इकट्ठे होते, तो अध्ययन करनेवालेको विविधताका अभाव होनेके कारण अध्ययन करनेमें बडा कष्ट हो जाता। अध्ययनकी सुविधाके लिये ही मिलेजुले सूक्त दिये हैं। अच्छी पाठशालाओंमें घण्टे दो घण्टेमें भिन्न भिन्न विषय पढाये जाते हैं, इसका यही कारण है कि पढनेवालोंके मस्तिष्कको कष्ट न हो। सवेरेसे शामतक एक ही विषयका अध्ययन करना हो तो पढने पढानेवालोंको अतिकष्ट होते हैं। इस बातका अनुभव हरएकको होगा।

इससे पाठक जान सकते हैं कि विषयोंकी विभिन्नता रखनेके लिये विभिन्न विषयोंके सूक्त मिलेजुले दिये हैं।

इसमें दूसरा भी एक हेतु प्रतीत होता है, वह यह है कि, पूर्वापर संबधका अनुमान करने और पूर्वापर संबंधका स्मरण रखनेका अभ्यास हो। यदि जलसूक्त प्रथम कांडमें आया हो, तो आगे जहां जल सूक्त आजाय वहां वहां इसका स्मरण पूर्वक अनुसंधान करना चाहिये। इस प्रकार स्मरणशक्ति भी बढ सकती है। स्मरणशक्तिका बढना और पूर्वापर संबंध जोडनेका

अभ्यास होना ये दो महत्वपूर्ण अभ्यास इस व्यवस्थासे साध्य होते हैं।

इस प्रथम काण्डके दो प्रपाठक हैं, इस "प्रपाठक" का तात्पर्य ये दो पाठ ही हैं। दो प्र-पाठ-क" अर्थात् दो विशेष पाठ हैं। गुरुसे एकवार जितना पाठ लिया जाता है उतना एक-प्र पाठ क होता है। इस प्रकार यह प्रथमकाण्ड दो पाठोंकी पढाई है। अथवा एक अनुवाकका एक पाठ अल्पबुद्धिवालोंकेलिये माना जाय तो यह प्रथमकाण्डकी पढाई छ पाठोंकी मानी जा सकती है। एक अनुवाकमें भी विषयोंकी विविधता है और एक प्रपाठकमें भी पाठ्य विषयोंकी विविधता है और इस विविधता के कारण ही पढने पढानेवालोंको बडा रोचकता उत्पन्न हो सकता है

आजकल इतनी पढाई नहीं हो सकती, यह बुद्धि कम होना या माहकता कम होनेका प्रमाण है। यह अथर्ववेद प्रबुद्ध विद्यार्थीके ही पढनेका विषय है। इसलिये अच्छे प्रबुद्ध तथा अन्य शास्त्रोंमें कृतपरिश्रम उक्त प्रकार पढाई कर सकते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।

अथर्ववेदके विषयोंकी उपयुक्तता।

जो पाठक इस प्रथम काडके सब मंत्रोंको अच्छी प्रकार पढेंगे और थोडा मनन भी करेंगे तो उनको उसी समय इस बातका पता लग जायगा कि, इस वेदका उपदेश इस समयमें भी नवीन और अत्यंत उपयोगी तथा आज ही अपने आचरणमें लाने योग्य है। सूक्त पढनेके समय ऐसा प्रतीत होता है कि, यह उपाय आज ही हम आचरण में लायेंगे और अपना लाभ उठायेंगे। उपदेश की जीवितता और जागतता इसी बातमें पाठकोंके मनमें स्पष्ट रूपसे खडी हो जाती है।

वेद सब ग्रंथोसे पुराने ग्रंथ होनेपर भी नवीन से नवीन हैं और यही इनकी "सनातन विद्या" है, यह विद्या कभी पुरानी नहीं होती। जो जिस समय और जिस अवस्थामें पढेगा उसको उसी अवस्थामें और उसी समय अपनी उन्नतिका उपदेश प्राप्त हो सकता है। इस प्रथम कांडके सूक्त पढकर पाठक इस बातका अनुभव करें और वेद विद्याका महत्व अपने मनमें स्थिर करें।

कम दस पाच बार मनन पूर्वक करना चाहिये।

व्यक्तिके विषयमें उपदेश।

प्रथम काण्डके ३५ सूक्तोंमें करीब १६ सूक्त ऐसे हैं कि जो मनुष्यके स्वास्थ्य, आरोग्य, नीरोगता, बल, आयुष्य, बुद्धि आदि विषयोंका उपदेश देनेके कारण मनुष्यके दैनिक व्यवहार के साथ संबंध रखते हैं। हरएक मनुष्य इस समय में भी इनके उपदेशसे लाभ उठा सकता है। आरोग्यवर्धनके वैदिक उपायोंकी ओर हम पाठकोंका विशेष ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। जो इस गणके सूक्त हैं उनका मनन पाठक सबसे अधिक करें और अपनी परिस्थितिमें उन उपायोंको ढालनेका जितना हो सकता है उतना यत्न करें। आरोग्यवर्धनके उपायोंमें सारांशरूपसे इन उपायोंका वर्णन विशेष बलके साथ इस काण्डमें किया है—

जलसे आरोग्य– जलसे आरोग्य होता है, शरीरमें शांति, सुख, नीरोगता आदि प्राप्त होती है यह बतानेवाले जल देवता के चार सूक्त दिये हैं। अनेक प्रकारके जलोंका इन सूक्तोंमें वर्णन करनेके बाद 'दिव्य जल' अर्थात् मेघोंसे प्राप्त होनेवाले जलका महत्व बताया है यह कभी भूलना नहीं चाहिये। वृष्टिके दिनोंमें जिन दिनोंमें शुद्ध जलकी वृष्टि होती है-उन दिनोंमें हम उसका संग्रह हरएक गृहस्थी कर सकता है। जहां वृष्टि बहुत थोडी होती है वहांकी बात छोड दी जाय तो अन्यत्र यह जल सालभरके पीनेके लिये पर्याप्त प्रमाणमें मिल सकता है। परंतु स्मरण रखना चाहिये कि घरके छप्परपर जमा हुआ जल लेना नहीं चाहिये परंतु छत पर खुले और बडे मुखवाला बर्तन रखकर उसमें सीधी वृष्टिधाराओं से जल संग्रहीत करना चाहिये। अर्थात् ऐसा इंतजाम करना चाहिये कि वृष्टिजल की धाराएं सीधी अपने बर्तनमें आजाय। बीचमें घर, छप्पर आदि किसीका स्पर्श न हो। इस प्रकारका इकट्ठा किया हुआ जल स्वच्छ और निर्मल बोतलोंमें भरकर रखनेसे बहुत कालतक रहता है और बिगडता नहीं। यह जल यदि अच्छा रखा गया तो वर्षोंतक रहता है और इसका यह न बिगडनेका गुण ही मनुष्यका आरोग्य वर्धन करता है।

चाहिये और भोजन अत्यन्त लघु होना चाहिये। हरदिन भी पानेके लिये इसका उपयोग करनेवाले बडा ही लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इसका नाम 'अमरवारुणी का पान' है। इसीको 'सुरा' भी कहते हैं। सुरा शब्द केवल मद्य अर्थमें आजकल प्रयुक्त होता है, परंतु प्राचीन प्रथामें इसका अर्थ 'वृष्टि जल' भी था। वरुण का जल साम्राज्य मेघ मंडल में है और वही इस आरोग्य वर्धक वृष्टि जल को देता है। इसका वर्णन वेदके अनेक सूक्तों में है।

वेदका यह आरोग्य प्राप्तिका सीधा, सुगम और व्ययके विना प्राप्त होनेवाला उपाय यदि पाठक व्यवहारमें लायेंगे तो वे बडा ही लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इसलिये हम सानुरोध पाठकों से निवेदन करते हैं कि वे इस विषयमें दत्तचित्त हों और अपना लाभ उठावें।

आरोग्य साधनके अन्य उपाय।

जलके पश्चात् आरोग्य साधनके उपाय जो वेदने बताये वे अब देखिये-

तंग कपडे पहननेवाले बाबू लोगोंको होती है, इसका कारण यही है कि, जिनका शरीर सूर्य किरणोंके साथ संबंध होनेके कारण नीरोग रहता है वे तन्दुरुस्त रहते हैं और जो नाना कपडे पहननेके कारण कमजोर चमडी वाले बनते हैं वे अधिक बीमार हो जाते हैं।

रामायण महाभारतके समयमें रामकृष्णादि वीर अतिदीर्घ आयुवाले थे। वे वीर लोग धोती पहनते थे और धोती ही ओढते थे। प्रायः अन्य समय शरीरपर एक उत्तरीय पहनते थे। पाठक इनके वर्णन यदि पढेंगे तो उनके ध्यानमें यह बात आजायगी कि सभाओंमें भी ये लोग केवल धोती पहनकर ही बैठते थे। इसकारण इनके शरीरके साथ वायु और सूर्य प्रकाश का संबंध अच्छी प्रकार होजाता था। अनेक कारणोंमें यह भी एक कारण है कि जिस हेतु वे अतिदीर्घायुवाले और अति बलवान् थे। वह सादगी इस समय नहीं रही है और इस समय बडी कृत्रिमता हमारे जीवन व्यवहारमें आगयी है इसीका परिणाम हमारे अल्पायु दुर्बल और रोगी होनेमें हो रहा है। पाठक वेदके उपदेशके साथ इस ऐतिहासिक बातका भी मनन करें।

सूर्य प्रकाश इतने विपुल प्रमाणमें भूमिपर आता है कि वह आवश्यकतासे कई गुना अधिक है। इतना होते हुए भी तंग गलियों, तंग मकान, अंधेरे कमरे और उनमें अत्यधिक मनुष्यों की संख्या होनेके कारण जीवन देनेवाला सूर्यनारायण हमारे आरोग्यवर्धनके लिये प्रतिदिन आता है, तथापि हमारेलिये वह इतना लाभ नहीं पहुंचा सकता जितना कि वह पहुंचाने में समर्थ है। ये सब दोष मनुष्यकृत हैं। ऋषिजीवनका हमें इस विषयमें बहुत विचार करना चाहिये और जहातक हो सके वहां तक यत्न करके वह सादगी हमारे खानपान, वस्त्राभूषण तथा अन्यान्य व्यवहारमें आनी चाहिये। वेदके उपदेशानुसार ऋषि अपना व्यवहार रखते थे, इसलिये ऋषि लोगोंको अतिदीर्घ आयु प्राप्त होती थी, और हम उसके बीलकुल उलटे जा रहे हैं, इसलिये मृत्युके वशमें हम अधिक हो रहे हैं।

ही है। खुली वायु और खुला सूर्य प्रकाश मनुष्योंको पूर्ण आयु प्रदान करनेमें समर्थ है, परंतु जो मनुष्य उनसे दूर भागते हैं उनका लाभ कैसे हो सकता है? वृष्टिजल, सूर्य प्रकाश और शुद्ध वायु ये तीन पदार्थ वेद मंत्रों द्वारा आरोग्य बढानेवाले बताये हैं और आजकलके शास्त्रभी उस बातकी पुष्टि कर रहे हैं, इतना ही नहीं परंतु युरोप अमेरिकामें जहां शीत अधिक होता है, उन देशोंमें भी ऐसी संस्थाएं स्थापित हुई हैं कि जहां आरोग्य वर्धनके लिये सूर्य प्रकाशमें करीब करीब नंगा रहना आवश्यक माना गया है। जिन लोगोंने तंग कपडे पहननेके रिवाज जारी किये, वे ही युरोप अमरिकाके लोग इस प्रकार ऋषिजीवन की ओर झुक रहे हैं यह देखकर हमें वेदकी सचाईका जगत् में विजय हो रहा है यह अनुभव होनेसे अधिक ही आनंद होता है। विना प्रचार किये हुए ही लोग भूलते और भटकते हुए वैदिक सचाईका इस प्रकार ग्रहण कर रहे हैं; ऐसी अवस्थामें यदि हम अपने वेदका अध्ययन करेंगे, उन वेद मंत्रोंके उपदेशको अपने आचरणमें ढालेंगे, और अनुभव लेनेके पश्चात् अपने धार्मिक जीवनसे उस सचाईका जगत्में प्रचार करेंगे तो जगत्में इस सचाईका विजय होनेमें कोई देरी नहीं लगेगी।

इसलिये हम पाठकोंसे निवेदन करना चाहते हैं कि वे वेदका पाठ केवल मनोरंजकताके लिये न करें, केवल पारलौकिक भावनासे भी न करें, प्रत्युत वह उपदेश इस जगत् के व्यवहार में किस प्रकार ढाला जा सकता है, इसका विचार करते हुए वेदका अध्ययन करें। तब इसके महत्त्वका पता विशेष रीतिसे लग जायगा।

राष्ट्रीय जीवन।

जैसे वैयक्तिक जीवनके लिये वैदिक उपदेशकी उपयोगिता है उसी प्रकार सामाजिक और राष्ट्रीय जीवनके लिये भी वेदके उपदेश अति मनन करने योग्य हैं। यह विषय आगेके कांडोंमें विशेष रीतिसे आनेवाला है, और वहीं इसका अधिक निरूपण होगा। इस प्रथम कांडमें भी राष्ट्र विषयक मंत्र बडे ओजस्वी और अत्यंत बोधप्रद हैं।

उनतीसवें सूक्तमें 'राष्ट्रके लिये मुझे बढाओ,' तथा 'राष्ट्रकी सेवा करनेके लिये यह आभूषण मेरे शरीरपर बांधा जावे' इत्यादि ओजस्वी उपदेश हरएक समयमें और हरएक राष्ट्रके मनुष्यों और राजपुरुषोंके लिये आदर्श रूप हैं। राष्ट्रीय दृष्टिसे यह वसिष्ठ सूक्त हरएक मनुष्यको विचार करने योग्य है।

इस प्रथम कांडमें कई महत्त्वपूर्ण विषय आगये हैं उन सबका यहां विचार करनेके लिये स्थान नहीं है। उस उस सूक्तके प्रसंगमें ही विशेष बातका दिग्दर्शन किया है। इसलिये उसको दुहराने की यहां कोई आवश्यकता ही नहीं है। पाठक इस कांडका वारवार मनन करेंगे तो मननसे उनके मनमें ही विशेष बातें स्वयं स्फुरित हो जांयगी, जो ऊपरके विवरणमें लिखी नहीं हैं। वेदका अर्थ जाननेके लिये मनन ही करना चाहिये।

आशा है कि पाठक मनन पूर्वक इस कांडका अभ्यास करेंगे और इस उपदेशसे अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करनेका यत्न करेंगे तथा जो विशेष बात अनुभवमें आ जायगी उसका प्रकाशन जनताकी भलाईके लिये करेंगे। इस प्रकार करनेसे सबका ही भला हो जायगा।





अथर्ववेदका सुबोध भाष्य।

प्रथमकाण्डकी विषय-सूची।



ॐ

अथर्ववेद

का

सुबोध भाष्य ।

द्वितीयं काण्डम् ।

लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

साहित्यवाचस्पति, वेदाचार्य, गीतालङ्कार

अध्यक्ष-स्वाध्याय मण्डल, आनन्दाश्रम, किल्ला पारडी (जि सूरत)

तृतीय बार

संवत् २००८, शाके १८७३, सन १९५१

सबका पिता।

स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामध एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ॥ ३ ॥

अथर्ववेद २।१।३

"वह ईश्वर हम सबका पिता, उत्पादक और बन्धु है, वही सब स्थानों और भुवनोंको यथावत् जानता है। उसी अकेले ईश्वरको अन्य सम्पूर्ण देवोंके नाम दिये जाते हैं और सम्पूर्ण भुवन उसी प्रशंसनीय ईश्वरको प्राप्त करने के लिये घूम रहे हैं।"



मुद्रक तथा प्रकाशक- वसंत श्रीपाद सातवळेकर.
भारत मुद्रणालय, स्वाध्याय मंडळ, पारडी (जि. सूरत)



अथर्ववेद का सुबोधभाष्य ।

द्वितीय काण्ड ।

इस द्वितीय काण्डका प्रारंभ "वेन" सूक्तसे और "वेन" शब्दसे होता है । यह मंगल वाचक शब्द है । 'वेन" शब्दका अर्थ " स्तुति करनेवाला, ईश्वरके गुण गानेवाला भक्त" ऐसा है । परमात्मा पूर्ण रीतिसे स्तुति करने योग्य होनेसे उसीके साक्षात्कारके और उसीके गुण वर्णन के मन्त्रोंका यह सूक्त है। इस परमात्माकी विद्याके नाम " गुप्त विद्या, गूढ विद्या, गुह्य विद्या, परा विद्या, आत्मविद्या " आदि अनेक हैं। इस गुह्य विद्यामें परमात्माका साक्षात्कार करनेके उपाय बताये जाते हैं । यह इस विद्याकी विशेषता है । विद्याओंमें श्रेष्ठ विद्या यही है जो इस काण्डके प्रारंभमें दी गई है, इसलिये इसका अध्ययन पाठक इस दृष्टिसे करें।

जिस प्रकार प्रथम काण्ड मुख्यतया चार मंत्रवाले सूक्तोंका है, उसी प्रकार यह द्वितीय काण्ड पांच मन्त्रवाले सूक्तोंका है। इस द्वितीय काण्डमें ३६ सूक्त हैं और २०७ मन्त्र हैं। अर्थात् प्रथम काण्डकी अपेक्षा इसमें एक सूक्त अधिक है और ५४ मन्त्र अधिक हैं । इस द्वितीय काण्डमें सूक्तोंकी मन्त्र संख्या निम्नलिखित प्रकार है ।

५	मंत्रोंके	सूक्त	२२	हैं,	इनकी	मंत्र संख्या	११०	है
६	,,	,,	५	,,	,,	,,	३०	,,
७	,,	,,	५	,,	,,	,,	३५	,,
८	,,	,,	४	,,	,,	,,	३२	,,
	कुल	सूक्त संख्या	३६		कुल	मंत्र संख्या	२०७	

इस द्वितीय काण्डके ऋषि देवता छंद आदि निम्नलिखित प्रकार हैं-

सूक्त	मंत्र	ऋषि	देवता	छंद
प्रथमोऽनुवाकः				
१	५	वेन	ब्रह्म, आत्मा	त्रिष्टुप्, ३ जगती
२	,,	मातृनामा	गन्धर्व, अप्सराः	,, १ विराड्जगती, ४ त्रिपाद्विराण्नाम गायत्री ५ भुरिगनुष्टुप्

सूक्त	मंत्र	ऋषि	देवता	छंद	
३	६	आंगिराः	भैषज्यं, आयुः, धन्वन्तरिः	अनुष्टुप्,	६ स्वराडुपरिष्टान्महाबृहती.
४	,,	अथर्वा	चन्द्रमाः, जङ्गिडः	,,	२ विराट् प्रस्तारपंक्तिः
५	७	भृगुः (आथर्वणः)	इन्द्रः	त्रिष्टुप्;	१, २उपरिष्टाद्बृहती (१ निचृत, २ विराट्), विराट् पथ्या बृहती, ४ जगती पुरोविराट्

द्वितीयोऽनुवाकः

सूक्त	मंत्र	ऋषि	देवता	छंद	
६	५	शौनकः (संपत्कामः)	अग्निः	,,	४ चतुष्पदार्षी पंक्तिः ५ विराट् प्रस्तारपंक्तिः
७	,,	अथर्वा	भैषज्यं, आयुः, वनस्पतिः	अनुष्टुप्,	१ भुरिक्, ४ विराडुपरिष्टाद्बृहती
८	,,	भृगुः (आंगिरसः)	वनस्पतिः यक्ष्मनाशनं,	,,	३ पथ्यापंक्तिः, ४ विराट् ५ निचृत पथ्यापंक्तिः
९	,,	,, ,,	,, ,,	,, ;	१ विराट् प्रस्तारपंक्तिः
१०	८	,, ,,	निर्ऋति, द्यावापृथिवी, नानादेवताः	१ त्रिष्टुप्,	२ सप्तपादष्टिः ३-५, ७, ८ (१) सप्तपदी धृतिः; ६ सप्तपदी अत्यष्टिः ८ (२, ३) द्वौ पादौ, उष्णिहौ।

तृतीयोऽनुवाकः

सूक्त	मंत्र	ऋषि	देवता	छंद	
११	५	शुक्रः	कृत्यादूषणं, कृत्यापरिहरणं		१ चतुष्पदा विराट्, २-५ त्रिपदा परोष्णिहः, ४ पिपीलिकमध्या निचृत्
१२	८	भरद्वाजः	नानादेवताः	त्रिष्टुप्;	२ जगती, ७,८ अनुष्टुभौ
१३	५	अथर्वा	,, अग्निः	,, ;	४ अनुष्टुप्, ५ विराड् जगती
१४	६	चातनः	शाला, अग्निः, मंत्रोक्तदेवताः	अनुष्टुप्,	२ भुरिक्, ४ उपरिष्टाद्विराड्बृहती.
१५	,,	ब्रह्मा	प्राणः, अपानः, आयुः		त्रिपाद्गायत्री.
१६	७	,,	,,		१, ३ एकपदासुरी त्रिष्टुप्. २ एकपदासुरी उष्णिक्, ४, ५ द्विपदासुरी गायत्री

सूक्त	मंत्र	ऋषि	देवता	छंद
१७	,,	,,	,,	१, ६ एकपदासुरी त्रिष्टुप्, ७ आसुरी उष्णिक्

चतुर्थोऽनुवाकः

सूक्त	मंत्र	ऋषि	देवता	छंद
१८	५	चातन (सपत्न क्षयकाम)	अग्नि	साम्नी बृहती.
१९	,,	अथर्वा	,,	१-४ निचृद्विषमा गायत्री ५ भुरिग्विषमा
२०	,,	,,	वायु	,, ,,
२१	,,	,,	सूर्य	,, ,,
२२	,,	,,	चन्द्र	,, ,,
२३	,,	,,	आप	,, ,,
२४	८	ब्रह्मा	आयुष्य	पंक्ति
२५	५	चातनः	वनस्पति	अनुष्टुप्, ४ भुरिक्
२६	,,	सविता	पशु	त्रिष्टुप् ३ उपरिष्टाद्विराड्बृहती ४, ५ अनुष्टुभौ (४ भुरिक्)

पञ्चमोऽनुवाकः

सूक्त	मंत्र	ऋषि	देवता	छंद
२७	७	कपिञ्जलः	वनस्पति यमः, इन्द्रः	अनुष्टुप्
२८	५	शम्भुः	जरिमा, आयुः	त्रिष्टुप् १ जगती, ५ भुरिक्
२९	७	अथर्वा	बहुदेवता	,, १ अनुष्टुप् ४ पराबृहती त्रिष्टुप् प्रस्तारपंक्तिः
३०	५	प्रजापति	अश्विनौ	अनुष्टुप्, १ पथ्यापंक्ति. ३ भुरिक्
३१	,,	काण्व	मही, चन्द्रमा,	,, २ उपरिष्टाद्विराड्बृहती ३ आर्षी त्रिष्टुप् ४ साम्नी बृहती, ५ साम्नी त्रिष्टुप्

सूक्त	मंत्र	ऋषि	देवता	छंद	
३४	५	अथर्वा	पशुपतिः	त्रिष्टुप्	
३५	"	अंगिराः	विश्वकर्मा	"	१ बृहतीगर्भा, ४, ५ भुरिक्
३६	८	पतिवेदनः	अग्नीषोमौ	"	१ भुरिक् २, ५-७ अनुष्टुप्, ८ निचृत्पुर उष्णिग्

इस प्रकार सूक्तोंके ऋषि देवता और छंद हैं। स्वाध्याय करनेके समय पाठकों को इनके ज्ञानसे बहुत लाभ हो सकता है। अब हम ऋषिक्रमसे सूक्तोंका कोष्टक देते हैं-

१ अथर्वा- ४,७,१३, १९-२३; २९, ३४ ये दस सूक्त।
२ ब्रह्मा— १५-१७, २४, ३३, ये पांच सूक्त।
३ आंगिरसो भृगुः—८-१० ये तीन सूक्त।
४ चातनः— १४, १८, २५, " " "
५ अंगिराः—३, ३५, ये दो सूक्त।
६ काण्वः ३१, ३२ " " "
७ आथर्वणो भृगुः-५ यह एक सूक्त।
८ वेनः— १ " "
९ मातृनामा— २ " "
१० शौनकः— ६ " "
११ शुक्रः— ११ " "
१२ भरद्वाजः— १२ " "
१३ सविता— २६ " "
१४ कपिञ्जल — २७ " "
१५ शम्भू— २८ " "
१६ प्रजापतिः— ३० " "
१७ पतिवेदनः- ३६ " "

ये ऋषि—क्रमानुसार सूक्त हैं। अब देवता—क्रमानुसार सूक्तों की गणना देखिये-

१ ब्रह्म, आत्मा-१ यह एक सूक्त।
२ गंधर्वः- २ " "
३ इन्द्रः - ५ " "
४ अग्निः - ६, १३, १४,१८, १९, ये पांच सूक्त।
५ वनस्पतिः - ३, ७-९, २५, २७ ये छः सूक्त।
६ दीर्घायुष्यं - ३, ७, १५-१७, २४,२८ ये सात सूक्त।
७ आरोग्यं - ८, ९, ११, १५-१७; २८ ये सात सूक्त।
८ चंद्रमा - ४, २२, ३१, ३२ ये चार सूक्त।
९ जंगिडः - ४ यह एक सूक्त
१० निर्ऋतिः - १० " "
११ वायुः - २० " "
१२ सूर्यः - २१ " "
१३ आदित्यः - ३२ " "
१४ आपः - २३ " "
१५ अश्विनौ - ३० " "
१६ विश्वकर्मा - ३५ " "
१७ अग्नीषोमौ - ३६ " "
१८ पशुपतिः - ३४ " "
१९ पशुः - २६ " "

अन्य सूक्तों में अनेक देवताएं हैं, जो प्रत्येक मंत्रके विवरण में पाठक देख सकते हैं। समान देवताके सूक्तोंका अर्थविचार एक साथ करना चाहिए। अर्थविचार करनेके समय ये कोष्टक पाठकोंके लिए बडे उपयोगी हो सकते हैं। इस कोष्टकसे किनके सूक्तों का विचार साथ साथ करना चाहिए। यह बात पाठक जान सकते हैं और इस प्रकार विचार करके मंत्रों और सूक्तों का अनुसंधान कर सकते हैं।

इतनी आवश्यक बात यहां कहके अब इस द्वितीय काण्डका अर्थ विचार करते हैं-

———•———

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य ।

द्वितीय काण्ड ।

गुह्य-अध्यात्म-विद्या ।

(१)

[ऋषिः-वेनः । देवता-ब्रह्म, आत्मा]

वेनस्तत्पश्यत्परमं गुहा यद्यत्र विश्वं भवत्येकरूपम् ।
इदं पृश्निरदुहज्जायमानाः स्वर्विदो अभ्यनूषत व्राः ॥ १ ॥
प्र तद्वोचेदमृतस्य विद्वान् गन्धर्वो धाम परमं गुहा यत् ।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुष्पितासत् ॥ २ ॥
स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामध एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ॥ ३ ॥

अर्थ— (वेनः तत् परमं पश्यत्) भक्त ही उस परमश्रेष्ठ परमात्माको देखता है, (यत् गुहा) जो हृदय की गुफामें है और (यत्र विश्वं एकरूपं भवति) जिसमें सम्पूर्ण जगत् एकरूप हो जाता है। (इदं पृश्निः जायमानाः अदुहत्) इसीका प्रकृतिने दोहन करकेही जन्मलेनेवाले पदार्थ बनाये हैं और इसलिए (स्वर्विदः व्राः) प्रकाश को जानकर व्रत पालन करनेवाले मनुष्यही इसकी (अभ्यनूषत) उत्तम प्रकारसे स्तुति करते हैं ॥ १ ॥

(यत् गुहा) जो हृदयकी गुफा में है (तत् अमृतस्य परम धाम) वह अमृतका श्रेष्ठ स्थान (विद्वान् गन्धर्वः प्रवोचत्) ज्ञानी वक्ता कहे । (अस्य त्रीणि पदा) इस के तीन पद (गुहा निहिता) हृदय की गुफामें रखे हैं, [यः तानि वेद) जो उनको जानता है (स. पितु. पिता असत्) वह पिताका भी पिता अर्थात् बडा समर्थ हो जाता है ॥२॥

[सः नः पिता) वह हम सबका पिता है, (जनिता) जन्म देनेवाला (उत सः बंधुः) और वह भाई है, वह (विश्वा भुवनानि धामानि वेद) सब भुवनों और स्थानोंको जानता है । (यः एकः एव) वह अकेलाही एक (देवानां नाम—धः) सम्पूर्ण देवोंके नाम धारण करनेवाला है, (तं सं-प्रश्नं) उसी उत्तम प्रकारसे पूछने योग्य परमात्माके प्रति (सर्वा भुवना यन्ति) संपूर्ण भुवन पहुंचते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— जिसमें जगत्की विविधता भेदका त्याग कर एकरूपताको प्राप्त होती है और जिसका निवास हृदयमें है, उस परमात्माको भक्तही अपने हृदयमें साक्षात देखता है । इस प्रकृतिने उसी एक आत्माकी विविध शक्तियोंको निचोड कर उत्पन्न होनेवाले इस विविध जगत् को निर्माण किया है, इसलिए आत्मज्ञानी मनुष्य सदा उसी एक आत्माका गुणगान करते हैं ॥ १ ॥

जो अपने हृदयमें ही है उस अमृतके परम धाम का वर्णन आत्मज्ञानी संयमी वक्ता ही कर सकता है। इसके तीन पाद हृदयमें गुप्त हैं, जो उनको जानता है, वह परम ज्ञानी होता है ॥ २ ॥

वही हम सबका पिता, जन्मदाता और भाई भी है, वही संपूर्ण स्थितियोंकी सब अवस्थाओंको यथावत् जानता है। वह केवल अकेलाही एक है और अग्नि आदि संपूर्ण अन्य देवोंके नाम उसीको प्राप्त होते हैं अर्थात् उसको ही दिये जाते हैं। विश्वभर उसीके विषयमें वारंवार प्रश्न पूछते हैं और ज्ञान प्राप्त करते हुए अन्तमें उसीको प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

परि द्यावापृथिवी सद्य आयमुपातिष्ठे प्रथमजामृतस्य ।
वाचमिव वक्तरि भुवनेष्ठा धास्युरेष नन्वे३षो अग्निः ॥ ४ ॥
परि विश्वा भुवनान्यायमृतस्य तन्तुं विततं दृशे कम् ।
यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने योनावध्यैरयन्त ॥ ५ ॥

अर्थ- (सद्यः) शीघ्र ही (द्यावा-पृथिवी परि आयं) द्युलोक और पृथ्वी लोकमें सर्वत्र मैं घूम आया हूं और अब (ऋतस्य प्रथमजां उपातिष्ठे) सत्यके पहिले उत्पादक की उपासना करता हूं। (वक्तरि वाचं इव) वक्तामें जैसी वाणी रहती है, उसी प्रकार यह (भुवने—स्थाः) सब भुवनोंमें रहता है, और (एषः धास्युः) यही सबका धारक और पोषक है, (ननु एषः अग्निः) निश्चयसे यह अग्नि ही है ॥ ४ ॥

(यत्र) जिसमें (अमृतं आनशानाः देवाः) अमृत खानेवाले सब देव (समाने योनौ) समान आश्रयको (अध्यैरयन्त) प्राप्त होते हैं, उस (ऋतस्य) सत्यके (विततं कं तन्तुं दृशे) फैले हुए सुखकारक धागेको देखनेके लिए मैं [विश्वा भुवनानि परि आयं] सब भुवनोंमें घुम आया हूं ॥ ५ ॥

भावार्थ- द्युलोक और पृथ्वी लोकके अंदर जो अनंत पदार्थ हैं,उन सबका निरीक्षण करनेके बाद पता लगता है,कि अटल सत्य नियमोंका पहिला प्रवर्तक एकही परमात्मा है, इसलिए मैं उसीकी उपासना करता हूं। जिस प्रकार वक्तामें वाणी रहती है, उसी प्रकार जगत् के सब पदार्थों अथवा सब प्राणियोंमें वह सबका धारण पोषण कर्ता एक आत्मा रहता है, उसको अग्नि भी कह सकते हैं अर्थात् जैसा अग्नि लकडीमें गुप्त रहता है उसी प्रकार वह सब पदार्थोंमें गुप्त रहता है ॥ ४ ॥

जिस एक परमात्मामें अग्नि वायु सूर्यादि देव समान रीतिसे आश्रित हैं और जिसकी अमृत मयी शक्ति संपूर्ण उक्त देवोंमें कार्य कर रही है, वही एक सर्वत्र फैला हुआ व्यापक सत्य है, उसी का साक्षात्कार करनेके लिए सब वस्तुमात्रका निरीक्षण मैंने किया है और पश्चात् सबके अंदर वही एक सूत्र फैला है यह मैंने अनुभव किया है ॥ ५ ॥

गूढविद्याका अधिकारी।

सब विद्याओंमें यह गुह्य विद्या मुख्य है, इसलिए हरएक को इस विद्याकी प्राप्ति के लिये यत्न करना चाहिए। वास्तवमें देखा जाय, तो सभी मनुष्य इसकी प्राप्तिके मार्ग में लगे हैं, कई दूर के मार्गपर हैं और कईयोंने समीपका मार्ग पकडा है, इन अनेक मार्गोंमेंसे कौनसा मार्ग इस सूक्तको अभीष्ट है, यह बात यहां अब देखेंगे—

वेनः तत्पश्यत् ॥ १ ॥

' वेनही उसको देखता है, ' यह प्रथम मंत्रका विधान है। यहां प्रत्यक्ष देखता है, जिस प्रकार मनुष्य सूर्यको आकाशमें प्रत्यक्ष देखता है उस प्रकार यह भक्त इस आत्मा को अपने हृदयमें प्रत्यक्ष करता है, यह भाव स्पष्ट है। यह अधिकार ' वेन ' का ही है यह ' वेन ' कौन है ? ' वेन् ' धातुके अर्थ— ' भजन पूजन करना, विचार से देखना, भक्ति करना, तथा इसी प्रकार के उपासनाके कार्य करनेके लिये जाना ' ये हैं। ये ही अर्थ यहां वेन शब्द में हैं। ' जो ईश्वर का भजन पूजन करता है, हृदयसे उसकी भक्ति करता है, विचारकी दृष्टिसे उसको जाननेका प्रयत्न करता है ' इस प्रकारका जो ज्ञानी भक्त है, वह वेन शब्दसे यहां अभिप्रेत है। इसलिए केवल " बुद्धिमान " अर्थ ही यहां लेना उचित नहीं है। कितनी भी बुद्धिकी विशालता क्यों न हुई हो, जबतक उसके हृदयमें भक्ति की लहरें न उठतीं हों, तबतक उस प्रकारके शुष्क ज्ञानसे परमात्माका साक्षात्कार नहीं हो सकता, यह यहां इस सूक्त द्वारा विशेष रीतिसे बताना है।

द्वितीय मंत्रमें कहा है कि—

अमृतस्य धाम विद्वान् गंधर्वः ॥ २ ॥

"अमृतके धाम को जाननेवाला गंधर्व ही उसका वर्णन कर सकता है।" इसमें "गंधर्व" शब्द विशेष महत्वपूर्ण है। गंधर्व शब्द का अर्थ "संत, पवित्रात्मा" कोशों में प्रसिद्ध है और यह शब्द वेन शब्दके पूर्वोक्त अर्थके साथ मिलता जुलता भी है। तथापि "गां वाणीं धारयति" अर्थात् " अपनी वाणीका धारण करनेवाला" यह अर्थ यहां विशेष योग्य है। वाणीका धारण तो सब करते ही हैं, परंतु यहां वाणीका बहुत प्रयोग न करते हुए अपनी वाक्शक्तिका संयम करनेवाला, अत्यन्त आवश्यकता होनेपर ही वाणीका उपयोग करनेवाला, यह अर्थ गंधर्व शब्दमें है। विशेष अर्थ से परिपूर्ण परंतु अल्प शब्द बोलनेवाला विद्वान गंधर्व शब्दसे यहां लिया जाता है। प्रायः आत्मज्ञानी वक्ताका वक्तृत्व मूकतासे ही होता है, किंवा थोडे परंतु अर्थपूर्ण शब्दोंसे ही आत्मज्ञानी पवित्रात्मा आप्त पुरुष जो कुछ कहना है, कह देता है। जबतक लौकिक विद्याका ज्ञान मनुष्यके मनमें हलचली मचाता रहता है, तब तक ही मनुष्य मेघगर्जनाके समान वक्तृत्व करता रहता है, परंतु इसका परिणाम श्रोताओंपर विशेष नहीं होता। जब आत्मज्ञान होता है और ईश्वर साक्षात्कार होता है, तब इसका वक्तृत्व अल्प होने लगता है। परंतु प्रभाव बढता जाता है। वाक्शक्तिपर संयम होने लगता है। यह गन्धर्व अवस्था समझिये।

यहां "वेन और गंधर्व" ये दो शब्द आत्मज्ञानके अधिकारीके वाचक शब्द हैं। उपासक, भक्त तथा गंभीर शब्दोंका प्रयोग संयम के साथ करने वाला जो होता है, वही परमात्माका साक्षात्कार करता है और वही उसका वर्णन भी कर सकता है।

पूर्व तैयारी। (प्रथम अवस्था)

उक्त उपासक आत्मज्ञानी हो सकता है, परंतु इसके बननेके लिये पूर्व तैयारी की आवश्यकता है, यह पूर्व तैयारी निम्न लिखित शब्दों द्वारा उस सूक्तमें बताई है—

सद्यः द्यावापृथिवी परि आयम् ॥ ४ ॥

विश्वा भुवनानि परि आयम् ॥ ५ ॥

कुछ किया, मनुष्यको जो जो अभ्युदय विषयक करना संभव है, वह सब किया । यह गूढतत्त्वके दर्शनकी प्रथम अवस्था है । इस अवस्थामें भोगेच्छा प्रधान होती है ।

द्वितीय अवस्था ।

इसके बाद दूसरी अवस्था आती है, जिस समय विचार उत्पन्न होता है, कि ये नाशवन्त भोग कितने भी प्राप्त किये, तथापि इनसे सच्ची तृप्ति नहीं होती; इसलिये सची तृप्ति, सचा मनका समाधान प्राप्त करनेके लिये कुछ यत्न करना चाहिये । इस द्वितीय अवस्थामें भोगोंकी ओर प्रवृत्ति कम होती है और अभौतिक तत्त्व दर्शन की ओर प्रवृत्ति बढती जाती है; इसका निर्देश इस सूक्तमें निम्न लिखित प्रकार किया है-

अमृतस्य विततं कं तन्तुं दशे विश्वा भुवनानि परि आयम् ॥ ५ ॥

"अमृतका फैला हुआ सुखकारक मूल सूत्र देखनेके लिए मैंने सब भुवनोमें चक्कर मारा," अर्थात् इस द्वितीय अवस्थामें इसका चक्कर इसलिये होता है, कि इस विविधतासे परिपूर्ण जगत्के अंदर एकताका मूल स्रोत होगा तो उसे देखें; इस दुःख कष्ट भेद लडाई झगडों से परिपूर्ण जगत्में सुख आराम ऐक्य और अविरोध देनेवाला कुछ तत्त्व होगा तो उसको ढूंढेंगे, इस उद्देश्यसे इसका भ्रमण होता है । यह जिज्ञासूकी दूसरी अवस्था है । इस अवस्था का मनुष्य तीर्थों क्षेत्रों और पुण्यप्रदेशों में जाता है, वहां सज्जनोंसे मिलता है, देशदेशांतरमें पहुंचता है और वहांसे ज्ञान प्राप्त करता है इसका इस समय का उद्देश यही रहता है, कि इस विभेद पूर्ण दुःखमय अवस्थासे अभेदमय सुखकारक अवस्थाको प्राप्त करें । इतने परिश्रम करनेसे उसको कुछ न कुछ प्राप्त होता रहता है और फिर वह प्राप्त हुए ज्ञानको अपने में स्थिर करनेका यत्न करनेकी तैयारी करता है । इस प्रकार वह दूसरी अवस्थासे तीसरी अवस्थामें पहुंचता है । इस तीसरी अवस्थाका वर्णन इससूक्तमें निम्न लिखित शब्दों द्वारा किया है-

तृतीय अवस्था ।

द्यावापृथिवी परि आयं सद्यः ऋतस्य प्रथमजां उपातिष्ठे ॥ ४ ॥

" मैं द्युलोक और पृथ्वीलोक में खूब घूम आया हूं और अब मैं सत्य के पहिले प्रवर्तक की उपासना करता हूं ।"

जगत् भरमें घूमकर विचार पूर्वक निरीक्षण करनेसे इसको पता लगता है कि, इस विभिन्न जगत् में एक अभिन्न तत्त्व है और वही (कं) सच्चा सुख देनेवाला है । जब यह ज्ञान इसको होता है, तब यह उसके पास जानेकी इच्छा करता है । उपासनासे भिन्न कोई अन्य मार्ग उसको प्राप्त करनेका नहीं है, इसलिये इस मार्ग में अब यह उपासक आता है । ये अवस्थायें इस सूक्तके मंत्रों द्वारा व्यक्त होगई हैं, इन मंत्रों के साथ यजुर्वेद वाजसनेयी संहिताके मंत्र देखनेसे यह विषय अधिक खुल जाता है; इसलिये वे मंत्र अब यहां देते हैं-

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च ।
उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि सं विवेश ॥ ११ ॥
परि द्यावापृथिवी सद्य इत्वा परि लोकान्परि दिशः परि स्वः ।
ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य तदपश्यत्तदभवत्तदासीत् ॥ १२ ॥ वा. यजु. अ. ३२

" (भूतानि परीत्य) सब भूतोंको जानकर या भूतोंमें घूमकरके (लोकान् परीत्य) सब लोकोंमें भ्रमण करके (सर्वाः दिशः प्रदिशः च परीत्य) सब दिशा और उपदिशाओंमें भ्रमण करके अर्थात् इन सबको यथावत् जानकर (ऋतस्य प्रथमजां उपस्थाय) सत्यके पहिले नियमके प्रवर्तक की उपासना करके (आत्मना आत्मानं) केवल आत्मस्वरूपसे परमात्माके प्रति (अभि सं विवेश) सब प्रकारसे प्रविष्ट होता हूं ॥ ११ ॥

ये दो मंत्र उपासककी उन्नतिके मार्गका प्रकाश उत्तम रीतिसे कर रहे हैं । जगत् में घूम आनेकी जो बात अथर्ववेदने कही थी, उसका विशेष ही स्पष्टीकरण इन दो मंत्रोंके प्रथम अर्धोंद्वारा हुआ है : "सब भूत, सब लोकलोकान्तर, सब उपदिशाएँ, द्यु और पृथ्वीके अंतर्गत सब पदार्थ, अथवा अपनी सत्ता जहां तक जासकती है, वहां तक जाकर, वहांतक विजय करके, वहां-तक पुरुषार्थ प्रयत्नसे यश फैलाकर तथा उन सबका परीक्षण निरीक्षण समीक्षण आदि जो कुछ किया जाना संभव है, वह सब करके देख लिया । इतने निरीक्षणसे ज्ञात हुआ कि अटल सत्यनियमोंको चलानेवाला एकही सूत्ररूप आत्मा सबके अंदर है, वही सर्वत्र फैला है, उसीके आधारसे सब कुछ है, उसके आधार के विना कोई ठहर नहीं सकता । जब यह जान लिया तब उसकी ही उपसना की, और केवल अपने आत्मासेही उसमें प्रवेश किया । जब वहांका अनुभव लिया, तब उपासक वैसा बन गया, जैसा पाहिले था ।

पाठक इन मंत्रोंके इस आशयको देखेंगे तो उनको पता लग जायगा, कि जो अथर्ववेदके इस सूक्तके मंत्रों द्वारा आशय व्यक्त हुआ है, वही बडे विस्तारसे इन मंत्रोंमें वर्णित हुआ है । और ये मंत्र उन्नतिकी अवस्थाएं भी स्पष्ट शब्दोंद्वारा बता रहे हैं, देखिये—

१ प्रथम अवस्था—(अज्ञानावस्था)—अपने या जगत् के विषय का पूर्ण अज्ञान ।

२ द्वितीय अवस्था—(भोगावस्था)—जगत् अपने भोग के लिये है, ऐसा मानना, और जगत्को अपने स्वाधीन करनेका यत्न करना । जगत् पर प्रभुत्व स्थापित करना । इसी अवस्थामें राज्यैश्वर्य भोग बढाये जाते हैं ।

३ तृतीय अवस्था—(त्यागावस्था)—जगत्के भोगोंसे असमाधान होकर विभक्तोंमें व्यापक अविभक्त सत्तावाली सद्वस्तुको ढूंढनेका प्रयत्न करना । यह जिज्ञासुकी अवस्था है ।

४ चतुर्थ अवस्था (भक्तावस्था)—मनुष्य विभिन्न विश्वमें व्यापक एक अभिन्न आत्मतत्त्वको देखने लगता है और श्रद्धा भक्तिसे उसकी उपासना करने लगता है।

५ पंचम अवस्था—(स्वरूपावस्था)—उपासना और भक्ति दृढ और सहज होनेपर वह तद्रूप हो जाता है, मानो उसमें एक रूप होकर प्रविष्ट होता है, या जैसा था वैसा बन जाता है । यही साक्षात्कार की अवस्था है, यहां इसको सब ज्ञान प्रत्यक्ष होता है ।

यही मार्ग इस अथर्व सूक्तमें वर्णन किया है । यहां पाठकोंको स्पष्ट हुआ होगा कि पूर्व तैयारी कौनसी है और आगेका मार्ग क्या है ।

पूर्णावस्था ।

पूर्वोक्त यजुर्वेदके मंत्रोंमें कहा ही है कि—

> उपस्थाय प्रथमजामृतस्य
> आत्मनात्मानमभि सं विवेश
> ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य ।
> तदपश्यत्तदभवत्तदासीत् ॥१२॥ वा. यजु० अ. ३२

"सत्यके पहिले प्रवर्तक परमात्माकी उपासना करके आत्मासे परमात्मामें प्रविष्ट हुआ ।। सत्यके फैले हुए धागेको अलग देखकर वैसा हुआ जैसा कि पहिले था।" यह सब वर्णन पूर्ण अवस्थाका है ।। इसीको निम्नलिखित शब्दोंद्वारा इस अथर्व सूक्तमें कहा है-

> स्वर्विदः व्राः अभ्यनूषत ॥ १ ॥
> अमृतस्य धाम विद्वान् ॥ २ ॥
> यस्तानि वेद स पितुष्पिताऽसत् ॥ २ ॥

" (व्राः) व्रत पालन करनेवाले (स्वर्विदः) आत्मज्ञानी उसी की स्तुति करते हैं । वे अमृतके धामको जानते हैं । जो ये धाम जानता है वह पिताका पिता अर्थात् सबमें अधिक ज्ञानी अथवा सबमें अधिक समर्थ होता है । " यह अंतिम फल है पूर्ण अवस्थामें पहुंचनेका निश्चय इससे हो सकता है ।

प्रथम मंत्रमें "व्रा." शब्द बडा महत्त्व रखता है । व्रतों या नियमोंका पालन करनेवाला अपनी उन्नतिके लिये जो नियम आवश्यक होंगे उनको अपनी इच्छासे पालन करनेवालेका यह नाम है। नियम स्वयं देखकर स्वयंही उस व्रतका पालन करना बडे पुरुषार्थसे साध्य होता है । इसमें व्रतभंग होनेपर अपने आपको स्वयंही दंड देना होता है, स्वयं ही प्रायश्चित करना होता है । महान् आत्माही ऐसा कर सकते हैं । हरएक मनुष्य दूसरे पर अधिकार चला सकता है, परंतु स्वयं अपने पर अधिकार चलाना अति कठिन है । अपनी संपूर्ण शक्तियां अपने आधीन रखनी और कभी कुविचार आदि शत्रुओंके आधीन न होना इत्यादि महत्व पूर्ण बातें इस आत्मशासनमें आती हैं । परतु जो यह करेगा, वही आत्मज्ञानी और विशेष समर्थ बनेगा और उसीके महत्त्व सब लोग मानेंगे ।

सूत्रात्मा ।

मणियोंकी माला बनती है, इस मालामें जितने मणि होते हैं, उन सबमें एक सूत्र होता है, जिसके आधारसे ये मणि रहते हैं । सूत्र टूट गया तो माला नहीं रहती और मणि भी बिखर जाते हैं । जिस प्रकार अनेक मणियोंके बीचमें यह एक सूत्र या तंतु होता है, उसी प्रकार इस जगत् के सूर्यचंद्रादि विविध मणियोंमें परमात्माका व्यापक सूत्र तन्तु या धागा है, जिसके आधारसे यह सब विश्व रहा है, इसीका दर्शन नहीं होता, सब मालका ही वर्णन करते हैं, परंतु जिस धागेके आधारसे ये सब मणि मालारूपमें रहे हैं, उस सूत्रका महत्व तत्वज्ञानी ही जान सकता है और वह उस जगदाधार को प्राप्त कर सकता है ।

वेदमें "तन्तु, सूत्र" आदि शब्द इस अर्थमें आगये हैं । जगत्के संपूर्ण पदार्थ मात्रके अंदर यह परमात्माका सूत्र फैला है, कोई भी पदार्थ इसके आधारके विना नहीं है। यह जानना, इस ज्ञानका प्रत्यक्ष करना और इसका साक्षात्कारसे अनुभव लेना गूढ विद्याका विषय है, जो इस सूक्त द्वारा बताया है ।

इस गुह्य विद्याका अनुभव लेनेके विषयमें बडा लाभ निःसंदेह होता है; परंतु यह एक बाह्य साधन है। सच्ची गुफा हृदय की गुहा ही है। हृदय की गुफा सब जानते ही हैं। इसी में इस गुह्यतत्वकी खोज करनी चाहिए।

सब प्राणी तथा सब मनुष्य बाहर देखते हैं, इस बहिर्दृष्टिसे गुह्यतत्त्वकी खोज नहीं हो सकती। इस कार्य के लिए दृष्टि अंतर्मुख होनी चाहिए, अपनी इंद्रिय शक्तियों का प्रवाह अंदर की ओर अर्थात् उलटा शुरू होना चाहिए। तभी इस गुह्य तत्त्व की खोज हो सकती है। अपने हृदयमें ही उस गुह्य आत्माको देखना चाहिए। अर्थात् इसकी प्राप्तिके लिए बाह्य दिशाओंमें भ्रमण करनेकी आवश्यकता नहीं है, अंतर्मुख होकर अपनी हृदयकी गुफामें देखना चाहिए।

चार भाग

यह अमृतका धाम हृदयमें है। यदि इस अमृत के चार भाग मान लिए जांय, तो तीन भाग अंदर गुप्त हैं और केवल एक भाग ही बाहर व्यक्त है। जो बाहर दिखता है, जो स्थूल दृष्टिसे अनुभवमें आता है वह अत्यंत अल्प है, परंतु जो अंदर गुप्त है, वह बहुत विस्तृत ही है। अपने शरीर में भी देखिये आत्मा-बुद्धि, मन, प्राण ये हमारी अंतःशक्तियां अदृश्य हैं और स्थूल शरीर यह दृश्य है। यदि शक्तिकी तुलना की जाय तो स्थूलशरीर की शक्ति की अपेक्षा आंतरिक शक्तियां बहुत ही प्रभावशाली हैं। अर्थात् स्थूल और व्यक्त की शक्तिकी अपेक्षा सूक्ष्म और अव्यक्त की शक्ति बहुतही बडी है। यही यहां निम्नलिखित शब्दोंद्वारा व्यक्त हुआ है-

त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुष्पिताऽसत् ॥ २५ ॥

"इसके तीन पाद गुहामें गुप्त हैं, जो उनको जानता है वह समर्थसे भी समर्थ होता है।" अर्थात् स्थूलशरीरकी शक्तिकी स्वाधीनता होनेकी अपेक्षा आंतरिक शक्तियोंपर प्रभुत्व प्राप्त होनेसे अधिक सामर्थ्य प्राप्त होता है। इसी विषयमें ये मंत्र देखिये-

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥
त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाऽभवत्पुनः ॥ ४ ॥ ऋ० १०।९०।वा. य. ३१
त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत्पादोस्येहाऽभवत्पुनः ॥ अथर्व १९। ६
त्रिपाद्ब्रह्म पुरुरूपं वितष्ठे तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥ अथर्व० ९।१०।१९

"इसके एक पादसे सब भूत बने हैं और तीन पाद अमृत द्युलोक में है॥ तीन पाद पुरुष का ऊपर उदय हुआ है, और एक पाद पुरुष यहां वारंवार प्रकट होता है॥ तीन पावोंसे स्वर्गपर चढा है और एक पाद यहां पुनः पुनः होता है॥ तीन पाद ब्रह्म बहुत रूप धारण करके ठहरा है, जिससे चारों दिशाएं जीवित रहती हैं।"

इन सब मंत्रोंका तात्पर्य वही है, जो इस सूक्त के ऊपर दिए हुए भागमें बताया है। उस अमृतकी अल्पसी शक्ति स्थूल में प्रकट होती है, शेष अनंत शक्ति अप्रकट स्थितिमें गुप्त रहती है और उस गुप्त शक्तिसे ही इस व्यक्त में कार्य होता रहता है। पाठक मनकी शक्ति की शरीरकी शक्तिके साथ तुलना करेंगे, तो उक्त बातका पता उनको लग जायगा। मनकी शक्ति बहुत है उसका थोडासा भाग शरीरमें गया है और यहां कार्य कर रहा है। यह स्थूलमें कार्य करनेवाला अंशरूप मन वारंवार मूल गुप्तमनकी शक्तिसे प्रभावित होता है, नवजीवन प्राप्त करता है और वारंवार शरीरमें आकर कार्य करता है। यही बात आत्मिक सत्यतासे अमृततत्त्वके साथ संगत होती है। उसका केवल एक अंश प्रकट है, शेष अनंत शक्ति गुप्त है, इसके साथ अपना संबंध जोडना गूढविद्याका साध्य है।

एक रूप।

जगत्में विविधता है और इस आत्मतत्त्वमें एकरूपता है। जगत्में गति है इसमें शांति है, जगत्में भिन्नता है इसमें एकता है; इस प्रकार जगत्का और आत्माका वर्णन किया जाता है, सब लोग इस वर्णन के साथ परिचित हैं, इस सूक्तमें भी देखिए—

वेनस्तत्पश्यत्परमं गुहा यद्यत्र विश्वं भवत्येकरूपम्।
इदं पृश्निरदुहज्जायमानाः स्वर्विदो अभ्यनूषत व्राः ॥ १ ॥

" ज्ञानी भक्त ही उसको देखता है, जो हृदयकी गुहामें है और जिसमें सम्पूर्ण विश्व अपनी विविधताको छोडकर एकरूप हो जाता है। इसकी शक्तिको प्रकृति खींचती है और जन्म लेनेवाले पदार्थ पैदा करती है। इसलिये आत्मज्ञानी व्रतपालन करनेवाले भक्त उस आत्माका ही गुण गान करते हैं। "

पाठक अपने अंदर इसका अनुभव देख लें, जाग्रतीमें जगत्की विविधता का अनुभव आता है, स्वप्नमें भी काल्पनिक सृष्टिमें विविधताका अनुभव आता है, परंतु तृतीय अवस्था गाढ निद्रा—सुषुप्ति में भिन्नताका अनुभव नहीं आता और केवल एकत्वका अनुभव व्यक्त करना असंभव है, इसलिए उस समय किसी प्रकारका भान नहीं होता। सुषुप्ति, समाधि और मुक्तिमें " ब्रह्म रूपता " होती है, तम—रज—सत्व-गुणोंकी भिन्नता छोड दी जाय तो उक्त तीनों स्थानोंमें ब्रह्मरूपता, आत्मरूपता अथवा साधारण भाषामें ईशरूपता होती है और इस अवस्थामें भिन्नत्वका अनुभव मिट जाता है, इसलिए इस अवस्थाको " एक—त्व " कहते हैं। इसी उद्देशसे इस मंत्रमें कहा है कि—

यत्र विश्वं एकरूपं भवति ॥ १ ॥

" जहां संपूर्ण विश्व एकरूप होता है। " अर्थात् जिसमें जगत् की विविधता अनुभवमें नहीं आती, परंतु उस सब विविधता को एकताका रूप आ जाता है। वृक्ष के जड, शाखा, पल्लव आदि भिन्न रूपताका अनुभव है, परंतु गुठली में इन भिन्नता की एक रूपता दिखाई देती है। इसी प्रकार इस जगद्रूपी वृक्षकी विविधता मूल उत्पत्तिकारण में जाकर देखनेसे एकरूपता में दिखाई देगी। इसी मुख्य आदि कारणसे विविध शक्तियां प्रकृति अपने अंदर धारण करके उत्पत्ति वाले पदार्थ निर्माण करती है। इस रीतिसे न उत्पन्न होनेवाले एक तत्त्वसे उत्पन्न होनेवाले अनेक तत्त्व बनते हैं। इनका ही नाम उक्त मंत्रमें ' जायमानाः ' कहा है। इनमें मनुष्यभी संमिलित हैं और अन्य प्राणी तथा अप्राणी भी हैं। इनमें मनुष्यही (व्राः) व्रतपालनादि सुनियमोंसे अपनी उन्नति करके आदि मूलको जानता और अनुभव करके (स्वर्विदः) प्रकाश प्राप्त करके प्रतिदिन अनुष्ठान करता हुआ समर्थ बनता जाता है।

अनुभव का स्वरूप।

आत्मज्ञानी मनुष्य को अमृत धामका अनुभव किस प्रकार होता है, उसके अनुभव का स्वरूप अब देखना चाहिये—'आत्मज्ञानी मनुष्य अमृतधाम को अपनी हृदयकी गुहामें अनुभव करता है, अनंत शक्तियां वहां ही इकट्ठी हुई हैं, यह उसका अनुभव है।' (मंत्र २ देखो)

और वह अनुभव करता है कि— ' वही परमात्मा हम सबका पिता, उत्पादक, और भाई है, वही सर्वज्ञ है।' (मंत्र ३) इतनाही नहीं परंतु "वही हमारी माता और वही हमारा सच्चा मित्र है" यह भी उसका अनुभव है। यहां ऋग्वेद और अथर्व मंत्रोंकी तुलना कीजिये—

स नः पिता जनिता स उत बन्धुर्धामानि वेद भुवनानि विश्वा ॥
यो देवानां नामध एक एव तं सं प्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ॥ अथर्व. २।१।३
यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ॥
यो देवानां नामधा एक एव तं सं प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥ ऋग्वेद १०।८२।३
स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ॥ वा. यजु. ३२।१०

इनमें कुछ पाठभेद है, परंतु सबका तात्पर्य ऊपर बताया ही है। यही ज्ञानी भक्त का अनुभव है। और एक अनुभव यजुर्वेदके मंत्रमें दिया है वहां भी वह देखिये—

जगत् का ताना और बाना।

वेनस्तत्पश्यत्परमं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्।
तस्मिन्निदं सं च विचैति सर्वं स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥ वा. यजु. ३२।८

'ज्ञानी भक्त उस परमात्माको जानता है जो हृदय की गुहामें है और जिसमें संपूर्ण विश्व एक घोसले में रहनेके समान रहता है, तथा जिसमें यह सब विश्व एक समय (सं एति) मिल जाता है या लीन होता है और दूसरी समय (वि एति) अलग होता है। (सः विभूः) वह सर्वत्र व्यापक तथा वैभवसे युक्त है और (प्रजासु ओतः प्रोतः) प्रजाओं में ताना और बाना किये हुए धागों के समान फैला है।''

धोती में जैसे ताने और बानेके धागे होते हैं, उस प्रकार परमात्मा इस जगत् में फैला है, यह उस ज्ञानीका अनुभव है।

बालक पर आपत्ति आती है उस समय वह बालक अपने माता पिता, बडे भाई, चचा, दादा, नाना आदिके पास सहायतार्थ जाता है। वही बालक बडा होनेपर आपत्ति आगई तो अपने समर्थ मित्रके पास जाता है और उससे सहायता लेता है। इसी प्रकार अन्य प्रसंगों में गुरु, राजा, आदिकों की सहायता लेता है। ये सब संबंध परमात्मामें ज्ञानी अनुभव करता है अर्थात् ज्ञानी भक्तके लिये परमात्माही सम्राट्, राजा, सरदार, शासक, शिक्षक, गुरु, माता, पिता, मित्र, भाई आदि रूप हो जाता है।

एकके अनेक नाम

एक ही मनुष्यको उसका पुत्र पिता कहता है, स्त्री पति कहती है, उसका भाई उसको बंधु कहता है, इस प्रकार विविध संबंधी उस एकही पुरुषको विविध संबंधोंके अनुभव होनेके कारण विविध नामोंसे पुकारते हैं। इस रीतिसे एक मनुष्यको विविध नाम मिलने पर भी उसके एकत्वमें कोई भेद नहीं आता है।

इसी ढंगसे परमात्मा एक होनेपर भी उसके अनंत गुणोंके कारण और उसके ही अनंत गुण सृष्टीके अनंत पदार्थोंमें आनेके कारण उसको अनंत नाम दिये जाते हैं। जैसा अग्निमें उष्णता गुण है वह परमात्मा से प्राप्त हुआ है, इसलिये अग्निका अग्नि नाम वास्तविक गुणकी सत्ताकी दृष्टिसे परमात्माका ही नाम है, क्योंकि वह अग्निकाही अग्नि है। इसी प्रकार अन्यान्य देवोंके नामोंके विषयमें जानना योग्य है।

शरीरमें भी देखिये-आख नाक कान आदि इंद्रियां स्वयं अपने अपने कर्म नहीं कर सकतीं, परंतु आत्माकी शक्तिको अपने अंदर लेकर ही अपने कर्म करनेमें समर्थ होती हैं। इसलिये सब इंद्रियोंके नाम आत्मामें सार्थ होते हैं, अतः आत्माको आंखका आख, कानका कान कहते हैं। इसी प्रकार परमात्मा सूर्यका सूर्य, विद्युतका विद्युत है। देवोंके नाम धारण करनेवाला परमात्मा है ऐसा जो तृतीय मंत्रमें कहा है, वह इस प्रकार सत्य है।

वह एकही है।

परमात्मा एक ही है, यह बात इस तृतीय मंत्रमें 'एक एव' (वह एक ही है) इन शब्दों द्वारा जोरसे कही है। किसी-को परमात्माके अस्तित्वके विषयमें यत्किंचित् भी शंका न हो, इसलिये 'एव' पदकी योजना यहां की है। भक्त को भी ईश्वरके एकत्वका अनुभव होता है, क्योंकि 'विभक्तोंमें अविभक्त' आदि अनुभव उसको होता है, इत्यादि विषय इससे पूर्व बताया ही है॥

ज्ञानी भक्तका विशेष अनुभव यह है कि, वह परमात्मा "स-प्रश्न" है अर्थात् प्रश्न पूछने योग्य और उससे उत्तर लेने योग्य है। भक्तिसे जब भक्त उसे प्रश्न पूछता है, तब वह उसका उत्तर साक्षात्कार से देता है। कठिन प्रसंगोंमें उसकी सहायता की याचना की, और एकान्त में अनन्य शरण वृत्ति से उसकी प्रार्थना की, तो वह प्रार्थना निःसंदेह सुनता है, और भक्तके कष्ट दूर करता है। अन्य मित्र सहायतार्थ समयपर आसकेंगे या नहीं इसका नियम नहीं, परंतु यह परमात्मा ऐसा मित्र है, कि वह अनन्य भावसे शरण जानेपर सदा सहायतार्थ सिद्ध रहता है और कभी ऐसा नहीं होता कि, वह शरणागत की सहायता न करे। इसलिये सहायतार्थ यदि किसीसे पूछना हो, तो अन्य मित्रोंकी प्रार्थना करनेकी अपेक्षा इसकी ही प्रार्थना करना योग्य है; क्योंकि हर समय यह सुननेके लिये तैयार है और इसका उदार दयामय हस्त सदा हम सबपर है।

यह सबका (धास्यु) धारण पोषण करनेवाला है और (भुवने-स्थाः) संपूर्ण स्थिरचर जगत्में ठहरा है अर्थात् हरएक पदार्थमें व्याप्त है। कोई स्थान उससे खाली नहीं है। वक्तामें जैसा वक्तृत्व है, उस प्रकार जगत्में यह है, सचमुच यह अग्नि ही है। (मन्त्र ४) इसी प्रकार पाठक कह सकते हैं कि, यह सूर्य है और यही विद्युत् है, क्योंकि पदार्थ मात्रकी सत्ता ही यह है, फिर अग्नि वायु रवि यह है यह कहनेकी आवश्यकता ही क्या है ? परन्तु यहा सबकी सुबोधताके लिये ऐसा कहा है। मनुष्यका शब्द आत्मशक्तिसे उत्पन्न होता है उसी प्रकार सूर्य भी परमात्माकी शक्तिसे ही प्रकाशता है।

देवोंका अमृतपान।

इस सूक्तके पांचवें मंत्रमें कहा है, कि उस परमात्मामें देव अमृतपान करते हैं—

यत्र देवा अमृतमानशाना समाने योनावध्यैरयन्त ॥ ५॥

"उस परमात्मामें देव अमृतपान करते हुए समान अर्थात् एकही आश्रयमें पहुंचते हैं।"

अर्थात् सब देव उसमें समान अधिकार से, समान रूपसे अथवा अपनी विभिन्नताको छोडकर एक रूप बनकर उसमें लीन होते हैं और वहा का अनुपमेय अमृत पीते हैं।

मुक्ति, समाधि और सुषुप्ति में यह बात अनुभवमें आती है मुक्ति और समाधि तो हरएक के अनुभवमें नहीं है,परतु सुषुप्ति हरएक के अनुभवमें है। इस अवस्थामें सब जीव ब्रह्मरूप होते हैं। इस समय मानवी शरीरमें रहनेवाले देव अर्थात् सब इंद्रियां अपना भेदभाव छोडकर एक आदि कारणमें लीन होती हैं और वहां आत्मामें गोता लगाकर अमृतानुभव करती हैं। इस अमृतपानसे उनकी सब थकावट दूर होती है और जब सुषुप्ति से हटकर ये इंद्रियां जाग्रतावस्थामें पुन लौट आती हैं, तब पुन तेजस्वी बनती हैं। यदि चार आठ दिन सुषुप्ति न मिली, तो मनुष्य-शरीर निवासी एक भी देव अपना कार्य करनेके लिये योग्य नहीं रहेगा। बीमारी में भी जबतक सुषुप्ति प्रतिदिन आती रहती है, तबतक बीमार की अवस्था चिंताजनक समझी नहीं जाती। परतु यदि चार पांच दिन निद्रा बद हुई तो वैद्यभी कहते हैं कि, यह रोगी असाध्य हुआ है। इतना महत्त्व तमोगुणमय सुषुप्ति अवस्थामें प्राप्त होनेवाली ब्रह्मरूपताका और उसमें प्राप्त होनेवाले अमृतपानका है। इससे पाठक अनुमान कर सकते हैं कि समाधि और मुक्ति में मिलनेवाले अमृतपानसे कितना लाभ और कितना आनंद होता होगा।

यजुर्वेदमें यही मन्त्र थोडे पाठ भेदसे आगया है वह भी यहां देखने योग्य है-

यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ वा यजु. ३२।१०॥

"यहां देव अमृत का भोग करते हुए तीसरे धाम में पहुचते हैं।" पूर्वोक्त मंत्र में जहां 'समाने योनौ' शब्द है वहां इस मंत्रमें "तृतीये धामन्" शब्द हैं। समान योनी का ही अर्थ तृतीय धाम है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति यदि ये तीन अवस्थाए मान ली जाय,तो तीसरी अवस्था सुषुप्ति ही आती है जिसमें सब देव अपना भेद भाव छोडकर एकरूप होकर ब्रह्मरूप बनकर अमृत पान करते हैं। स्थूल, सूक्ष्म, कारण ये प्रकृतिके रूप यहां लिये, जाय, तो सब इन्द्र चन्द्र सूर्यादि देव अपनी भिन्नता त्यागकर उस मन्त्रमें लीन होकर अमृत रूप होते हैं। ज्ञानी भक्त महात्मा साधुसत ये लोग अपने समान भावसे मुक्त अवस्थामें लीन होते हुए अमृत भोगके महानंदको प्राप्त होते हैं। इस प्रकार हरएक स्थानमें इसका अर्थ देखना चाहिये। [पाठक इस सूक्तका मनन कां० १।सू० १३ और २० इन दो सूक्तोंके साथ करें]

यहां इस प्रथम सूक्तका विचार समाप्त होता है। यदि पाठक इस सूक्तके एक एक मंत्रका तथा मंत्रके एक एक भागका विचार करेंगे, और उसपर अधिक मनन करेंगे, तो उनके मनमें गूढविद्याकी बातें स्वयं स्फुरित होंगी। इस सूक्तमें शब्द पुन पुनके रखे हैं,और हरएक शब्द विशेष भाव बता रहा है। विशेष विचार करनेकी सुगमता के लिये ऋग्वेद और यजुर्वेद के पाठ भी यहां दिये हैं इससे पाठक इसका अधिक मनन कर सकते हैं। वेदकी यह विशेष विद्या है, इसलिये पाठक इस सूक्तके मननसे जितना अधिक लाभ उठावेंगे उतना अधिक अच्छा है।

यह सबका (धास्युः) धारण पोषण करनेवाला है और (भुवने-स्थाः) संपूर्ण स्थिरचर जगत्‌में ठहरा है अर्थात् हरएक पदार्थमें व्याप्त है। कोई स्थान उससे खाली नहीं है। वक्तामें जैसा वक्तृत्व है, उस प्रकार जगत्‌में यह है, सचमुच यह अग्नि ही है। (मंत्र ४) इसी प्रकार पाठक कह सकते हैं कि, यह सूर्य है और यही विद्युत् है, क्योंकि पदार्थ मात्रकी सत्ता ही यह है; फिर अग्नि वायु रवि यह है यह कहनेकी आवश्यकता ही क्या है ? परन्तु यहां सबकी सुबोधताके लिये ऐसा कहा है। मनुष्यका शब्द आत्मशक्तिसे उत्पन्न होता है उसी प्रकार सूर्य भी परमात्माकी शक्तिसे ही प्रकाशता है।

देवोंका अमृतपान।

इस सूक्तके पांचवें मंत्रमें कहा है, कि उस परमात्मामें देव अमृतपान करते हैं—

यत्र देवा अमृतमानशानाः समाने योनावध्यैरयन्त ॥ ५॥

"उस परमात्मामें देव अमृतपान करते हुए समान अर्थात् एकही आश्रयमें पहुंचते हैं।"

अर्थात् सब देव उसमें समान अधिकार से, समान रूपसे अथवा अपनी विभिन्नताको छोडकर एक रूप बनकर उसमें लीन होते हैं और वहां का अनुपमेय अमृत पीते हैं।

मुक्ति, समाधि और सुषुप्ति में यह बात अनुभवमें आती है मुक्ति और समाधि तो हरएक के अनुभवमें नहीं है, परंतु सुषुप्ति हरएक के अनुभवमें है। इस अवस्थामें सब जीव ब्रह्मरूप होते हैं। इस समय मानवी शरीरमें रहनेवाले देव- अर्थात् सब इंद्रियां-अपना भेदभाव छोडकर एक आदि कारणमें लीन होती हैं और वहां आत्मामें गोता लगाकर अमृतानुभव करती हैं। इस अमृतपानसे उनकी सब थकावट दूर होती है और जब सुषुप्ति से हटकर ये इंद्रियां जाग्रतावस्थामें पुनः लौट आती हैं, तब पुनः तेजस्वी बनती हैं। यदि चार आठ दिन सुषुप्ति न मिली, तो मनुष्य-शरीर निवासी एक भी देव अपना कार्य करनेके लिये योग्य नहीं रहेगा। बीमारी में भी जबतक सुषुप्ति प्रतिदिन आती रहती है, तबतक बीमार की अवस्था चिंताजनक समझी नहीं जाती। परंतु यदि चार पांच दिन निद्रा बंद हुई तो वैद्यभी कहते हैं कि, यह रोगी असाध्य हुआ है। इतना महत्त्व तमोगुणजन्य सुषुप्ति अवस्थामें प्राप्त होनेवाली ब्रह्मरूपताका और उसमें प्राप्त होनेवाले अमृतपानका है। इससे पाठक अनुमान कर सकते हैं कि समाधि और मुक्ति में मिलनेवाले अमृतपानसे कितना लाभ और कितना आनंद होता होगा।

यजुर्वेदमें यही मंत्र थोडे पाठ भेदसे आगया है वह भी यहां देखने योग्य है-

अभ्रिये दिद्युन्नक्षत्रिये या विश्वावसुं गन्धर्वं सचध्वे ।
ताभ्यो वो देवीर्नम इत्कृणोमि ॥ ४ ॥
याः क्रन्दास्तमिषीचयोऽक्षकामा मनोमुहः ।
ताभ्यो गन्धर्वपत्नीभ्योऽप्सराभ्योऽकरं नमः ॥ ५ ॥

अर्थ— (अनु-अवद्याभिः आभिः) दोषरहित ऐसे इन प्राणशक्तियोंके साथ वह (उ स जग्मे) निश्चयसे मिला रहता है और (अप्सरासु अपि) इन प्राणशक्तियोंमें भी (गन्धर्वः आसीत्) भूमि आदियोंका धारक देव विद्यमान है। (आसां स्थानं समुद्रे) इनका स्थान अन्तरिक्षमें है, (यतः) जहांसे (सद्यः) शीघ्र ही ये (आ यन्ति) आती हैं और (परा यन्ति च) परे जाती हैं। यह बात (मे आहुः) मुझे बतायी है ॥ ३ ॥

(अभ्रिये दिद्युत्) बादलोंकी विद्युत् में अथवा (नक्षत्रिये) नक्षत्रोंके प्रकाशमें भी (याः) जो तुम (विश्वावसु गन्धर्वं) विश्वके बसानेवाले धारक देव को (सचध्वे) प्राप्त करती हो अथवा उसकी सेवा करती हो, इसलिए हे (देवीः) देवियो ! (ताभ्यः वः) उन तुमको (इत् नमः कृणोमि) निश्चय पूर्वक मैं नमन करता हूं ॥ ४ ॥

(याः क्रन्दाः) जो बुलानेवाली या प्रेरणा करनेवाली, (तमिषी—चयः) ग्लानिको हटानेवाली, (अक्ष—कामाः) आंखोंकी कामना तृप्त करनेवाली, (मनो—मुहः) मनको हिलानेवाली हैं (ताभ्यः गन्धर्व—पत्नीभ्यः अप्सराभ्यः) उन गंधर्वपत्नीरूप अप्सराओंको—अर्थात् सर्वधारक आत्माकी प्राणशक्तियोंको (नमः अकरम्) मैं नमस्कार करता हूं ॥ ५ ॥

भावार्थ— इसके साथ जीवनकी अनंत कलाएं हैं, इतना ही नहीं परंतु वह उन जीवन शक्तियोंके अंदर भी है। इन सबका निवास मध्यलोक—अंतरिक्ष—है, जहांसे ये सब शक्तियां प्रकट होती हैं और जहां फिर गुप्त हो जाती हैं ॥ ३ ॥

बादलोंके अंदर चमकनेवाली विद्युत्में क्या और नक्षत्रोंके प्रकाशमें क्या यह सब जगत्का पालन कर्ता एक रस भरा है, और इसीकी सेवा संपूर्ण जीवनकी शक्तिरूप देवियां कर रही हैं, इसलिए उनको भी नमन करना योग्य है ॥ ४ ॥

ये प्राणशक्तियां सबको प्रेरणा करनेवाली, सबको चलानेवाली, थकावटको दूर करनेवाली, आंखोंकी कामना तृप्त करनेवाली और मनको हिलानेवाली हैं। यही आत्माकी शक्तियें हैं, इस दृष्टिसे मैं इनको नमस्कार करता हूं (अर्थात् वह इनको किया हुआ मेरा नमस्कार भी उस अद्वितीय ईश्वरको ही पहुंचेगा, क्योंकि ये शक्तियां उसीके आधारसे रहती हैं) ॥ ५ ॥

पूर्व सम्बन्ध

प्रथम सूक्तमें " गुह्य अध्यात्मविद्या " का वर्णन किया गया है, उस सूक्तमें जिस परमात्मा देवका वर्णन किया गया है, उसीका वर्णन यहां " गंधर्व " शब्दसे किया गया है। उस प्रथम सूक्तके द्वितीय मन्त्रमें भी " गंधर्व " शब्द है, इससे पूर्व सूक्तका इस सूक्तके साथ संबंध स्पष्ट हो जाता है।

७ सूर्यत्वक्--महान् सहस्ररश्मी सूर्य भगवान् ही इसका देह है, अर्थात् यह उस में भी है इतनाही नहीं, परंतु उसका बडा तेज भी इसीसे प्राप्त हुआ है। यह इसकी महिमा है (मं. २)। इसी प्रकार अन्यान्य पदार्थोंमें इसकी सत्ता देखनी चाहिए। यह शब्द एक उपलक्षण मात्र है।

८ विश्वा-वसुः (गंधर्वः)-विश्वका यही निवासक है। (मं. ४)

ये लक्षण स्पष्ट कर रहे हैं कि यहांका यह गंधर्वका वर्णन निःसंदेह परमात्मा का वर्णन है। किसीभी अन्य पदार्थ में ये सब अर्थ पूर्णरूपसे सार्थ नहीं हो सकते। इसलिए पाठक इन लक्षणों का मनन करके अपने मनमें इस परमात्म देव की भक्ति स्थिर करें, क्योंकि यही एक सबके लिए पूजनीय देव है।

ब्रह्मकी ब्राह्म उपासना।

इस परमात्माकी प्राप्ति इसकी उपासनासे होती है। इस सूक्तमें इसकी ' ब्राह्म उपासना ' करनेका विधान बडा महत्व-पूर्ण है।

१ तं त्वा यौमि ब्रह्मणा। (मं० १)
२ नमस्यः। (मं० १,२) नमस्ते अस्तु। (मं० २)
३ विक्षु ईड्यः। (मं० १)
४ सुशेवाः। (मं० २)

ये चार मंत्र भाग इसकी ब्राह्म उपासना करनेके मार्ग की सूचना दे रहे हैं। ब्राह्म उपासना का अर्थ ' ब्रह्मयज्ञ ' अथवा मन द्वारा करने की ' मानस उपासना ' ही है। आत्मा बुद्धि चित्त मन आदि अंतःसाधनोंसे हो यह परमात्म पूजा होती है, इन शक्तियोंका नामही शरीरमें ब्रह्म है। ब्रह्म शब्दका अर्थ मंत्र भी है और मंत्रका आशय ' मनन ' है। मननसे यह उपासना करनी होती है, मनके मनन से ही यह हो सकती है, किसी अन्य रीतिसे यह नहीं होती है, यह स्पष्टतया बतानेके लिए यहां ' ब्रह्मणा ' शब्द इस मंत्र में प्रयुक्त हुआ है। यह बात ध्यान में धारण करके उक्त चार मंत्रभागोंका अर्थ ऐसा होता है—

१ तं त्वा यौमि ब्रह्मणा—उस तुझ परमात्माको मननसे प्राप्त होता हूं। (मनन)
२ नमस्यः [नमस्ते] —तू ही एक नमस्कार करने योग्य है। (नमन)
३ विक्षु ईड्यः—सब जगत्में तू ही प्रशंसा करनेके लिए योग्य है। (सर्वत्र दर्शन)
४ सु—शेवाः—तूही उत्तम सेवाके लिए योग्य है। (सेवन)

इन चार मंत्र भागोंके मननसे मानस पूजाकी विधि ज्ञात हो जाती है। (१) प्रभुके गुणोंका मनसे मनन करना, (२) उसी को मनसे नमन करना, (३) प्रत्येक पदार्थ में तथा प्राणिमात्रमें उसका दर्शन करना और (४) सब कर्म उसकी सेवा करने के लिए करना, ये चार भाग उस प्रभुकी उपासना के हैं। इन चार भागोंमें से जितने भागोंका अनुष्ठान हुआ होगा, उतनी उपासना उन्नेही प्रमाण से हुई है, ऐसा मानना चाहिए। पाठक विचार करें और अपनी उपासनाकी परीक्षा इस कसौटीसे करें। हरएक मनुष्य अपने आपको परमात्माका उपासक मानताही है, परंतु उससे जो उपासना हो रही है, वह इस वैदिक मानस उपासना की उस कसौटीसे किस दर्जेपर गिनी जा सकती है, यह भी देखना चाहिये। इस दृष्टीसे ये चार मंत्र भाग विशेषही महत्व रखते हैं।

' मनन, नमन, सर्वत्र दर्शन और सेवन ' ये चार नाम संक्षेप से मानस उपासना के चार अंगोंके दर्शक माने जा सकते हैं।

१ " मनन " से परमात्माके महत्वकी मनमें स्थिरता होती है। इस दृष्टीसे इसकी अत्यंत आवश्यकता है।
२ " नमन " जब मननसे उसका महत्व ज्ञात हुआ, तब स्वभावतः ही मनुष्य उस प्रभुके सामने नम्र होता

है । मननके पश्चात् की यह स्वाभाविक ही अवस्था है ।

३ " दर्शन " मननसे ही उसकी सार्वत्रिक सत्ता का भी अनुभव होता है । स्थिर चरमें एक रस व्यापक होनेका साक्षात्कार होनेकी यह तीसरी उच्च अवस्था है। जगत्के अंदर प्रभुका ही सर्वत्र साक्षात्कार इस अवस्था में होता है ।

ये तीनों मानसिक कियाएं हैं । इसके पश्चात् यह भक्त अपने आपको परमात्माके परम यज्ञमें समर्पण करता है, वह सेवावस्था है ।

४ " सेवन " यह इस अवस्थामें उसका सेवक बनता है । सेवन और 'भजन' ये दोनों शब्द समान अर्थके ही हैं– सेवन और भजन एकही अर्थ बताते हैं । प्रभुके कार्यके लिये अपने आपको समर्पित करना, यही भक्ति या सेवा है ।

'दीनों का उद्धार' करना, साधुओंका परित्राण करना, सज्जनोंकी रक्षा करना, दुर्जनोंको दूर करना, ये ही परमात्मा के कर्म हैं। इन कर्मों को परमात्मार्पण बुद्धिसे करनेका नाम ही उसकी भक्ति या सेवा है ।

नामस्मरण ।

नामस्मरण का भी यही तात्पर्य है, जैसा " हरि " (दुःखोंका हरण करनेहारा) देव है, इसलिए मैं भी दुःखितोंका दुःख यथाशक्ति हरण करूंगा और दूसरों को सुख देने के कर्म से ईश्वर की सेवा करूंगा । ' राम ' (आनंद देनेवाला) ईश्वर है इसलिये मैं भी दीन दुःखी मनुष्यों या प्राणियोंकी पीडा दूर करनेके यत्न द्वारा परमात्माकी भक्ति या सेवा करूंगा । ' नामस्मरण ' का यही उद्देश्य है । यद्यपि आजकल केवल नामका स्मरणही रहा है और उससे प्राप्त होनेवाले कर्तव्य का पालन नहीं होता है, तथापि वस्तुतः इससे महान् कर्तव्य सूचित होते हैं, यह पाठक विचारसे जानें और परमेश्वरके इतने नाम कहनेका मुख्य उद्देश्य समझ लें । अनेक ग्रंथ पढने से जो कर्तव्य नहीं समझता, वह एक नाम के मननसे समझमें आता है, इसीलिये वेदादि ग्रंथोंमें परमात्माके अनेक नाम दिये होते हैं और वे सब बडे मार्गदर्शक हैं, परंतु देखनेवाला और कर्म करनेवाला भक्त चाहिये ।

अस्तु । ईश्वर उपासना के ये चार भाग हैं, इसका अधिक विचार पाठक करें और इस मार्गसे चलें । यही सीधा, सरल और अतिसुगम मार्ग है ।

ब्राह्म उपासना का फल ।

पूर्वोक्त प्रकार मानस उपासना करनेसे जो फल प्राप्त होता है, उसका वर्णन भी इन मंत्रोंमें पाठक देख सकते हैं–

१ सं त्वा यौमि-परमेश्वरके साथ मिलना, ब्रह्मरूप अवस्था प्राप्त करना । (मं० १)

२ देष्यस्य हरस अवयाता-परमात्मा सब महापीडाओंको दूर करनेवाला है, इसलिये सब पीडा उसकी प्राप्ति से दूर हो जाती है । (मं. २)

३ मृडात्-वह आनंद देता है । (मं. २)

इन शब्दोंके मननसे पाठकोंको पता लग जायगा कि, उपासना का फल परमानंद प्राप्ति ही है । वह प्रभु सच्चिदानंद स्वरूप होनेसे उसके साथ मिल जानेसे वही आनंद उपासकमें आ जाता है और जितनी उपासनाकी दृढता और पूर्णता होगी, उतना वह आनंद दृढ और पूर्ण होता है । यह फल प्राप्त करनेकाही पूर्वोक्त वैदिक मार्ग है ।

यहां पहिले दो मंत्रोंका विचार हुआ । इसके पश्चात् के तीन मंत्रोंका वर्णन ठीक प्रकार समझमें आनेके लिये उस वर्णनको प्रथम अपने शरीरमें अनुभव करना चाहिये और पश्चात् वही भाव विशाल जगत्में देखना चाहिये–

अपने अंदरकी जीवन शक्ति ।

इससे पूर्व बताया गया है कि, जलतत्वके आश्रयसे कार्य करनेवाली प्राणशक्ति या जीवनशक्ति ही ' अप्सराः ' शब्दसे इस सूक्तमें कही है, देखिये इसका वर्णन–